पहला संस्करण, 1954
दूसरा संस्करण, 1958
तीसरा संस्करण, 1960
चौथा संस्करण, 1962
पाँचवाँ संस्करण, 1964
छटवाँ संस्करण, 1964
सातवाँ संस्करण, 1965

मूल्य : तीन रुपये मात्र

इस पुस्तक मे प्रयुक्त किए गए नक्शे सर्वे ऑफ इण्डिया, देहरादून के निम्नलिखित पत्रो द्वारा स्वीकृत हैं।

No. D 4563 / 62-A-3 / 116 dated 7.7 61
No. TB 4929 / 62-A-3 / 116 dated 13.8 62
No. TB 6802 / 62-A-3 / 116 dated 28.9 63
No. TB 1401 / 62-A 3 / 116 dated 17 2 64
No. TB 5897 / 62-A-3 / 116 dated 2.72 64

विनोद प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

संशोधित संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत संस्करण में कुछ थोड़े संशोधन किए गए हैं। वनों पर आधारित उद्योगों का अध्याय हटाकर कागज उद्योग संगठित उद्योगों के अध्याय में जोड़ दिया गया है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा दिए गए पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है और सामग्री को अप-टू-डेट करने का यत्न किया गया है।

आशा है, पुस्तक उपयोगी और प्रिय बनी रहेगी।

—लेखक

प्रारम्भकीय

अपने घर और पास-पड़ोस को जान लेने के उपरान्त अपने क्षेत्र, देश और विदेशों का ज्ञान पाने की जिज्ञासा मनुष्य में स्वाभाविक है। यह जिज्ञासा होना आवश्यक भी है, क्योंकि वातावरण का मनुष्य के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है, तथैव मनुष्य की शक्ति भी अपार है और वह अपने वातावरण और अपनी परिस्थितियों से अधिक लाभ उठाने के लिए उन्हें अनुकूल भी बना सकता है। यही कारण है कि शुष्क और उजाड़ क्षेत्र भी कहीं-कहीं सम्पन्न और हरे-भरे उद्यान बना लिये गये हैं। अपनी परिस्थितियों पर मनुष्य ने कहाँ तक विजय पाई है यह उसकी बुद्धि, उपार्जित ज्ञान, उसके गुणों और कार्यक्षमता पर निर्भर है। इसलिए यह आवश्यक है कि परिस्थितियों और उनके प्रभाव का सम्यक् रूप से अध्ययन करके मानव जाति की उन्नति के लिए अधिक प्रयत्न किया जाय।

अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ जबकि भारतवर्ष के अधिकतर लोगों का यह विश्वास था कि उनकी दशा और सुख-दुःख ईश्वरीय देन है और उन्हें भोगने के अतिरिक्त मनुष्य कुछ नही कर सकता। यह भी स्पष्ट है कि वे किन भौगोलिक और ऐतिहासिक कारणों से भाग्यवादी एवं आलसी बन गये थे। परन्तु अब स्वाधीन भारत के नागरिकों में यह विचारने की क्षमता आती जा रही है कि वे भी अपने और अपने राष्ट्र की सुख-समृद्धि में कुछ वृद्धि कर सकते हैं। वे ही देश की आर्थिक उन्नति की योजनाएँ बनाकर उनको कार्यान्वित कर सकते हैं और उनमें अपना सहयोग दे सकते हैं। आज राष्ट्र में अनेक योजनाएँ चल रही हैं परन्तु उनको यथेष्ट रूप से सफल बनाने के लिए उचित नीति और राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के सहयोग की आवश्यकता है। विद्यार्थी राष्ट्र के भावी नागरिक हैं। उनके लिए यह आवश्यक है कि वे परिस्थितियों को सही दृष्टिकोण से समझ सकें। भारतवर्ष का यह आर्थिक भूगोल इसी उद्देश्य से लिखा गया है।

इस पुस्तक में देश की समस्याओं को एक नए पहलू से देखा गया है परन्तु प्रत्येक दशा में इस बात का ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थी और पाठक

विचार-सामग्री पाने के साथ व्यर्थ के वाद-विवाद मे न पडकर अपना स्वतन्त्र मत स्थिर कर सके ।

आर्थिक भूगोल की अँग्रेजी मे लिखी हुई पुस्तकें जैसी अच्छी भाषा मे मिलती हैं, वैसी अच्छी भाषा में लिखी हुई इस विषय की पुस्तको का हिन्दी मे प्राय. अभाव है । हिन्दी मे पाई जाने वाली आर्थिक भूगोल की अधिकतर पुस्तकें तो उनके अँग्रेजी सस्करणो का अनुवाद है । कारण यह है कि आर्थिक भूगोल के अधिकाश लेखक हिन्दी भाषा से भिज नही हैं । इस पुस्तक में इस अभाव की पूर्ति करने का भी प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत संस्करण मे सर्वे ऑव इण्डिया द्वारा स्वीकृत चित्र दिये गये हैं । सभी अध्यायो में मैट्रिक प्रणाली के आधार पर संशोधन किये गये हैं । तीसरी योजना तथा अन्य सरकारी प्रकाशनो के आधार पर पुस्तक की सामग्री यथासंभव अप-टू-डेट कर दी गई है । स्वतन्त्रता के उपरान्त हुई देश की औद्योगिक एवं कृषि सम्बन्धी प्रगति का विवरण यथास्थान दिया गया है ।

चीन के आक्रमण के कारण देश पर जो संकट आ उपस्थित हुआ उस स्थिति मे यह आवश्यक ही है कि देश के आर्थिक विकास के लक्ष्यो मे कुछ हेर-फेर किये जाएँ । रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओ के लिए कुछ उद्योगो तथा उत्पादन के कार्यक्रम को अधिक महत्व दिया जा रहा है और उनमे प्रगति की गति बढाई गई है । कुछ कम महत्वपूर्ण और तीसरी योजना मे प्रारम्भ होने वाली नई परियोजनाओ का कार्य सभवत. स्थगित रखना पड़ेगा । देश की रक्षा करने और उसकी सप्रभुता बनाये रखने का लक्ष्य सर्वोपरि है क्योकि उसकी उपेक्षा करके देश की कोई भी उन्नति नही की जा सकती परन्तु इसलिए देश को सुदृढ बनाने के लिए योजना सम्बन्धी प्रयत्नो को बल देना होगा ।

नये पाठ्यक्रमो के अनुसार सामग्री मे कुछ परिवर्तन किये गये हैं । आशा है, पुस्तक अध्यापक-बन्धुओ तथा छात्रो को प्रिय बनी रहेगी और वे पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए सुझाव देते रहेगे ।

—लेखक

विषय-सूची

अध्याय 1

भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति और विस्तार तथा स्थिति का व्यापार और वाणिज्य पर प्रभाव

(Size, Extent, Location and its influence on trade and commerce)

यदि जगत का मानचित्र देखे तो ज्ञात होगा कि ससार भर मे एशिया महाद्वीप सबसे बडा है । एशिया का क्षेत्रफल पूरे ससार के क्षेत्रफल का लगभग एक तिहाई है । भारतवर्ष एशिया महाद्वीप का प्रसिद्ध दक्षिणी भू-भाग है । अपनी उपजाऊ भूमि, सभ्यता और घनी आबादी के लिए यह सम्पूर्ण संसार मे प्रसिद्ध है ।

अप्रैल, 1937 से बर्मा प्रदेश भारतवर्ष से अलग हो गया था । 15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतन्त्रता मिली परन्तु अनेक कारणो से देश का विभाजन पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के रूप मे कर देना पडा । 1 नवम्बर, 1956 के पूर्व भारतवर्ष मे तीस राज्य थे जो क, ख, ग और घ चार श्रेणियों में विभक्त थे ।

1. भारतवर्ष में राज्यो का पुनर्गठन

शासन प्रबन्ध मे सुविधा की दृष्टि से तथा भाषा और अर्थ इत्यादि के आधार पर 1 नवम्बर, 1956 को भारतवर्ष का पुनर्गठन किया गया और अधिकतर राज्यो की सीमा-रेखाएँ बदल गईं । पुनर्गठित भारत मे बम्बई राज्य क्षेत्रफल मे सबसे बडा और द्विभाषी राज्य था जिसके स्थान पर 1 मई, 1960 को दो नये एक-भाषी राज्य महाराष्ट्र और गुजरात अस्तित्व में आये । क्षेत्रफल की दृष्टि से अब देश का सबसे बडा राज्य मध्य प्रदेश है ।

अगस्त, 1961 मे दादरा और नगर हवेली तथा दिसम्बर, 1961 में गोआ, दमन और दीव (जो पहले पुर्तगाली अधिकार मे थे) भारत मे सम्मिलित हुए । नागालैण्ड जो पहले एक प्रादेशिक इकाई के रूप मे था, अगस्त, 1962 से भारत का सोलहवाँ राज्य मान लिया गया है । 16 अगस्त 1962 को फ्रास

के साथ हुई एक सन्धि के अनुसार पांडिचेरी, कारीकल, माही और यनम जो पहले फ्रांस के अधिकार मे थे विधिवत भारत के अग बने और सितम्बर, 1962 से उन्हे 'पांडिचेरी' नाम से केन्द्र प्रशासित प्रदेश माना गया है। पांडि-चेरी और कारीकल (Karikal) कोरोमण्डल तट पर हैं, यनम आन्ध्र प्रदेश के तट पर और माही केरल तट पर।

भारत के इन राजनैतिक भागो को चित्र 1 मे देखिए।

भारत के राजनतिक विभाग

राज्य (States)	राजधानी	क्षेत्रफल[1] (वर्ग किलोमीटर मे)
1. मध्य प्रदेश	भोपाल	4, 43, 433
2. राजस्थान	जयपुर	3, 38, 413
3. महाराष्ट्र	बम्बई	3, 07, 538
4. उत्तर प्रदेश	लखनऊ	2, 93, 845
5. आन्ध्र प्रदेश	हैदराबाद	2, 74, 674
6. जम्मू और कश्मीर	श्रीनगर	2, 22, 801
7. मैसूर	बगलौर	1, 92, 154
8. गुजरात	अहमदाबाद	1, 87, 064
9. बिहार	पटना	1, 54, 041
10. उडीसा	भुवनेश्वर	1, 55, 818
11. मद्रास	मद्रास	1, 29, 811
12. असम	शिलाग	1, 22, 481
13 पंजाब	चण्डीगढ	1, 21, 947
14. पश्चिमी बंगाल	कलकत्ता	87, 873
15. केरल	त्रिवेन्द्रम	38, 862
16. नागालैण्ड	कोहिमा	16, 151

---

1 क्षेत्रफल सम्बन्धी आँकडे सर्वे आव इण्डिया के अनुसार हैं परन्तु उन्हे वर्गमीलों मे देने की बजाय निकटतम वर्ग किलोमीटरो में दिया गया है।
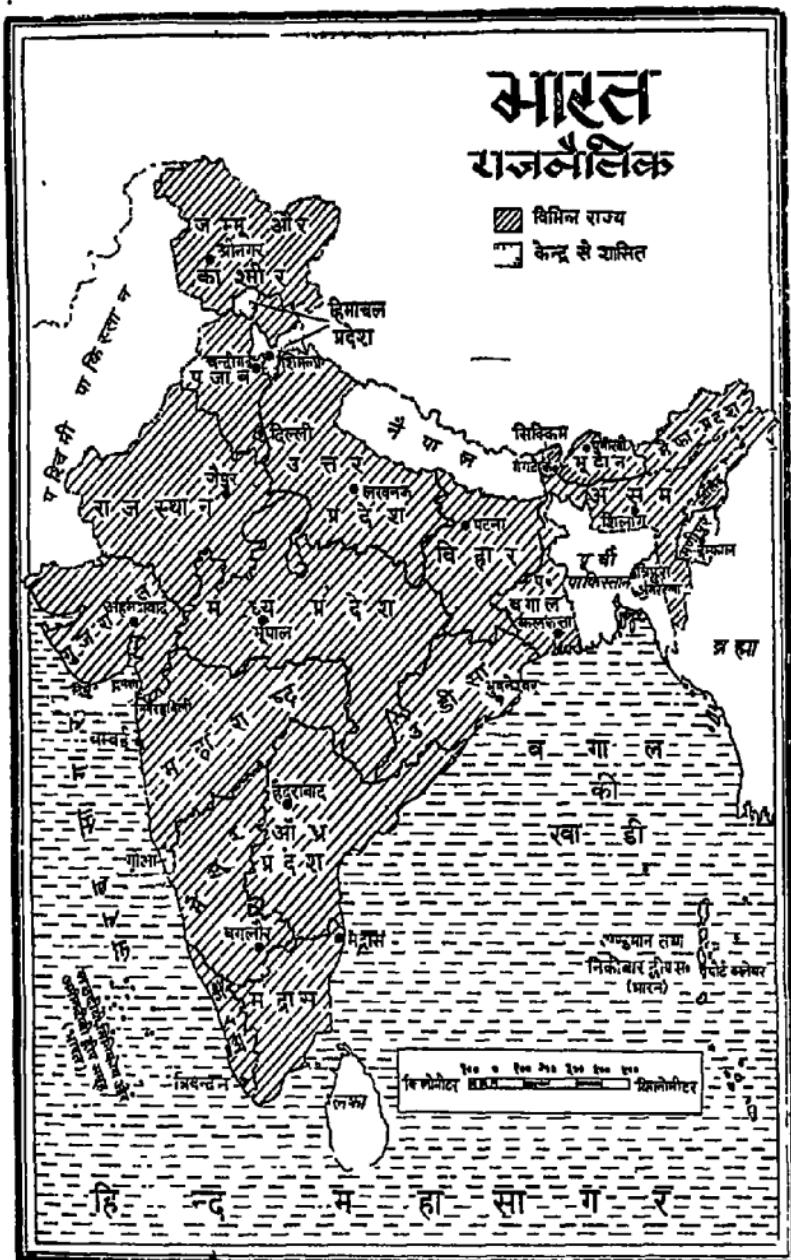
चित्र 1—भारत राजनैतिक

केन्द्र प्रशासित प्रदेश

1. हिमाचल प्रदेश	शिमला	28, 176
2. मणिपुर	इम्फाल	22, 346
3 त्रिपुरा	अगरतला	10, 453
4 अण्डमान-निकोबार द्वीप	पोर्ट ब्लेयर	8, 327
5. गोआ, दमन और दीव	पंजिम	3, 693
6. दिल्ली	(क)	1, 484
7. दादरा नगर हवेली	—	490
8. पाण्डिचेरी	पाण्डिचेरी	482
9. लक्कादीव, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप समूह	(ख)	28
प्रादेशिक इकाई (Territorial unit)		
1. नेफा (N. E F A.)	(ग)	81, 419

2. भारतवर्ष का विस्तार

भारतवर्ष एक विशाल देश है। उत्तर से दक्षिण तक भारतवर्ष का विस्तार लगभग 3, 219 किलोमीटर है और पश्चिम से पूर्व तक इसका फैलाव लगभग 2,977 कि० मी० है। चौड़ाई में यह 68° पूर्वी देशान्तर से 97° पूर्वी देशान्तर तक फैला हुआ है तथा उत्तर से दक्षिण 8° से 37° उत्तरी अक्षांश तक।

भारतवर्ष की स्थलीय सीमा लगभग 15, 168 किलोमीटर और समुद्री सीमा 5,700 किलोमीटर लम्बी है।

भारतवर्ष का कुल क्षेत्रफल लगभग 32, 68,000 वर्ग किलोमीटर है।* क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से भारतवर्ष की गणना संसार के बहुत बड़े देशो मे की जाती है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारतवर्ष अफ्रीका जैसे विशाल महाद्वीप के लगभग 1/6 के बराबर है, यदि रूस को निकाल दें तो लगभग

(क) दिल्ली का प्रशासन संसद केन्द्रीय गृह मंत्री द्वारा करती है।

(ख) अस्थायी हैडक्वार्टर कोजीकोड, केरल।

(ग) नेफा का हैडक्वार्टर शिलांग है।

*अप्रैल, 1963 में सर्वे ऑव इण्डिया द्वारा दिये गये आँकड़ो के आधार पर।

यूरोप के बराबर है, भारतवर्ष का छोटे से छोटा राज्य भी यूरोप के कई देशों से बड़ा है। भारतवर्ष का क्षेत्रफल जापान के क्षेत्रफल का लगभग नौ गुना और यूनाइटेड किंगडम (U. K.) के क्षेत्रफल के तेरह गुने से भी अधिक है। भारतवर्ष का क्षेत्रफल कुल संसार के क्षेत्रफल का लगभग $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत है।

जनसंख्या की दृष्टि से भारतवर्ष और भी अधिक बड़ा देश है जबकि भारतवर्ष का क्षेत्रफल संसार के क्षेत्रफल के $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत से भी कम है, भारतवर्ष की जनसंख्या कुल संसार की जनसख्या की 14·6 प्रतिशत के लगभग है। इससे भारत की घनी आबादी का भी अनुमान लगाया जा सकता है। भारतवर्ष की जनसख्या सन् 1961 की जनगणना के अनुसार 43·90 करोड़ के लगभग है। चीन के सिवाय इतनी जनसख्या ससार के किसी भी देश मे नही है।

3. क्या भारतवर्ष एक महाद्वीप या उप-महाद्वीप है ?

कुछ भूगोलवेत्ताओ ने विभाजन के पूर्व के भारत को उप-महाद्वीप कहा है। यदि यह कहने का आशय केवल देश की विशालता बताना है तो इसमें हमें आपत्ति नही है। परन्तु अधिकतर ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओ ने इस बात पर अधिक बल दिया है कि विभाजन के पूर्व का भारतवर्ष एक उप-महाद्वीप है। वे ब्रिटिश सरकार की फूट डालकर शासन करने की नीति का समर्थन करना चाहते थे; और पाकिस्तान और भारतवर्ष के रूप में देश का विभाजन न्यायसंगत और उचित समझते थे। सत्य यह है कि भारतवर्ष मे विविधता रहते हुए भी एक मूलभूत एकता देखी जा सकती है। देश (हिन्दुस्तान) की विशालता तो इस तथ्य से ही प्रकट है कि एक महासागर (हिन्द महासागर) का नाम उसके नाम पर आधारित है।

4. भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति

भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति को भली प्रकार समझने के लिए हम उसका अध्ययन चार भागों में कर सकते हैं :—

(1) भारतवर्ष 8° उत्तरी अक्षांश से 37° उत्तरी अक्षांश तक फैला हुआ है। भारतवर्ष का समस्त भू-भाग भूमध्य रेखा के उत्तर में स्थित है और कर्क रेखा देश के लगभग मध्य मे गुजरती है। जैसा कि आगे जलवायु के अध्याय मे समझाया गया है, इस स्थिति का भारतवर्ष की जलवायु पर बहुत प्रभाव

पड़ता है यद्यपि यहाँ की जलवायु के ऊपर कई कारणों का सम्मिलित प्रभाव पड़ता है।

(2) भारतवर्ष की सीमा भारतवर्ष और पाकिस्तान के बीच की सीमा के कुछ भाग को छोड़कर प्राकृतिक है। भारतवर्ष के उत्तर मे उच्च मस्तक की भाँति विशाल हिमालय पर्वत है जिस पर हिम (बर्फ) का श्वेत मुकुट चमचमाता रहता है। दक्षिण मे नीले जल का समुद्र अपनी लोल-लहरों से उसके चरण धोता है। भारतवर्ष की यह प्राकृतिक सीमा प्राचीन काल मे उसकी सुरक्षा, आर्थिक विकास और समृद्धि का कारण थी। उत्तर-पश्चिम के दर्रों से आक्रमणकारियो ने भारत मे प्रवेश किया जिससे उसकी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी व्यवस्थाओ पर गहरा प्रभाव पड़ा। उत्तर में भारतवर्ष की पूरी चौड़ाई मे हिमालय की स्थिति जलवायु की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(3) भारतवर्ष की स्थिति प्रायद्वीपीय है और विशाल हिन्द महासागर उसे गोद मे लिये हुए है। इस प्रायद्वीपीय स्थिति का हमारी जलवायु के
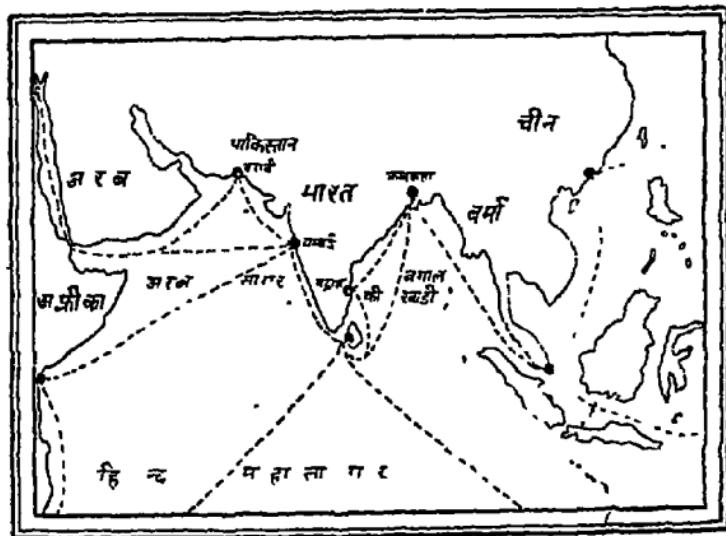
चित्र 2—हिन्द महासागर के शीर्ष पर भारत की स्थिति

ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। साथ ही समुद्री मार्गों से अन्य देशो के साथ

सम्पर्क सम्भव होने के कारण व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र मे भी लाभ हुआ है।

(4) भारतवर्ष की स्थिति पूर्वी गोलार्द्ध मे लगभग मध्यवर्ती है। लगभग सभी जल-मार्ग निकट पडते हैं। जल-मार्गों के द्वारा अफ्रीका, एशिया के मध्यपूर्वीय और सुदूरवर्तीय देशो के साथ महत्वपूर्ण व्यापार होता रहा है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड भी दूर नही है। सन् 1869 मे स्वेज नहर

चित्र 3—पूर्वी गोलार्द्ध में भारत की स्थिति

बन जाने से स्वेज मार्ग द्वारा यूरोपीय देशो के साथ हमारा सम्बन्ध अधिक सुदृढ हो गया। अमेरिका का पश्चिमी तट प्रशान्त महासागरीय मार्गों से जुडा हुआ है और पनामा नहर बन जाने के उपरान्त पूर्वी तट भी समीप हो गया है। इस प्रकार भारतवर्ष इन सभी देशो से लाभ के साथ विदेशी व्यापार कर

सकता है, विशेषतः जबकि प्रकृति ने उसे अमूल्य सम्पत्ति प्रदान की है। यदि देश की पूँजी और श्रम का उचित उपयोग किया जाय, सरकार की स्वस्थ नीति रहे, और अन्य सुविधाएँ भी प्राप्त हो तो हमारा देश अन्य देशों के साथ व्यापार करके अपनी आवश्यकताएँ भी पूरी कर सकेगा, औद्योगिक समुन्नति कर सकेगा और व्यापार में अतिशय लाभ कमा सकेगा।

भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति का पूर्ण लाभ उठा सकने के मार्ग में कुछ बाधाएँ रही हैं जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं —

(क) भारतवर्ष में प्राकृतिक बन्दरगाहों का अभाव है। 32·50 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के भारतवर्ष के लिए 5,700 किलोमीटर समुद्र-तट भी यदि कम है तो भी यदि यही समुद्र-तट कटा-फटा होता तो अच्छे बन्दरगाहों का विकास होना अधिक सम्भव था। भारतवर्ष का पूर्वी किनारा पूर्वी पाकिस्तान के निकट काली नदी के मुहाने से दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक जाता है और पश्चिमी किनारा कुमारी अन्तरीप से उत्तर-पश्चिम में कच्छ की खाड़ी तक फैला हुआ है। ये दोनों किनारे प्रायः एक-से चले गये हैं और बम्बई तथा कोचीन को छोड़कर प्राकृतिक बन्दरगाहों की भारी कमी है। करांची के पाकिस्तान में चले जाने से यह कमी और भी गम्भीर हो गई है। इस कमी को भारतवर्ष की सरकार ने कांदला एवं अन्य बन्दरगाहों का विकास करके पूरा करने का प्रयत्न किया है।

(ख) स्वदेशी माल ढोने वाले तथा विदेशी और तटवर्तीय व्यापार करने के लिए भारतवर्ष के पास अपने जहाज नहीं रहे हैं। जहाजी नीति पर अभी हाल में ही ध्यान गया है और जहाजों का निर्माण भी हुआ है।

(ग) भारतवर्ष की स्थलीय सीमा पर हमारे पड़ोसी देश प्रायः पहाड़ी, उजाड़ और निर्धन हैं। शुष्क और शीतल जलवायु होने के कारण इन देशों में वीर और लड़ाकू जातियों ने जन्म लिए हैं। भारतवर्ष के सम्पन्न देश होने के कारण निर्धन देशों की लड़ाकू जातियों ने दर्रों में होकर यहाँ लूट-मार की और भारतवर्ष के ऊपर इसका कुप्रभाव पड़ा। निर्धन देशों के साथ वर्तमान काल में भी व्यापार का समुचित विकास नहीं हो सकता।

5. विभाजन का भारतवर्ष की स्थिति पर प्रभाव

(1) व्यापारिक मार्ग—करांची बन्दरगाह जो कि विभाजन के पूर्व

भारतवर्ष का अत्यन्त श्रेष्ठ बन्दरगाह था, पाकिस्तान मे चला गया। करांची यूरोप से निकटतम पड़ता था। विभाजन के पश्चात् करांची से होने वाला व्यापार बम्बई मे होने लगा और कांदला के विकास का प्रयत्न किया गया। समुद्री मार्गों के द्वारा अब मध्य-पूर्वीय देश भी कुछ दूर हो गये हैं। विभाजन के पूर्व स्थल मार्ग द्वारा भारतवर्ष का व्यापार, विशेषकर पुनर्निर्यात व्यापार, अफगानिस्तान और ईरान के साथ होता था परन्तु अब बीच मे पश्चिमी पाकिस्तान हो जाने पर वह व्यापार लगभग समाप्त हो गया है।

(2) प्राकृतिक सीमा कुछ कम हो गई है—भारतवर्ष और पाकिस्तान के बीच मे, कुछ भागो को छोड़कर जहां कुछ नदियां सीमा बनाती है, सीमा कृत्रिम हो गई है। पाकिस्तान और भारत के बीच कुछ वैमनस्य का भाव होने के कारण सीमा पर स्थित क्षेत्रो के व्यापार और वाणिज्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(3) बगाल का समुद्री तट और मछली मारने के महत्वपूर्ण क्षेत्र पाकिस्तान मे चले गये हैं।

(4) सिचाई और नौकानयन की दृष्टि मे अत्यन्त महत्वपूर्ण कुछ नदियों का ऊपरी भाग भारतवर्ष मे और निचला भाग पाकिस्तान मे गया है। इसके कारण एक अवांछनीय झगड़ा उठ खड़ा हुआ था।

(5) भारतवर्ष के विदेशी व्यापार के स्वभाव और उसके परिणाम में कुछ अन्तर हो गया है। विभाजन के पूर्व होने वाला व्यापार देशी व्यापार था, वही विभाजन के पश्चात् भारतवर्ष और पाकिस्तान के बीच होने वाला व्यापार विदेशी व्यापार कहलाने लगा और इस प्रकार विदेशी व्यापार के आंकड़े बढ़े हुए दिखाई देने लगे। स्वभाव मे यह अन्तर हुआ कि जबकि विभाजन के पूर्व भारतवर्ष कच्चे जूट, कपास और खाद्यान्नों का निर्यात करता था, विभाजन के पश्चात् ये पदार्थ उगाने वाले अधिकता के क्षेत्र (Surplus areas) पाकिस्तान मे चले जाने से भारतवर्ष को इन पदार्थों का आयात करना पड़ा।

(6) कृषि और उद्योगों के ऊपर गम्भीर प्रभाव पड़ा। इसके लिये इस पुस्तक के पृथक अध्याय देखिये।

(7) विभाजन के साथ-साथ जनसख्या की अदला-बदली के कारण

विस्थापितो को रोजगार देने, उनके लिये मकानो का प्रबन्ध करने, इत्यादि गम्भीर समस्याएँ उठ खडी हुई ।

इसमे कोई सन्देह नही कि विभाजन के पश्चात् भी भारतवर्ष की स्थिति का महत्व कम नही हुआ है। भारतवर्ष ससार का महत्वपूर्ण राष्ट्र रहेगा। भारतवर्ष के प्राकृतिक ससाधन अपार हैं। मानवी ससाधन भी पर्याप्त हैं। भारतवर्ष इन साधनो का पूर्णरूपेण उपयोग करने के लिये पचवर्षीय योजनाओं की शृखलाओं पर आरूढ हुआ है और विभाजन के उपरान्त सन्तोषजनक उन्नति की है। भारतवर्ष के भविष्य पर हम आशापूर्ण दृष्टि रख सकते हैं।

सक्षेप

भारतवर्ष एशिया महाद्वीप का विशाल, उन्नत और सभ्यता के लिये प्रसिद्ध देश है। इसका क्षेत्रफल यू० के० के क्षेत्रफल का तेरह गुना है। यहाँ की जनसंख्या 44 करोड के लगभग है। कर्क रेखा इसके मध्य से गुजरती है।

भारतवर्ष की सीमा प्राकृतिक है। यहाँ की स्थिति प्रायद्वीपीय है और यह पूर्वी गोलार्द्ध के लगभग बीचोंबीच स्थित है। अतः विभाजन के पश्चात् भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये इसकी स्थिति अच्छी है परन्तु प्राकृतिक बन्दरगाहो और जहाजी बेडो का अभाव है।

प्रश्न

1. पूर्वी गोलार्द्ध मे व्यापारिक दृष्टिकोण से भारतवर्ष की स्थिति का विवेचन कीजिये।
2. देश का विभाजन हो जाने के पश्चात् भी अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वाणिज्य जगत मे भारतवर्ष एक महान् राष्ट्र रहेगा।' आवश्यक व्यापारिक मार्गों के चित्रो की सहायता से इस कथन को समझाइये।

अध्याय 2

प्राकृतिक रचना

(Physical Features)

भारतवर्ष जैसे विशाल देश में विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक बनावट होना स्वाभाविक ही है। भूतत्ववेत्ताओ की खोज के अनुसार देश के कुछ प्राकृतिक भाग प्राचीन काल से लगभग एक से चले आ रहे हैं परन्तु कुछ मे महान् परिवर्तन हुये हैं। देश की वर्तमान दशा के आधार पर प्राकृतिक समानताओं को देखते हुये भारतवर्ष को चार मुख्य प्राकृतिक भागों मे बाँट सकते हैं—

(1) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश,

(2) मध्यवर्ती मैदान,

(3) दक्षिणी पठार, और

(4) तटीय मैदान।

1. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश

पामीर की गाँठ से कई पर्वत-श्रेणियाँ फैली हुई है। इनमें से दो श्रेणियाँ भारतवर्ष की उत्तरी प्राकृतिक सीमा बनाती हैं। दक्षिण-पूर्वी शाखा, जो पीछे पूर्व की ओर सीधी चली गई है हिमालय के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि यहाँ हिम (बर्फ) बहुत गिरती है। दक्षिण-पश्चिमी शाखा, जो लगभग अरब सागर तक फैली हुई है, उत्तर मे सुलेमान श्रेणी और दक्षिण मे किरथर श्रेणी के नाम से पुकारी जाती है। ये श्रेणियाँ अब पाकिस्तान मे है। भारत और वर्मा के बीच पर्वत-श्रेणी भिन्न-भिन्न नामो से पुकारी जाती है। उत्तर मे यह पर्वत-श्रेणी पतली दीवार के समान है और पटकोई पहाडियाँ कही जाती हैं दक्षिण की ओर यह कुछ चौडी हो गई है और नागा पहाडी के नाम से पुकारी जाती है। असम मे श्रेणी के नाम जैन्तिया, खासी और गारो हैं। मणिपुर मे दक्षिण मे इन्हे लुशाई और फिर अराकान योमा कहते है, जो निग्राइस अन्तरीप तक और आगे अण्डमान-निकोबार द्वीप-समूह

तक फैली हुई हैं। हिमालय की ये पर्वत श्रेणियाँ परतदार और नवीन युगीन हैं, इसलिए ये पैट्रोलियम के सिवा अन्य खनिज पदार्थों से सम्पन्न नहीं हैं।

भारत और बर्मा के बीच की पर्वत श्रेणियाँ कम ऊँची हैं। इस क्षेत्र में वर्षा अधिक होती है। असम में स्थित चेरापूंजी में, जो इसी क्षेत्र में है, दुनिया भर से अधिक वर्षा होती है। यहाँ जंगल है और आबादी कम है।
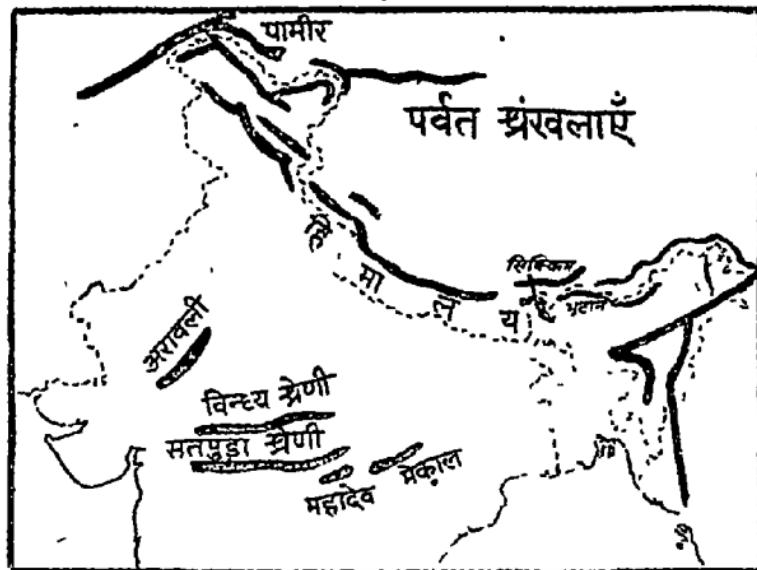
चित्र 4-- भारतवर्ष की पर्वत श्रृंखलाएं

हिमालय, जो लगभग दार्जिलिंग से काश्मीर तक फैला हुआ है, लगभग 3 200 किलोमीटर लम्बा और 250 से 500 किलोमीटर तक चौडा है। हिमालय जगत भर मे प्रसिद्ध है और भारतवर्ष के लिए उत्तर मे दीवार का काम करता है। यह भारत को शेष एशिया से पृथक् करता है। हिमालय पर्वत ससार मे सबसे अधिक ऊँचा है। इसकी अनेक चोटियाँ मनुष्य मात्र को चुनौती दे रही हैं। साहसी अन्वेषको ने अपने प्राणो की बाजी लगाकर उन पर चढ़ने का प्रयत्न किया है परन्तु अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए कई सौ वर्ष पीछे 29 मई, 1953 को तेनसिंह और हिलेरी ने हिमालय की जगत मे सर्वोच्च चोटी एवरेस्ट को विजय कर पाया है। हिमालय की औसत ऊँचाई 5 200 मीटर से भी अधिक है और तीस से भी अधिक चोटियाँ, 7,300 मीटर से ऊँची है। प्रसिद्ध चोटियाँ एवरेस्ट 8,842 मीटर, गोडविन औस्टिन 8,610

मीटर, कचनचिंगा 8,580 मीटर, धवलागिरि 8,175 मीटर, नगा 8,117 मीटर और नन्दादेवी 7,821 मीटर ऊँची हैं।

हिमालय पर्वत बीच-बीच मे घाटियो और पठारो के कारण समानान्तर श्रेणियो मे बँटा हुआ है। हिमालय का ढाल भारतवर्ष की ओर मैदान की तरफ बहुत अधिक है और उत्तर की ओर कम। हिमालय पर्वत श्रेणियो को तीन भागो मे बांटा जा सकता है—

(अ) बड़ा हिमालय, जिसकी औसत ऊँचाई 6 हजार मीटर से अधिक हैं और जिस पर सदा हिम (वर्फ) जमी रहती है।

(ब) बीच का हिमालय, जिसकी औसत ऊँचाई 4,500 मीटर से अधिक है, और

(स) बाहरी हिमालय, जो बीच के हिमालय और मैदान के बीच मे फैला हुआ है, जिसकी औसत ऊँचाई 1,100 मीटर के लगभग है। यह भाग पजाव से लेकर पूर्वी विहार तक फैला हुआ है और इसमे वह तराई प्रदेश सम्मिलित है जिसमे अनेक प्रकार के जगली जानवर पाये जाते हैं।

मुख्य हिमालय की अधिक ऊँचाई होने के कारण कुछ चोटियो पर सदैव बर्फ जमी रहती है। मुख्य हिमालय के उत्तर और दक्षिण दोनो ओर निम्न पर्वत-श्रेणियाँ हैं, जैसे, तिब्बत की ओर लद्दाख और जास्कर श्रेणियाँ तथा मैदान की ओर पीरपंजाल श्रेणी। यद्यपि उत्तर की ओर भी निम्न श्रेणियाँ हैं परन्तु हिमालय का ढाल दक्षिण की ओर ही अधिक है। दक्षिण की ओर हिमालय गङ्गा, शारदा, घाघरा और गण्डक इत्यादि नदियो के निकासो से गहरा कटा हुआ है।

हिमालय की घाटियाँ सभी दिशाओ की ओर हैं परन्तु मुख्य परत तिब्बत पठार के सहारे-सहारे चलते हैं। उत्तर-पश्चिमी भाग मे घाटियो का रुख प्राय. पूर्व-पश्चिम और पूर्वी भाग मे प्राय. उत्तर-दक्षिण है। नवीन युगीन होने के कारण घाटियाँ प्राय. सँकरी (V-shaped) हैं। उत्तर की ओर हिमनद (ग्लेशियरो) से कटी हुई कुछ चौड़ी घाटियाँ हैं। दक्षिण की निम्न श्रेणियो के बीच मे चौड़ी घाटियाँ—कूलू घाटी और कश्मीर की प्रसिद्ध घाटी-है। वास्तव मे इन्हें हम नदियो की घाटियाँ नही कह सकते। ये घाटियाँ इस भाग मे प्राचीन काल मे स्थित समुद्र के भरने से बनी जान पड़ती हैं। ये घाटियाँ उपजाऊ, विस्तृत और सुन्दर हैं।

मुख्य हिमालय मे कई हिमनद मिलते हैं जिनमे ऊँचाई मे वर्फ आती रहती है। हिमालय के कुछ हिमनद ससार के सबसे बड़े ग्लेशियर हैं।

मैदान से मिली हुई मुख्य हिमालय के दक्षिण की ओर शिवालक श्रेणी है। शिवालक पहाड़ियाँ हिमालय की भाँति न तो ऊँची है और न लगातार फैली हुई हैं। शिवालक पहाडियो की ऊँचाई 600 से 900 मीटर के लगभग तक है। (जब कि मुख्य हिमालय की ऊँचाई 8,500 मीटर से अधिक है।) शिवालक पहाडियो के स्थानीय नाम भिन्न-भिन्न है जैसे गोरखपुर के समीप इन्हे डुँडवा (Dundwa) कहते हैं।

हिमालय और शिवालक पहाडियो के बीच मे समतल घाटियाँ है जिन्हे कुछ भागो मे 'दून' कहते है। देहरादून इसी भाग मे स्थित है। दून' हिमालय से नीचे उतरने वाली नदियो के द्वारा लाई हुई मिट्टी से बने हैं। इसके नीचे कहीं-कही कोई पहाडी दबी दिखाई देती है। ऐसी पहाडियो पर जंगल पाये जाते हैं।

हिमालय से बहने वाली नदियाँ जहाँ शिवालक को काटकर बही है वहाँ गहरे कन्दर (Gorges) बन गये है, जैसे हरद्वार के समीप गङ्गा द्वारा बनाया हुआ कन्दर। कुछ नदियाँ शिवालक पहाड़ियो के बीच मे होकर बहती हैं।

भाभर और तराई—पहाडियो के सहारे-सहारे दक्षिण की ओर भाभर और तराई के प्रदेश फैले हैं। भाभर या बार के क्षेत्र अपेक्षाकृत शुष्क हैं और पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम की ओर फैले हुए हैं। इनमे मोटी बालू और छोटे-छोटे पत्थर पाये जाते हैं। तराई के नम प्रदेश पूव की ओर फैले हुये हैं। पानी का बहाव ठीक प्रकार न होने से विशेषत अधिक वर्षा पाने वाले पूर्वी नम प्रदेशो मे दलदल पाये जाते हैं। तराई के कुछ भागो मे घने जंगल हैं जिन्हे कृषि के लिए कहीं-कही साफ किया गया है। तराई के अधिकतर क्षेत्र अस्वास्थ्यकर हैं।

आर्थिक प्रभाव—हिमालय प्रदेश का भारतवर्ष के ऊपर निम्नलिखित आर्थिक प्रभाव[1] पडा है—

(1) हिमालय हिन्दुस्तान की **उत्तरी दीवार का काम करता है** और इस प्रकार यह हमारी इस ओर से (अ) आक्रमणकारियों से, और (आ) तिब्बत

---

[1] इनमे आर्थिक लाभ और हानियाँ दोनो सम्मिलित है।

और उत्तरी एशिया की ठण्डी हवाओ से रक्षा करता है। यदि उत्तर मे हिमालय न होता तो हमारे यहाँ का तापक्रम बहुत कम होता और इससे आवागमन, उपज और कार्यक्षमता पर बहुत प्रभाव पडता।

(2) दक्षिण-पश्चिमी मानसून हवाएँ जो भारत मे वर्षा लाती है, हिमालय से टकराकर ही बरसती हैं। यदि हिमालय न होता तो कर्क रेखा की पेटी मे स्थित हमारा देश और दूसरे देशो की तरह एक वृहद् रेगिस्तान होता।

(3) हिमालय की बर्फ पिघलने से और पर्वतो पर होने वाली वर्षा से हिमालय से कई नदियाँ बहती हैं जो गर्मियो मे भी नही सूखतीं। (अ) इन नदियो मे नहरे निकाली गई हैं जिनमे सिंचाई होती है। नहरो से सिंचाई होने के कारण उत्तर प्रदेश और पजाब की उपज मे काफी वृद्धि हुई है। (आ) पहाडी नदियो से बिजली भी प्राप्त की जाती है। अनुमान है कि यदि सभी पहाडी नदियो से उचित मार्ग पर बिजली प्राप्त की जाय तो भारत के गाँव-गाँव मे बिजली मिल सकती है।

(4) बीच के हिमालय मे कई प्रकार की वनस्पति और जगली पशु पाये जाते हैं। यहाँ के जंगलो से बहुत-सी वस्तुये प्राप्त होती हैं और कई और उद्योग-धन्धो के लिये कच्चा माल प्राप्त होता है। इसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया गया है।

(5) कश्मीर और कूलू की घाटियाँ अपनी सुन्दरता और उपज के लिये प्रसिद्ध हैं। कही-कही खेती की गई है और चावल, अदरक, गेहूँ, फल और मिर्च उगाये जाते हैं। असम के ढालो पर चाय उगाई जाती है।

(6) कुछ पहाडी स्थान अपने सौन्दर्य और जलवायु के लिए प्रसिद्ध है, इसलिए यात्री यहाँ आते-जाते हैं। कुछ तीर्थयात्रा के विचार से और कुछ लोग पहाडियो पर चढने के विचार से भी आया करते हैं। इसलिए यहाँ के कुछ लोग कुली का काम करते हैं, कुछ लोग माल ढोने के लिए खच्चर पालते हैं। हाल ही मे होटल-व्यवसाय भी पनप रहा है। कुछ लोग अच्छे पहाडी स्थानो पर कुछ इमारतें, कोठी इत्यादि बनवाकर किराये से अपनी जीविका कमा लेते हैं।

हिमालय प्रदेश मे कुछ कठिनाइयाँ भी हैं, जैसे:—

(7) इस प्रदेश की भूमि पहाडी और ऊँची-नीची होने के कारण यहाँ

परिवहन के साधनो और व्यापार का विकास नही हो सकता। उपज बहुत कम है, जीवन-निर्वाह करना कठिन होता है, इसलिए यहाँ की आबादी भी कम है।

(8) तराई प्रदेश मे, जहाँ खेती की जा सकती है, मच्छर बहुत हैं जिससे वहाँ रहने वाले श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन कठिनाइयों को दूर करके कृषि का विकास किया जा रहा है।

कुल मिलाकर, सक्षेप मे, यह कहा जाता है कि हिमालय ने भारत की आर्थिक दशा पर गहरा प्रभाव डाला है। हिमालय हिन्दुस्तान के लिए 'प्रकृति का वरदान' है। यदि हिमालय न होता तो हमारे देश की दशा कैसी होती, इसकी कल्पना मात्र से ही कँपकँपी आ जाती है और हम हिमालय के लिए नत-मस्तक हो जाते हैं। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि मिस्र देश नील नदी का उपहार' है तो उत्तरी भारत बल्कि सम्पूर्ण देश, हिमालय का उपहार' है। हिमालय ही हमारे देश का सर्वस्व है।

दर्रे—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, भारतवर्ष की पर्वतीय दीवार देश को एशिया से पृथक करती है, परन्तु इस पर्वतीय दीवार मे भी कुछ द्र र हैं, यद्यपि वे बहुत सँकरे और दूर-दूर हैं। जोजिला और काराकोरम के दर्रे काश्मीर के प्रसिद्ध नगर श्रीनगर से बाहर जाने का मार्ग बनाते हैं। पजाब से तिब्बत जाने के लिये शिपकी दर्रा है। दार्जिलिग के निकट दो मुख्य दर्रे जेलेप ला और नाटू ला हैं। भारतीय सीमा के दर्रे प्राय. दुर्गम हैं परन्तु इन्ही मे होकर चीनी सेन ओ ने 1962 मे भारी आक्रमण किया। भारत और बर्मा के बीच मे भी कई दर्रे हैं, परन्तु आवागमन के लिए वे बहुत कम महत्व के हैं। पश्चिमी पाकिस्तान के दर्रे जो पहले भारत मे सम्मिलित थे, बहुत प्रसिद्ध थे। उनमें से प्रमुख दर्रे खैबर, बोलन, गोमाल, तोची, कुर्रम् और पेशावर के दर्रे हैं।

2 मध्यवर्ती मैदान

उत्तरी हिमालय प्रदेश के दक्षिण मे पश्चिमी पाकिस्तान से बगाल की खाडी तक भारतवर्ष का विशाल मैदान फैला हुआ है। यह मैदान भारत का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग है। यह भाग उतरी भारत का अधिकांश भाग घेरता है। इसका विस्तार लम्बाई में 2,400 किलोमीटर से अधिक और चौड़ाई में 240 से 320 किलोमीटर तक है। यह भाग एक चौरस मैदान है,

इसमे कोई पहाडी या पर्वत नही हैं। अनुमान है कि यह भाग पहले समुद्र-सतह से काफी अधिक गहरा था और अधिक समय से कछारी मिट्टी के जमा होते रहने से ऊपर उठा है। इस भाग मे बहने वाली नदियाँ चौड़ी और धीरे धीरे बहती हैं। ढाल बहुत कम है।

मैदान की कछारी मिट्टी की गहराई के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। कुछ विद्वानो ने यह गहराई 4 500 मीटर से अधिक बताई है जबकि कुछ अन्य विद्वानो ने नई खोजो के आधार पर विरोध करते हुए बताया है कि यह गहराई 2,900 मीटर से अधिक है।

धरातल की बनावट की दृष्टि से यह मैदान समतल और एक-सा समझा जाता है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि यह नदियो के द्वारा ऊँचे-नीचे मैदानो मे बँटा हुआ है।

मैदान की भूमि तीन प्रकार की है—

(1) बीहड भूमि जो चम्बल, जमुना, इत्यादि नदियो के किनारे पानी द्वारा कटाव के कारण बनी है।

(2) पुराने कछार जिन्हें बागर कहते हैं। ऐसी जमीनें प्राय: ऊँची और असमतल होती हैं और उनमे ककड मिलते हैं।

(3) नये कछार जिन्हे खादर कहते हैं। ये भाग निम्न भूमि-प्रदेश हैं। नदियो की नई मिट्टी से बने हैं और अधिक उपजाऊ हैं।

मैदान के शुष्क पश्चिमी भाग—उत्तर प्रदेश और पजाब—मे रेह (क्षार) के उजाड भाग भी पाये जाते हैं।

गङ्गा की निचली घाटी के प्रदेश में (जिसे डेल्टा प्रदेश भी कहते हैं) गङ्गा-ब्रह्मपुत्र का डेल्टा संसार का सबसे बडा डेल्टा है जिसका काफी भाग अब पूर्वी पाकिस्तान मे है। डेल्टा प्रदेश की मिट्टी नई कछारी मिट्टी है परन्तु धरातल एक-सा नही है, कही-कही निम्न प्रदेश या गर्त तो मिलते हैं जिन्हें 'बिल' भी कहते हैं। ये गर्त बाढ के समय जलमग्न हो जाते हैं इसलिए इनका उपयोग केवल कृषि के लिए किया जाता है। डेल्टा प्रदेश,मे धरातल का दूसरा प्रकार नदी-तटो के रूप मे मिलता है जिन्हे 'चर्स' कहते हैं। ये ऊँचे नदी-तट यद्यपि कृषि के लिए भी महत्वपूर्ण हैं परन्तु गाँव और आबादी क्षेत्र इन्ही पर बसाये गये हैं क्योंकि बाढो के समय यहाँ अपेक्षाकृत सुरक्षा रहती है।

इस मैदान की मुख्य नदियाँ, जिनके बेसिन से यह मैदान बना है, पश्चिम मे व्यास और सतलज हैं जो सिन्ध नदी मे मिलती हैं, पूर्व मे गंगा नदी है जिसमें जमुना, घाघरा, गोमती और गडक नदियाँ इसी मैदान में मिलती हैं और दक्षिण-पूर्व मे बहती हुई डेल्टा बनाती हैं तथा बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। तीसरी बडी नदी ब्रह्मपुत्र है जो एवरेस्ट और कंचनजंगा के उत्तर मे भारत की पूर्वी सीमा तक पूर्व की ओर बहती है, फिर दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की ओर को बहकर गङ्गा नदी मे मिलकर डेल्टा बनाती हुई बङ्गाल की खाडी मे गिरती है। ये नदियाँ हिमालय पर्वत की श्रेणियो मे बडी तेजी के साथ पहाडो को काटती हुई, शोर करती हुई, नीचे मैदान में उतरती हैं, मैदान मे इनकी चाल कुछ धीमी हो गई है। मैदान मे ये नदियाँ प्राय: अपने बहने की जगह बदल देती हैं जिससे पास के क्षेत्रों को हानि पहुँचती है। इसका कारण यही है कि यह मैदान चौरस और समतल है। आगे ये नदियाँ समुद्र के पास मिट्टी जमा करती हैं और समुद्र में मिल जाती हैं।

इस मैदान की उपयुक्त जलवायु और उपजाऊ भूमि के कारण यहाँ के निवासियो का मुख्य पेशा कृषि है। सच तो यह है कि यहाँ के लोग कृषि को पेशा या धन्धा नही मानते, वह तो उनके जीवन का एक ढग और अग मात्र बन गया है। भारत की सबसे अधिक घनी आबादी इसी भाग मे बसी हुई है। आवागमन के साधनो का इस क्षेत्र मे अच्छा विकास हुआ है और हो रहा है। व्यापार उन्नति पर है। लोहा, कोयला इत्यादि खनिज पदार्थ मिलते है। इसलिए यहाँ पर कृषि के साथ ही अनेक उद्योगो ने भी उन्नति की है जैसे जूट उद्योग, लोहा और इस्पात उद्योग, चीनी उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, काँच उद्योग, तेल उद्योग, चमड़ा उद्योग इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुटीर उद्योग-धन्धों ने उन्नति की है। सत्य तो यह है कि भारतीय सभ्यता का जन्म और पोषण इसी प्रदेश मे हुआ है।

3 दक्षिणी पठार

मध्यवर्ती मैदान के दक्षिण का, तटीय मैदानों को छोड़कर, लगभग समस्त भाग पठारी है। इसकी ऊँचाई 300 से 900 मीटर तक है। यह पठारी-भाग त्रिभुजाकार-सा है और तीनों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है। उत्तर मे मालवा और अरावली पठार तथा विन्ध्याचल और सतपुड़ा की पर्वत-श्रेणियाँ हैं। पूर्व मे पूर्वी घाट और पश्चिम मे पश्चिमी घाट हैं। पूर्वी

घाट और समुद्र के बीच जो मैदान है वह कोरोमडल तट कहलाता है। यह मैदान पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच के मैदान से, जिसे कोकण और मालावार तट कहते हैं अधिक बडा है। मालावार और कोकण का तट एक पट्टी की तरह फैला हुआ है जिसकी चौडाई लगभग 65 किलोमीटर से अधिक नही है। पश्चिमी घाट इस मैदान के तट पर एक दीवार की भाँति खडे हुए है जिनकी ऊँचाई लगभग 1,000 मीटर है परन्तु कोई-कोई चोटियाँ 2,700 मीटर तक ऊँची हैं। पश्चिमी घाट प्राय कटे-फटे हुए नही हैं। पठार और पश्चिमी तटीय मैदान को
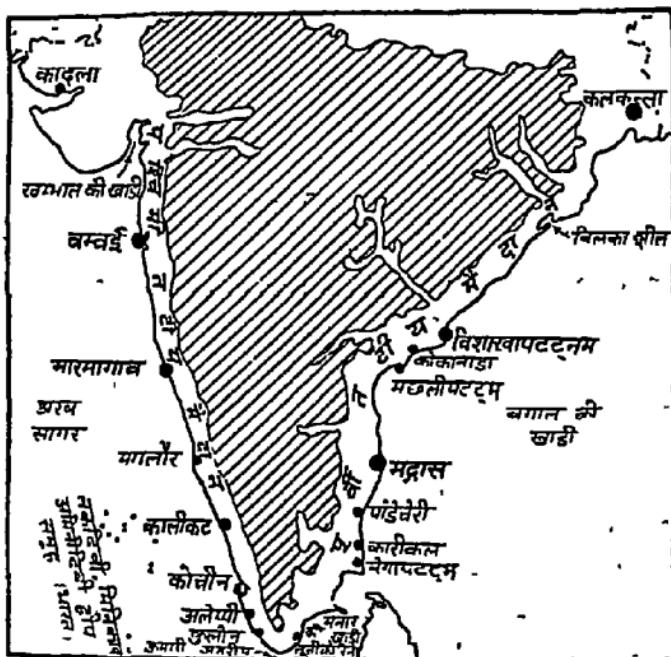
चित्र 5—भारत का दक्षिणी पठार और तटीय मैदान

मिलाने वाले प्रमुख द्वार (दर्रे) पाल घाट, थाल घाट और भोर घाट हैं। पश्चिमी घाट लगभग 1,600 किलोमीटर लम्बे हैं और कुमारी-अन्तरीप तक चले गये है। पश्चिम की ओर केवल नर्मदा और ताप्ती नदियाँ बहती हैं जो पठारो को काटती हुई गहरी बहती हैं और कही-कही प्रपात बनाती हैं।

पठार का उत्तरी भाग, जिसमे मालवा और अरावली के पठार सम्मिलित हैं, राजस्थान तक फैला हुआ है। इनका ढाल उत्तर-पूर्व की ओर है। आबू

जलवायु के विचार से अच्छा स्थान माना गया है। आबू पर्वत की ऊँचाई लगभग 1,500 मीटर है। उत्तरी पर्वतीय रेखा, जो उत्तरी भारत को दक्षिण से पृथक् करती है, पश्चिम से पूर्व तक फैली हुई है। सतपुड़ा, महादेव और मैकाल पर्वत श्रेणियाँ इस दीवार का निर्माण करती हैं। विन्ध्याचल और अजन्ता की पर्वत श्रेणियाँ इस दीवार को और भी सुदृढ करती हैं। इनकी ऊँचाई 450 मीटर से 1,200 मीटर तक है। ऊँचाई और जगलो के आ जाने से उत्तर से दक्षिण की ओर जाना अत्यन्त कठिन था, परन्तु अब रेल और सड़को के मार्गों द्वारा ये भाग मिल गये हैं।

पूर्व की ओर पूर्वी घाट कम ऊँचे हैं और पश्चिमी घाट से कई बातो मे भिन्न हैं। पूर्वी घाट की औसत ऊँचाई केवल 600 मीटर है जबकि पश्चिमी घाट 600 से 1,200 मीटर और कही-कही बहुत ऊँचे उठे हुए हैं। पश्चिम मे केवल नर्मदा और ताप्ती ही पश्चिमी घाट को काटती है; शेष भाग प्राय निरन्तर दीवार की तरह फैला हुआ है। पूर्वी घाट महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी नदियो में बीच-बीच में कटे-फटे और दूर-दूर हो गये हैं। पूर्वी घाट का ढाल भी अपेक्षाकृत कम है। इन घाटो की समुद्र से दूरी भी प्राय: एक-सी नहीं है—कहीं कम और कही अधिक है। पूर्वी घाट उत्तर-पूर्व मे छोटा नागपुर की पहाड़ियो से दक्षिण में नीलगिरि तक फैले हुए हैं। उटकमण्ड, जो जलवायु और प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है, इसी पर्वत पर स्थित है। उटकमण्ड गर्मियो मे मद्रास की राजधानी रहता है।

पठार का ढाल प्राय: पश्चिम से पूर्व की ओर है, इसलिए अधिक नदियाँ पूर्व की ओर बही है। नदियाँ बरसाती हैं और वर्ष के शेष भाग में सूखी रहती हैं। इन नदियों का बाढ़ का पानी इकट्ठा करके सिंचाई के काम में लिया जाता है और जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है। इन नदियों मे नावें नही चल सकती।

पठार की चट्टानें हिमालय से भी प्राचीनतर हैं। इसके उत्तर-पूर्वी किनारे पर भारतवर्ष की प्रसिद्ध कोयले की खानें रानीगंज और झरिया में पाई जाती हैं। विन्ध्याचल के उत्तरी ढालों और गोदावरी नदी की घाटी में भी कोयला पाया जाता है। कोलार में सोना; विशाखापट्टनम, मैसूर और मध्य प्रदेश में मैंगनीज; आन्ध्र और दक्षिण-पूर्व मे अभ्रक और बिहार-उड़ीसा में लोहा और तांबा प्राप्त होते है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश और मद्रास में कुछ हीरे और बहुमूल्य पत्थर पाये जाते हैं।

इस भाग की काली मिट्टी कपास की उपज के लिए प्रसिद्ध है। ढालो पर चाय और कहवा भी उगाये जाते हैं। मसाले भी होते हैं। पठारी जगलो से लकडी और अन्य पदार्थ मिल जाते हैं।

4 तटीय मैदान

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, उत्तरी मैदान के दक्षिण तक का लगभग समस्त भाग पठारी है, परन्तु यह पठार मैदानो से घिरा है। पूर्वी घाट और समुद्र के बीच मे जो मैदान है उसे हम पूर्वी तटीय मैदान कहेगे और पश्चिमी घाट और अरब सागर के बीच मे जो मैदानी पट्टी है उसे हम पश्चिमी तटीय मैदान कहेगे। (देखिये चित्र 5) पूर्वी तटीय मैदान को कोरो-मण्डल तट और पश्चिमी तटीय मैदान को उत्तर मे कोंकण और दक्षिण में मालाबार का तट कहते हैं। ये मैदान प्राय कछारी मिट्टी से बने है।

पूर्वी तटीय मैदान 80 से 115 किलोमीटर तक चौडा है जब कि पश्चिमी तटीय मैदान प्राय 65 किलोमीटर से भी कम चौडा है। पूर्वी तटीय मैदान उत्तर मे गगा नदी के मैदान से मिला हुआ है। इस मैदान का उत्तरी भाग कुछ तो उत्तरी मैदान की नदियो से कुछ पठारी नदियो के द्वारा लाई हुई मिट्टी से और कुछ लहरो की क्रिया (समुद्र की लाई हुई मिट्टी) से बना हुआ है। महानदी और गोदावरी के डेल्टे इस भाग मे प्रमुख हैं और कही कही समुद्री किनारों के समीप तक प्राचीन चट्टाने दृष्टिगोचर होती हैं। इस मैदान के दक्षिण का भाग प्राय समुद्र की लाई हुई मिट्टी से बना है। समुद्री किनारा नदियो, डेल्टो, झीलो और खाडियो से कट-फट गया है। चिल्का झील प्रसिद्ध है। पूर्वी तटीय मैदान मे चावल उगाया जाता है और नारियल के पेड पाये जाते हैं।

कोकण और मालाबार का पश्चिमी तटीय मैदान एक पतली सँकरी पट्टी के रूप मे चला गया है। यह भाग उत्तर मे राजपूताना और थार मरु-स्थल से मिला हुआ है। बम्बई के उत्तर मे, जहाँ नर्मदा और ताप्ती नदियाँ पश्चिम की ओर अरब सागर मे बही हैं यह मैदान कुछ चौडा है। दक्षिण में यह मैदान अधिक सँकरा हो गया है। यहाँ झीलें पायी जाती हैं जिनमें जहाज भी आ-जा सकते हैं।

संक्षेप

प्राकृतिक बनावट के आधार पर भारतवर्ष को चार प्राकृतिक

भागों में बांटा जा सकता है—(1) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश, (2) मध्यवर्ती मैदान, (3) दक्षिणी पठार, और (4) तटीय मैदान।

उत्तरी पर्वतीय प्रदेश का भारतवर्ष के ऊपर गहरा आर्थिक प्रभाव पड़ा है, परन्तु इस प्रदेश की आबादी बहुत कम है तथा उद्योग, व्यापार और परिवहन के साधन प्राय: उपलब्ध नहीं हैं। जीवन कठिन है—कुछ लोग कुलीगीरी करते हैं, कुछ होटल व्यवसाय में लगे है और कुछ स्थानों पर कृषि भी की गई है।

लगभग 2,400 किलोमीटर लम्बा और 320 किलोमीटर चौड़ा मध्यवर्ती मैदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। यह नदियों की लायी हुई मिट्टी से बना है। वर्षा और सिंचाई के साधन उपलब्ध होने के कारण यह भाग कृषि के लिए सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। आबादी घनी है और व्यापार, उद्योग तथा परिवहन के साधनों का अच्छा विकास हुआ है।

दक्षिणी पठार पहले अविकसित था, परन्तु अब इसका काफी विकास हुआ है। इसकी काली मिट्टी कपास की उपज के लिए प्रसिद्ध है। कोरामण्डल, कोंकण और मालाबार के तटीय मैदान सँकरी पट्टियों के रूप मे फैले हुए हैं और समुद्र की लायी हुई मिट्टी से बने हैं। कृषि, व्यापार, उद्योग इत्यादि की उन्नति हुई है।

प्रश्न

1. "यदि मिस्र देश नील नदी का उपहार है तो उत्तरी भारत, बल्कि सम्पूर्ण देश हिमालय का उपहार है।" विवेचन कीजिए।
2. भारतवर्ष मे मध्यवर्ती मैदान की प्राकृतिक दशा सम्बन्धी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसकी आर्थिक दशा और व्यवसायों के विकास पर उनका जो प्रभाव पड़ा है उसे स्पष्ट कीजिए।
3. भारतवर्ष को प्राकृतिक भागो मे बाँटिए और किसी एक भाग के धरातल की बनावट का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. भारत के आर्थिक जीवन पर हिमालय का प्रभाव स्पष्ट कीजिए।

अध्याय 3

जलवायु और वर्षा

(Climate and Rainfall)

जलवायु के अन्तर्गत हम तापक्रम, हवाओ और वर्षा की विभिन्न दशाओ और उनके कारणो का अध्ययन करते हैं। आर्थिक भूगोल के अध्ययन मे जलवायु का विशेष महत्व है। प्रत्येक देश की आर्थिक दशा पर उस देश की जलवायु का अनेक प्रकार मे प्रभाव पडता है। भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देशों पर जलवायु का जो प्रभाव पडता है वह किसी से छिपा नहीं है। सामान्यतः जलवायु का जो प्रभाव किसी देश के आर्थिक विकास पर पडता है उस पर यहाँ हम सक्षेप मे दृष्टिपात कर सकते हैं।

भारतवर्ष की जलवायु

भारतवर्ष एक विशाल देश है। पिछले अध्यायो मे उसकी स्थिति और प्राकृतिक रचना का उल्लेख किया जा चुका है। भारतवर्ष के जलवायु को समझने के लिए उसकी स्थिति और प्राकृतिक दशाओ को भली प्रकार ध्यान मे रखना होगा। इन दोनों बातो का सम्बन्ध स्थापित करते हुए हमे दवाव, तापक्रम, हवाओ और वर्षा की दशाओ पर विचार करना है। इन्ही मौसमी दशाओ का अध्ययन हम जलवायु के अन्तर्गत करेंगे। यहाँ कुछ मोटी-मोटी बातें समझ लेने से बडी सुगमता होगी —

(1) भारतवर्ष 8° और 37° उत्तरी अक्षांशो के बीच स्थित है। कर्क रेखा उसके मध्य से होकर गुजरती है। इस प्रकार लगभग आधा भाग उष्ण कटिबन्ध में और उत्तर का शेष भाग समशीतोष्ण कटिबन्ध मे आता है। परिणामस्वरूप, दक्षिणी भाग पूरे वर्ष लगभग एक-सा गरम बना रहता है परन्तु उत्तरी भाग, गर्मियो मे सूर्य के कर्क रेखा पर चमकने के कारण, अत्यन्त गरम और जाडो में जब सूर्य मकर रेखा पर चमकता है तो काफी ठंडा हो जाता है, यद्यपि प्राकृतिक दशाओं का भी प्रभाव पडता है।

(2) भारतवर्ष विशाल एशिया महाद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग मे स्थित है। एशिया का उत्तरी भाग आर्कटिक वृत्त मे होने से अत्यन्त ठंडा है और वर्फ गिरा करती है, परन्तु अल्टाई पर्वत श्रेणी स लेकर हिमालय तक कई ऊँची-ऊँची लम्बी पर्वतीय दीवारें बीच मे आ जाने के कारण भारतवर्ष पर उन उत्तरी हवाओ का कोई प्रभाव नही पड़ता है।

(3) जैसा कि अन्यत्र बताया जा चुका है, भारतवर्ष की स्थिति प्रायद्वीपीय है। उत्तर मे विशाल भू-भाग है और उसके दक्षिण मे अरब सागर, बगाल की खाडी और हिन्द महासागर हैं। एशिया की दवाव की दशाओ का परिणाम यह होता है कि जाडो मे हवाएँ स्थल की ओर से समुद्र की ओर चलती हैं और इसलिए शुष्क होती हैं। भारतवर्ष मे जाड़े की इन हवाओ का रुख उत्तर-पूर्वी हो जाता है। गर्मियो मे दवाव की दशाएँ वदल जाने से हवाएँ समुद्र से स्थल की ओर चलने लगती है। ये हवाएँ नमी से लदी हुई और वर्षा लाने वाली होती हैं। भारतवर्ष मे गर्मियो की इन हवाओ का रुख प्राय: दक्षिण-पश्चिमी रहता है। **मौसम की इन विशेषताओ के कारण भारतवर्ष का जलवायु 'मानसूनी जलवायु' कहलाता है।** जाडे की हवाओ को जाडे का मानसून और गर्मियो की हवाओ को गर्मियो का मानसून कहा जाता है। गर्मियो के मानसून से भारतवर्ष मे अधिक वर्षा होने का कारण यह है कि देश के उत्तर मे हिमालय पर्वत होने से ये हवाएँ अपनी सारी नमी छोड जाती है। उपर्युक्त दशायें होने पर समुद्र के समीपवर्ती भागो मे वर्षा की मात्रा अधिक रहती है।

(4) स्थानीय प्राकृतिक दशाओ का सामान्यतया जलवायु पर और विशेषतया वर्षा के वितरण पर बहुत प्रभाव पडा है। मौसमी दशाओ के अध्ययन से यह भली-भाँति विदित होगा। यहाँ एक-दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा। पश्चिमी घाट के पश्चिमी भागो मे अधिक वर्षा होने का कारण यह है कि ये भाग सीधे हवाओ के रुख पर हैं जब कि पश्चिमी घाट के पूर्व की ओर के भाग वृष्टि-छाया प्रदेश मे होने के कारण अपेक्षाकृत शुष्क रह जाते हैं। अरब सागर का मानसून नर्वदा की घाटी मे होकर छोटा नागपुर के पठार पर भी वर्षा करता है और इसी प्रकार पालघाट (पश्चिमी घाट दर्रा) मे होकर मद्रास मे भी वर्षा करता है। चेरापूँजी में अत्यधिक वर्षा और थार मरुस्थलीय प्रदेश मे अत्यल्प वर्षा होने के कारणो मे मुख्य स्थानीय प्राकृतिक दशाएँ हैं। (देखिये चित्र 6)
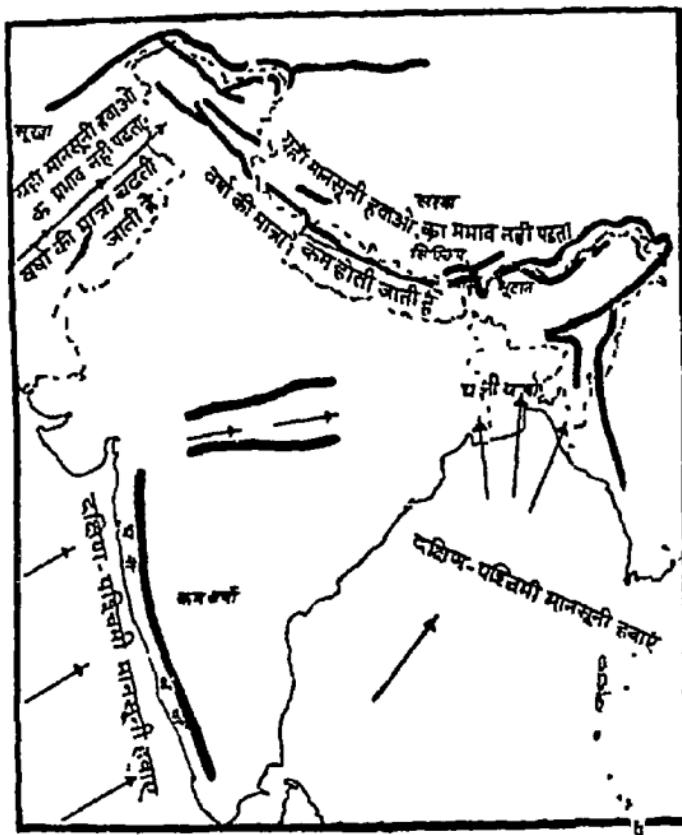
चित्र 6—भारत के पर्वतों का विस्तार और हवाओ की दशा

वायु-दाब और हवाओ का रुख

भारतवर्ष मे गर्मियो मे हवाओ का रुख प्राय दक्षिण-पश्चिमी और जाडो मे प्राय उत्तर-पूर्वी क्यो रहता है ? इसी प्रकार बंगाल की खाडी मे उठने वाला मानसून बंगाल के क्षेत्रो मे वर्षा करके पश्चिम की ओर क्यो मुड जाता है अर्थात् उसका रुख पूर्वी क्यो हो जाता है ?

इन प्रश्नो को स्पष्ट समझने के लिए हमे वायुदाब (हवा के दबाव) की दशाएं समझनी चाहिए। हवाएं सदैव अधिक दाब के क्षेत्रो मे कम दाब के क्षेत्रो की ओर चलती है। भारतवर्ष मे हवा के दाब पर मुख्यतया तापक्रम का प्रभाव पडता है। सरलता से समझने के लिए यो समझिए कि जहां गर्मी (ताप-

क्रम) अधिक होती है वहाँ की हवा गर्म होकर ऊपर उठती है और उस स्थान को पूरा करने के लिए कम गर्म स्थानों की हवा उस ओर आयेगी। दो स्थानो
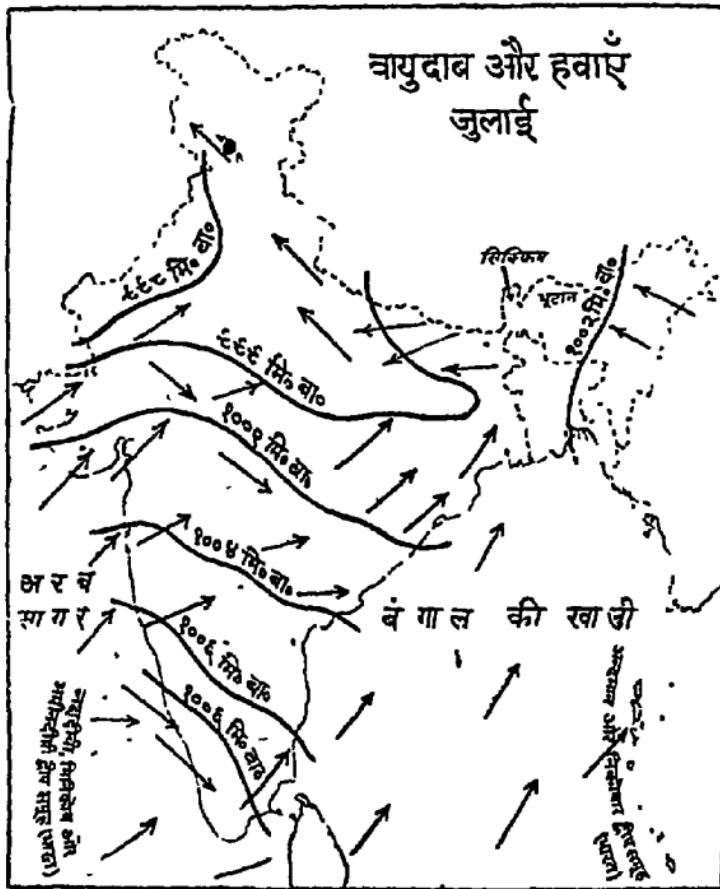
चित्र 7—जुलाई में वायु दाब और हवाएँ

के तापक्रमो मे अन्तर होने के कारण हवा के दबावो मे जितना ही अधिक अन्तर होगा और जितनी दूर से समुद्री हवाएँ आयेंगी उनमे उतनी ही अधिक वर्षा करने की शक्ति होगी। यदि दवाव की दशाएँ इस प्रकार की हैं कि हवाएँ स्थल की ओर मे चल रही हैं तो वे शुष्क होगी।

भारतवर्ष के चित्र में देखो कि हवाएँ गर्मी और जाडे में क्रमशः किस दिशा से किस दिशा की ओर चलती हैं। गर्मी का मानसून कलकत्ते से दिल्ली की
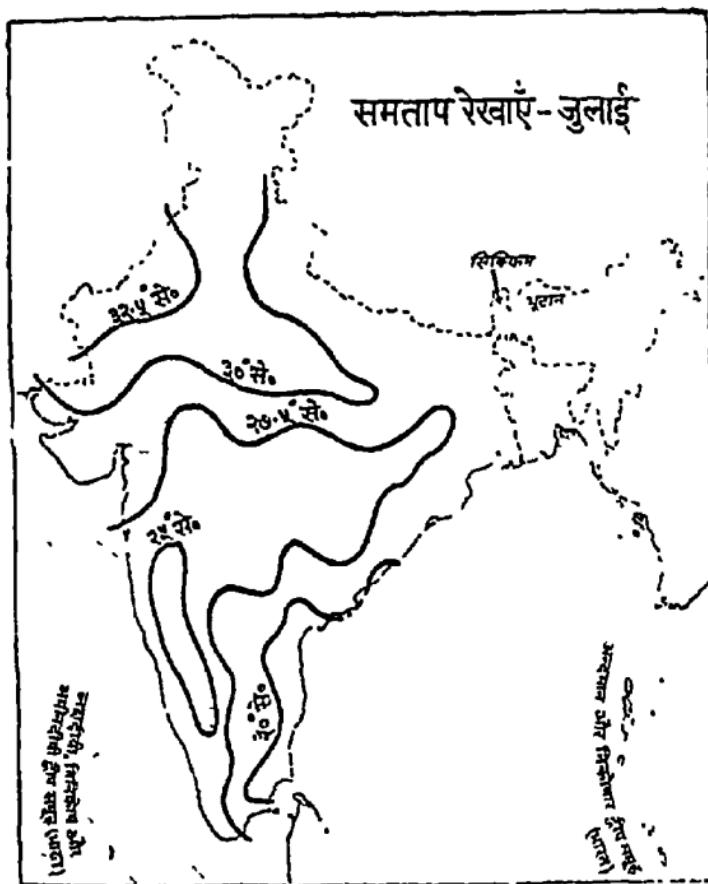
चित्र 8—जुलाई की समताप रेखाएँ

ओर क्यों मुड जाता है, यह समझने का प्रयत्न करो। समताप रेखाओ और वायुदाब के चित्रो से हवाओं का रुख समझना सरल है (देखिये चित्र 7, 8)।

मौसमी दशाएँ

भारतवर्ष के जलवायु मे गर्मी और जाडे के मानसूनो के दो बदलते हुए मौसम ही प्रमुख हैं। षट् ऋतुओ (वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त बसन्त और ग्रीष्म) का वर्णन भी आता है, परन्तु भारत के अधिक लोग भारत में तीन ऋतुएँ अथवा मौसम मानते हैं। प्रत्येक मौसम प्राय: चार महीने रहता है।

नवम्बर से फरवरी तक जाडा, मार्च से जून तक गर्मी और जुलाई से अक्टूबर तक बरसात का मौसम (चौमासा) रहता है।

(क) जाड़े का मौसम (नवम्बर से फरवरी तक)

लगभग सितम्बर मास के अन्त तक उत्तर-पश्चिमी भारतवर्ष मे वर्षा समाप्त हो जाती है। अक्टूबर मास के अन्त तक दक्षिणी प्रायद्वीप के आधे भाग को छोड़कर
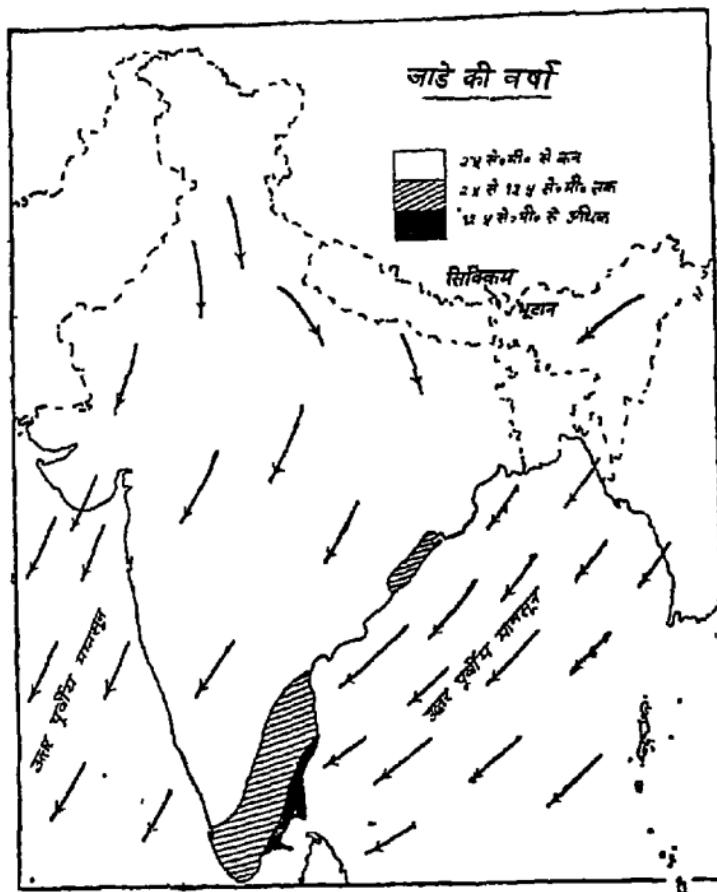
चित्र 9—भारत में जाड़े की वर्षा

लगभग पूरे देश मे वर्षा समाप्त हो जाती है। बरसाती हवाएं पीछे लौटने लगती हैं। इधर उत्तर में समशीतोष्ण कटिबन्ध की ठंडी पश्चिमी और उत्तरी

हवाएँ बहने लगती हैं। मौसम सुहावना और आकाश स्वच्छ रहने लगता है। हवाओं की गति कम हो जाती है। मौसम की ये दशायें धीरे-धीरे पूर्वी और दक्षिणी भारत मे फैलने लगती है। हिमालय की ऊँची सुदृढ दीवार उत्तरी एशिया की ठडी हवाओं को रोककर भारत को अधिक ठडा होने से बचाती है। दाब की दशाओ के कारण, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इन दिनों भारतवर्ष उत्तर-पूर्वी जाडे की मानसूनी हवाओ (जिन्हे उत्तर-पूर्वी व्यापारिक हवाओं से मिला हुआ समझना चाहिए) के रुख पर होता है। ये हवाएँ स्थलीय होने के कारण प्राय. शुष्क होती हैं परन्तु जब ये उत्तर-पूर्वी हवाएँ अक्टूबर के अन्त में बगाल की खाडी के ऊपर बहती हैं तो लौटती हुई गर्मी की नम मानसूनी हवाओ से मिलती है और क्योंकि इनका रुख उत्तर-पूर्वी होता है इसलिए कृष्णा नदी के दक्षिण मे पूर्वी घाट के पूर्वी किनारे पर (मद्रास के पास) 1,000 मिलीमीटर के लगभग वर्षा होती है। उत्तर-पश्चिमी भारत मे लगभग दिसम्बर के अन्त मे और आगे चक्रवाती हवाओं से वर्षा होती है और कभी कभी कहीं-कहीं बर्फ भी गिरती है।

(ख) गर्मी का मौसम (मार्च से जून तक)

धीरे-धीरे सूर्य भूमध्य रेखा की ओर चमकने लगता है। 21 मार्च को सूर्य भूमध्य रेखा पर सीधा चमकता है। भारतवर्ष का दक्षिणी भाग उष्ण कटिबन्ध मे होने के कारण गरम होने लगता है। ज्यो-ज्यो सूर्य कर्क रेखा की ओर बढता है, गर्मी बढ़ती जाती है। तापक्रम शीघ्रता से बढता जाता है और वायुदाब कम होता जाता है। उत्तरी भारत मे लू और आँधियाँ चलने लगती हैं। 21 जून को सूर्य कर्क रेखा पर सीधा चमकता है और स्थल प्रदेश एक दम गर्म हो जाता है और हवा हल्की होकर ऊपर उठ जाती है। खाली जगह भरने के लिए समुद्र प्रदेशों से, जहाँ तापक्रम कम और वायुदाब अधिक होता है, मई के अन्त से ही हवाएँ समुद्र की ओर से स्थल की ओर बहने लगती हैं जिनसे जून मे ही कहीं-कहीं वर्षा होने लगती है। समुद्री हवाएँ बाद में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के रूप मे परिणत हो जाती हैं। (देखिये चित्र 10)
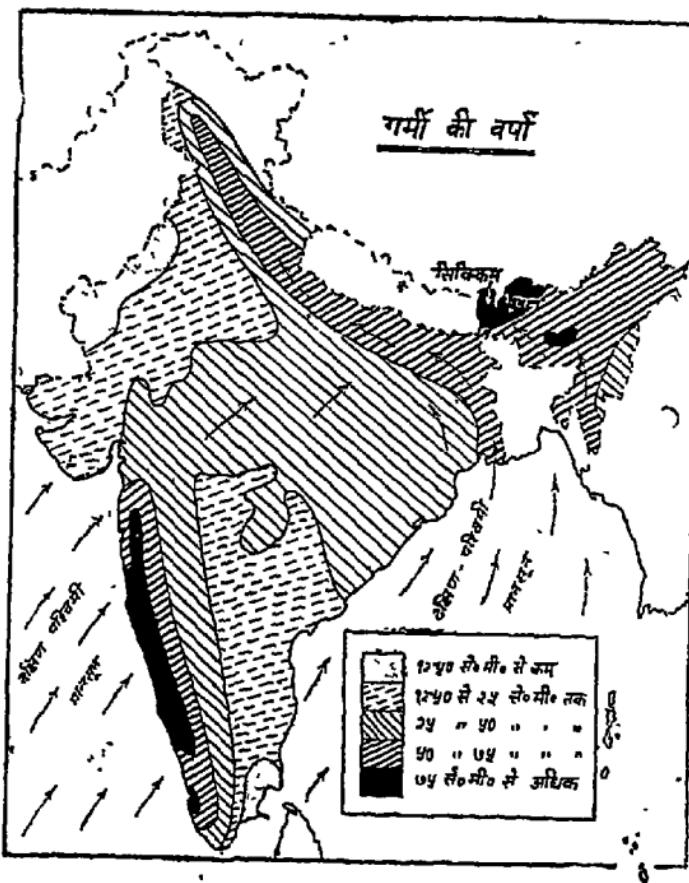
चित्र 10—भारत में गर्मी की वर्षा

(ग) बरसात का मौसम (जुलाई से अक्टूबर तक)

भारतवर्ष के लिए यह मौसम अत्यन्त महत्वपूर्ण है, विशेषतः इसलिए कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। भारतवर्ष के सुदूर दक्षिण 30° द० अक्षांश से भूमध्य रेखा तक का प्रदेश दक्षिण-पूर्वी हवाओं का क्षेत्र है परन्तु भूमध्य रेखा के उत्तर मे ऊपर बताये हुए कारणों से अर्थात् वायुदाब की दशाओं के कारण हिन्द महासागर से भारतवर्ष की ओर इन हवाओं का रुख दक्षिण-पश्चिमी हो जाता है और इसे गर्मी का मानसून या दक्षिण-पश्चिमी मानसून कहते हैं। यह मानसून धारा हिन्द महासागर से दो भागों मे विभक्त होती है—

(1) अरब सागर का मानसून, और (2) बंगाल की खाडी का मानसून।

(1) अरब सागर का मानसून – ये हवाएं सीधी पश्चिमी तट की ओर चलती हैं। यहां पश्चिमी घाट के कारण, जो लगातार फैले हुए हैं, ये हवाएं ऊपर चढ़ती है और घनी वर्षा होती है। लगभग पूरे पश्चिमी तट पर 2 500 मिलीमीटर के लगभग वर्षा होती है। यह वर्षा जून के आरम्भ से सितम्बर तक होती है। पश्चिमी तटवर्तीय प्रदेशों मे वर्षा करके जब ये हवाएं पश्चिमी घाट को पार करती हैं तो इन हवाओ मे थोडी नमी रह जाती है और ये प्रदेश

चित्र 11—वृष्टि-छाया प्रदेश
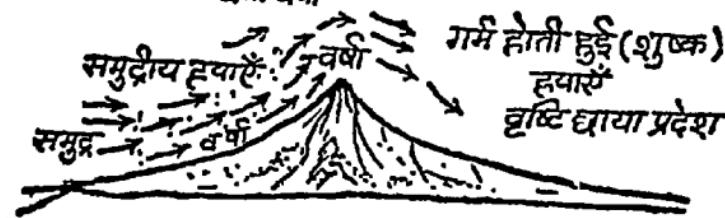
[वृष्टि-छाया प्रदेश (Rain shadow area) उन भागो को कहते हैं जहाँ वर्षा बहुत कम होती है अथवा बिल्कुल नहीं होती। कारण स्पष्ट है कि समुद्री हवाएं पहाड़ के कारण ऊँची उठकर ठंडक पाकर अपनी सब नमी त्याग देती हैं और दूसरी ओर (Rain shadow area) के मैदान में उतरते समय गर्म होती हैं।]

वृष्टि-छाया मे होने के कारण यहां केवल 750 मिलीमीटर के लगभग वर्षा होती है। यह वर्षा अनिश्चित होती है। आगे चलकर ये हवाएं बंगाल की खाडी के मानसून से मिल जाती है। उत्तर की ओर ये मानसून गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान के ऊपर से होकर गुजरते हैं, जिससे तटवर्ती प्रदेशों मे और अरावली पर्वत श्रेणियों के समीपवर्ती प्रदेशों मे हल्की वर्षा हो जाती है। राजस्थान का पश्चिमी भाग जो थार प्रदेश मे सम्मिलित है, प्राय बिल्कुल शुष्क रहता है।

(2) बंगाल की खाड़ी का मानसून—मानसून का यह भाग हिन्द महासागर से बंगाल की खाड़ी पर होता हुआ बंगाल और असम की ओर जाता है जिससे पूर्वी पाकिस्तान (पू० बंगाल) के निम्न प्रदेश और असम की पहाड़ियों

के दक्षिण मे घनी वर्षा होती है। असम के प्रदेश मे शायद ससार मे सबसे अधिक वर्षा होती है। खासी पहाडियो के ढाल पर स्थिति चेरापूँजी मे वार्षिक वर्षा 10,000 मिलीमीटर से भी अधिक होती है। बगाल की खाडी के इस मानसून का रुख दक्षिण-पूर्वी हो जाता है जिससे गगा नदी के मैदान और हिमालय की तराई मे वर्षा होती है। बगाल की खाडी के मानसून का रुख असम और बगाल से दक्षिण-पूर्वी और पूर्वी हो जाने का कारण यह है कि पश्चिमी क्षेत्रो का तापक्रम अधिक और वायु-दाब कम होता है। जुलाई की समताप रेखाओ और वायु-दाब के चित्र देखो। जैसे-जैसे पश्चिम की ओर ये हवाएँ बढती है वैसे-वैसे वर्षा कम होती जाती है, यहाँ तक कि पश्चिमी राजस्थान, पजाब इत्यादि के भाग बिल्कुल शुष्क रह जाते हैं।

पूर्वी पजाब उत्तर-प्रदेश, छोटा नागपुर और उडीसा के कुछ भागो मे अनिश्चित रूप से अरब सागर या बगाल की खाडी की मानसून शाखा से वर्षा हो जाती है। गर्मी के इस मानसून के समय प्रायः चक्रवात भी चला करते हैं जिनसे वर्षा होती है। कभी-कभी इनसे बडी हानि होती है।

भारतवर्ष मे वर्षा की विशेषताएँ

भारतवर्ष मे वर्षा की कुछ विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। ऐसी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है—

(1) भारतवर्ष मे लगभग 90 प्रतिशत वर्षा दक्षिण-पश्चिमी मानसून से होती है।

(2) भारतवर्ष मे होने वाली वर्षा का तीन-चौथाई से भी अधिक (लगभग 78 प्रतिशत वर्षा) जून से सितम्बर तक चार महीनो मे होती है।

भारतवर्ष की वर्षा मौसमी है, यह उसका मुख्य लक्षण है।

(3) समुद्र की समीपता और स्थानीय प्राकृतिक दशाओ का वर्षा की मात्रा पर बहुत प्रभाव पडा है।

(4) भारतवर्ष में वर्षा का वितरण असमान है। वर्षा के वितरण की असमानता की दृष्टि से भारतवर्ष को मुख्यतः चार भागो में बाँटा जा सकता है।[1] ये निम्नलिखित है—

---

1 विलियम्सन और क्लार्क ने वर्षा की मात्रा और अनिश्चितता (Variability) के आधार पर विभाजन के पूर्व के भारत को तेरह भागो (Rainfall regions) में बाँटा था।

(क) घनी वर्षा के क्षेत्र—पश्चिमी घाट के पश्चिम के प्रदेश, असम की पहाड़ियो और पूर्वीय हिमालय के दक्षिणी ढाल, तराई प्रदेश। इन क्षेत्रो मे वार्षिक वर्षा 2,000 किलोमीटर से अधिक होती है।

(ख) शुष्क अथवा अत्यल्प वर्षा के क्षेत्र राजस्थान का थार मरुस्थलीय भाग उड़ीसा का कुछ पश्चिमी भाग, दक्षिण-पश्चिमी पजाव। इन क्षेत्रो में वार्षिक वर्षा का औसत 250 मिलीमीटर से कम रहता है।

(ग) अच्छी वर्षा के क्षेत्र—वगाल, विहार, उत्तर प्रदेश उड़ीसा और आन्ध्र के तट, महाराष्ट्र और मैसूर के कुछ भाग।

(घ) साधारण वर्षा के क्षेत्र—पूर्वी पजाव, राजस्थान का दक्षिण-पूर्वी भाग, गुजरात प्रदेश, दक्षिणी पठार का अधिक भाग।

(5) वर्षा की अनिश्चितता—यह मानसूनी वर्षा पश्चिमी तटीय मैदान, असम और वगाल के कुछ प्रदेशो को छोडकर देश के शेष भाग मे प्रायः अनिश्चित होती है। कभी जल्दी आरम्भ हो जाती है, कभी वीच मे नही होती और कभी शीघ्र समाप्त हो जाती है। कभी वहुत कम होती है और कभी वहुत ज्यादा। इससे फसलो को वहुत हानि पहुँचती है। जव वर्षा वीच मे वन्द हो जाती है तो फसल सूख जाती है। यदि वर्षा शीघ्र समाप्त हो जाती है तो रवी की फसल ठीक नही होती। यदि वर्षा फसल काटते समय होती है तो अनाज खराव हो जाता है और उसकी किस्म खराव हो जाती है। कम वर्षा से सूखा पड जाती है और वर्षा अधिक हो जाने से वाढो के द्वारा फसलें ही नही घर, गाँव, मनुष्य और पशु सभी की भारी हानि होती है। फसल का अच्छा या वुरा होना मानसून के ऊपर आश्रित होता है। इसलिये भारतवर्ष के लोग विशेषत. कृषिकार भाग्यवादी हो गये हैं।

वर्षा अच्छी होने पर किसानो में खुशहाली हो जाती है, व्यापार भी चमक उठता है और सरकार की आमदनी भी अच्छी होती है। परन्तु वर्षा खराव होने से किसानो की दशा पर तो प्रभाव पड़ता है, व्यापार ठप्प हो जाता है और सरकार की आमदनी भी गिर जाती है। सरकार को रेलो से कम आमदनी होती है, विदेशी व्यापार से और आयकर से कम आमदनी हो पाती है। यही नही लगानो में छूटें देनी पड़ती हैं और तकावी ऋण देने पडते हैं। और इसी-

लिए उसे 'मानसून का जुआ' कहते हैं। सिंचाई और बाँधो इत्यादि के द्वारा आपत्तियों से बचने का प्रयत्न किया गया है।
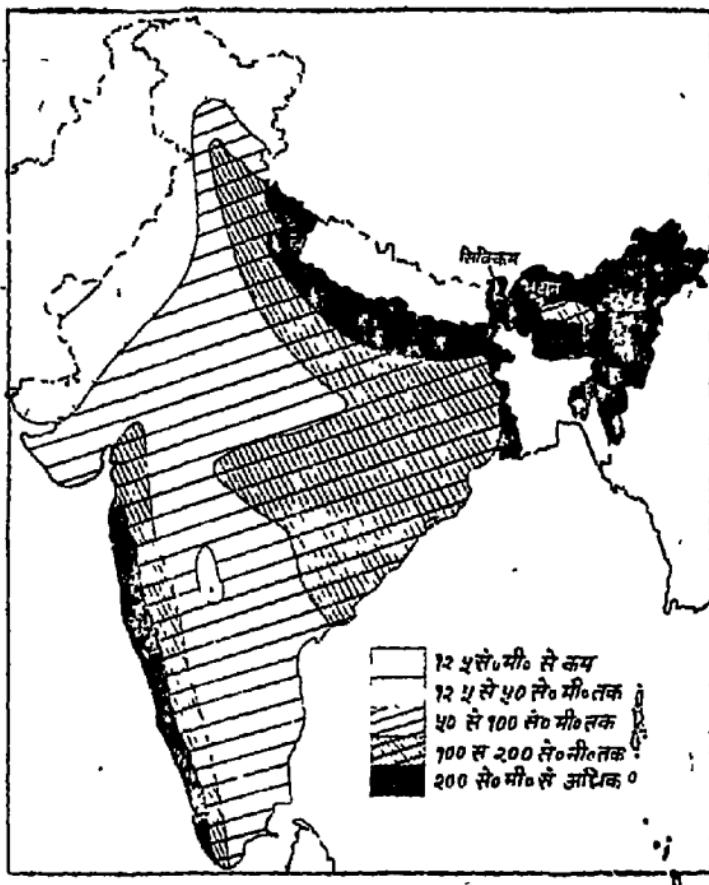
चित्र 12—भारत में वार्षिक वर्षा का वितरण

जलवायु का भारतवर्ष की आर्थिक दशा पर प्रभाव

भारतवर्ष के जलवायु का प्रभाव भारतवर्ष के मनुष्य पर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

(1) यहाँ के मनुष्य गर्म जलवायु के कारण आलसी और वर्षा की अनिश्चितता के कारण भाग्यवादी बन गये हैं। भारतवर्ष के अधिकतर भाग

मे गर्मियो मे काम करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त उनकी आवश्यकताएँ भी थोडी हैं। गर्मियो मे एक कुर्ता धोती से काम चल जाता है और जाडो मे भी अधिक जाडा न पडने के कारण कम वस्त्रो से काम निकल जाता है। भोजन सम्बन्धी आवश्यकताएँ चावल दाल रोटी और जाडो मे बाजरा, गुड इत्यादि से पूरी हो जाती है। इसलिए वे परिश्रम करना नही चाहते। यही कारण है कि अधिकतर लोग आलसी हो गये है। हाँ, कुछ थोड़े मे लोग अवश्य धर्म और साहित्य की सेवा और खोज का कार्य करते है।

(2) जनसख्या के वितरण पर जलवायु का यह प्रभाव पडा है कि जहाँ भली प्रकार वर्षा होती है अथवा जहाँ सिचाई के साधन उपलब्ध है, प्राय वे प्रदेश घने बसे हुए हैं। बगाल, केरल, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पूर्वी पजाब इत्यादि सबसे अधिक घने बसे हुए है। कुछ पहाडी स्थान अपनी स्वास्थ्यप्रद जलवायु के कारण ही बसे हुए हैं और कुछ स्थान गर्मी के दिनो मे राज्यो की राजधानी बना लिये जाते है। उटकमण्ड, शिमला, मसूरी, नैनीताल, आबू दार्जिलिंग प्रसिद्ध पहाडी स्थान हैं।

(3) भारतवर्ष की कृषि पर जलवायु का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव मुख्यतया निम्नलिखित दिशाओ मे अत्यधिक महत्वपूर्ण है—

(i) फसलों के वितरण पर—पश्चिमी बगाल की मुख्य फसले धान और जूट, पूर्वी पजाब और उत्तर प्रदेश की मुख्य फसल गेहूँ और उत्तर प्रदेश तथा बिहार मे गन्ने की खेती मुख्यतया जलवायु सम्बन्धी कारणो से होती है (यद्यपि मिट्टी और सिचाई के साधनो इत्यादि का भी महत्व है)।

(ii) भारतवर्ष मे वर्षा की अधिकाश मात्रा जून से अगस्त तक तीन महीनो मे होती है। इसका प्रभाव दो रूपो मे देखा जा सकता है। जहाँ वर्षा अधिक होती है, थोड़े महीनो में अधिक वर्षा होने का अर्थ प्रायः यह होता है कि मूसलाधार वर्षा के कारण भू-क्षरण (मिट्टी का कटाव) होता है। दूसरे, क्योंकि जून-अगस्त के महीनो में गर्मी भी अपेक्षाकृत अधिक रहती हैं, अतः इस काल मे शीघ्र पकने वाली फसलें, जैसे मक्का और ज्वार, उगाई जाती हैं।

(iii) मार्च और अक्टूबर मे (मौसम बदलते समय) प्राय तूफान और ओलो से देश के कुछ भागो मे प्रतिवर्ष खडी फसलो को हानि पहुँचती है।

(iv) तापमान वितरण और वर्षा के समय का कृषि पर बहुत प्रभाव पड़ा है। भारत मे मई-जून के महीनो मे उत्तर, पश्चिमी भारत में अवश्य अधिक गर्मी होती है परन्तु देश के अधिकांश भाग मे न तो बहुत अधिक गर्मी पड़ती है और न ही बहुत कम पड़ती है। अतएव भारतवर्ष मे पूरे वर्ष कृषि हो सकती है। जाडे के महीनो में शीतोष्ण कटिबन्धीय फसलें उगाई जाती हैं। वर्षा की दृष्टि से यों समझना चाहिए कि वर्षा लगातार नही होती रहती अन्तर दे-देकर होती है जिससे कृषि करना संभव होता है।

(v) वर्षा की अनिश्चितता के कारण देश के कुछ भाग अकाल क्षेत्र गिने जाते हैं। कुछ क्षेत्रो मे अति वर्षा से भीषण हानियाँ होती हैं और कुछ भागो मे अनावृष्टि से भारतवर्ष के ऐसे प्रदेशो मे जिनमे धान मुख्य उपज है परन्तु वहाँ वर्षा अनिश्चित और 127 सेन्टीमीटर वार्षिक से कम होती है और सिंचाई के साधनो का पर्याप्त विकास नही हुआ हैं, धान की फसल को प्रतिवर्ष ही थोड़ी-बहुत हानि पहुँचाती है।

संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि जलवायु की दशाओं की विविधता के कारण भारत मे विविध फसलें उगाई जाती हैं, तथा कहाँ कौन-सी फसलें उगाई जाती हैं और वे कैसी होती हैं। प्राय. जलवायु पर निर्भर रहता है, यद्यपि सिंचाई के साधनो के विकास द्वारा अनावृष्टि या अल्प वर्षा से होने वाली हानि की आशंकाएं कम होती जा रही हैं।

(4) बंगाल मे जूट उद्योग, बम्बई में सूती वस्त्र उद्योग. उत्तर प्रदेश और बिहार मे चीनी उद्योग और असम मे चाय उद्योग जलवायु की उपयुक्तता के कारण ही विकसित हुए हैं। कश्मीर मे शाल-दुशालों का घरेलू धन्धा इसलिए प्रसिद्ध है कि वहाँ के लोग जाड़ो में बाहर निकलकर काम नहीं कर सकते।

(5) हिमालय की पहाड़ियो पर ऊँचाई के अनुसार जलवायु की विभिन्न दशाएँ होने के कारण कई प्रकार के जंगल (सदाबहार, पर्वतीय तथा पतझड़ वाले वन इत्यादि) पाये जाते हैं। इसी प्रकार भारत के विभिन्न भागो मे जलवायु की भिन्न दशाओं के कारण कई प्रकार के जंगल पाये जाते हैं।

(6) पशुओं पर भी जलवायु का प्रभाव पड़ा है। जंगली पशु अब बहुत कम रह गये हैं। परन्तु राजस्थान मे ऊँट और भेड़ें, दक्षिणी पठार मे भेड़,

रोहतक-हिसार मे गाय-बैल इत्यादि बहुत कुछ वहाँ की जलवायु के कारण ही पाये जाते हैं।

(7) मई-जून की कठोर गर्मी के पश्चात् जब एकदम वर्षा होती है तो कई स्थानो मे हैजा ओर मलेरिया इत्यादि रोग फैल जाते हैं जिनसे स्वास्थ्य और जनसंख्या की हानि होती हैं।

(8) अधिक वर्षा वाले प्रदेशो मे कुछ नदियो— जैसे ब्रह्मपुत्र नदी—की कई धाराएँ अलग होकर मिलती हैं और फिर कई स्थानो पर अलग हो गई हैं। इससे वहाँ रेल-मार्ग और सडकें बनाना कठिन हो गया है।

इस प्रकार भारतवर्ष की जलवायु का भारतवर्ष की आर्थिक दशा पर विस्तृत और व्यापक प्रभाव पडा है।

सक्षेप

जलवायु का श्रमिक की कार्यक्षमता और मनुष्य के खान-पान, रहन-सहन तथा जनसख्या के वितरण पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। कृषि, उद्योग, वनस्पति, पशु, और परिवहन के साधनो पर भी जलवायु का प्रभाव पडता है।

भारतवर्ष का जलवायु मानसूनी है। जाडे का मौसम प्राय. शुष्क रहता है। गर्मियो मे ही अधिकाश भाग मे वर्षा होती है। कुछ थोडे भाग को छोडकर प्राय. सम्पूर्ण भारत जाड़े में अधिक ठंडा नही होता। कुछ भागो मे अप्रैल और मई और कुछ भागों में मई और जून के महीने सबसे अधिक गर्म रहते हैं। जाड़े के मानसून में पूर्वीय तट के दक्षिणी भाग मे 750 मिलीमीटर से 1,000 मिलीमीटर तक वर्षा हो जाती है, शेष भाग लगभग शुष्क रहता है। गर्मियों के मानसून की दो शाखाएँ हो जाती हैं—अरब सागर की शाखा और बंगाल की खाड़ी की शाखा। इनसे पश्चिमी तट और असम तथा बंगाल मे 2,000 मिलीमीटर से अधिक वर्षा होती है। चेरापूँजी में दुनिया भर से अधिक वर्षा होती है।

भारतवर्ष के जलवायु का उसकी आर्थिक दशा पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

प्रश्न

1. जलवायु से आप क्या समझते हो ? जलवायु का देश की आर्थिक दशा पर जो प्रभाव पड़ता है उसे उदाहरण सहित समझाइये ।
2. एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये जिसमें जलवायु का मनुष्य के रहन-सहन, उपज, उद्योग और परिवहन के साधनों पर जो प्रभाव पड़ता है उस पर सोदाहरण प्रकाश डालिये ।
3. मानसून जलवायु किसे कहते हैं ? इसके मुख्य लक्षणों और पहलुओं को स्पष्ट कीजिए ।
4. भारतवर्ष के जलवायु पर प्रभाव डालने वाली दशाओं का वर्णन कीजिए । भारतवर्ष में वर्षा कब-कब और किस प्रकार होता है ? समझाइए ।

अध्याय 4

मिट्टियाँ, मिट्टी की समस्याएँ

(Soils and Soil Problems)

भूतल की सबसे ऊपर की परत जिस पर विभिन्न प्रकार की वनस्पति उगती है और पेड़-पौधे उगाए जाते हैं, मिट्टी कही जाती है।

मिट्टी का महत्व

फसलें मिट्टी के ऊपर ही उगाई जाती हैं और प्रति एकड़ उपज मिट्टी की उर्वरता पर ही निर्भर है। मिट्टी का अध्ययन निम्नलिखित दृष्टियों से भी महत्वपूर्ण है

(1) **जुताई की इकाई की दृष्टि से**—एक कृषक के लिए खेत कितना बड़ा हो, यह मिट्टी की उर्वरता देखकर ही निश्चित किया जा सकता है। यदि मिट्टी बहुत उपजाऊ है तो कम उपजाऊ मिट्टी के क्षेत्रों की अपेक्षा छोटा खेत भी उपयुक्त होता है।

(2) **फसलें**—कौन-सी फसलें उगाई जाएँ, यह भी बहुत कुछ मिट्टी के ऊपर निर्भर है, जैसे काली मिट्टी कपास के लिए अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है।

(3) **नमी की आवश्यकता**—फसल उगाने के लिए कितनी नमी की आवश्यकता है, यह मिट्टी की किस्म के ऊपर निर्भर है। रेतीली और रेगिस्तानी मिट्टी में अधिक नमी की आवश्यकता होती है।

(4) **कृषि का ढंग और खाद की किस्म**—किसी भूमि पर गहरी खेती या विस्तृत खेती हो, यह मिट्टी की उर्वरता के ऊपर निर्भर है। साथ ही खाद किस प्रकार का दिया जाय, यह तभी ठीक प्रकार निश्चित किया जा सकता है जब कि किसी विशेष फसल को उगाने के लिए मिट्टी में कौन-से तत्व होने चाहिए और किसी विशेष मिट्टी में वे तत्व हैं या नहीं, ज्ञात हो।

(5) सिंचाई कर और लगान की दरें निश्चित करते समय भी मिट्टी की किस्म का ध्यान रखा जाता है।

मिट्टी की किस्में और मिट्टी की समस्याएँ

भारतवर्ष जैसे विशाल देश में विभिन्न प्रकार की मिट्टी का पाया जाना स्वाभाविक ही है।

मिट्टी का सर्वेक्षण (Survey) कई सरकारी और गैर-सरकारी प्रयत्नों के द्वारा हुआ है, जिसमे इण्डियन ऐग्रीकल्चर इन्स्टीट्यूट, देहली द्वारा दिया हुआ वर्गीकरण अधिक पूर्ण है। नकशे भी तैयार किये गये है।

सुविधा की दृष्टि से भारतवर्ष मे विभिन्न क्षेत्रों मे विभिन्न किस्मो की पाई जाने वाली मिटटी को पाँच मुख्य भागो में बाँटा जा सकता है—

(1) कछारी मिट्टी, (2) काली मिट्टी, (3) लाल मिट्टी, (4) लैटेराइट (बलुई) मिट्टी, और (5) रेतीली या रेगिस्तानी मिट्टी।

कछारी, काली, लाल, और पीली मिट्टियाँ पोटाश और चूना में सम्पन्न होती हैं, परन्तु उनमे फास्फोरिक एसिड, नाइट्रोजन और ह्यूमस की कमी होती है।

बलुई और रेतीली मिट्टी में ह्यूमस बहुत मिलता है परन्तु अन्य तत्वों की कमी होती है।

कछारी मिट्टी— नदियो द्वारा लाई हुई मिट्टी को कछारी मिट्टी कहते हैं। कछारी मिट्टी भारतवर्ष के समस्त उत्तरी मैदान मे पाई जाती है। इस क्षेत्र के कुछ भाग में बहुत उपजाऊ कछारी मिट्टी मिलती है और कुछ बहुत कम उपजाऊ है। उत्तरी मैदान की कछारी मिट्टी तीन मुख्य नदियो की लाई हुई मिट्टी मे—पहली सिंध नदी की लाई हुई मिट्टी दूसरी, गङ्गा नदी की लाई हुई मिट्टी, और तीसरी, ब्रह्मपुत्र नदी की लाई हुई मिट्टी। इसलिए इस मिट्टी के क्षेत्रो मे राजस्थान का उत्तरी भाग, पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकतर भाग, पश्चिमी बंगाल तथा असम का आधा भाग सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के दक्षिणी प्रायद्वीप मे पूर्वी तट पर भी नदियो की लाई हुई मिट्टी मिलती है। सभी प्रदेशो मे पाई जाने वाली कछारी मिट्टी कृषि के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

काली मिट्टी— काली मिट्टी की विशेषता यह है कि यह नमी को अधिक समय तक बनाये रखती है। इस प्रकार की मिट्टी कपास की मिट्टी या रेगड भूमि भी कहलाती है। यह मिट्टी कपास की उपज के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। यह मिट्टी लावा प्रदेश मे पाई जाती है। इस प्रकार इस मिट्टी के क्षेत्र

गुजरात, महाराष्ट्र मे; मध्य प्रदेश के बहुत भाग मे, आन्ध्र के पश्चिमी भाग में, मैसूर के उत्तरी भाग मे पाये जाते हैं।

लाल मिट्टी—यह चट्टानो की कटी हुई मिट्टी है। यह मिट्टी भी अधिकतर दक्षिणी भारत मे मिलती है। लाल मिट्टी के क्षेत्र महाराष्ट्र के दक्षिण-पूर्वी भाग में, मद्रास मे मैसूर मे, आन्ध्र मे और मध्य प्रदेश के पूर्वी भागो मे, उडीसा, छोटा नागपुर और पश्चिमी बंगाल तक फैले हुए हैं।
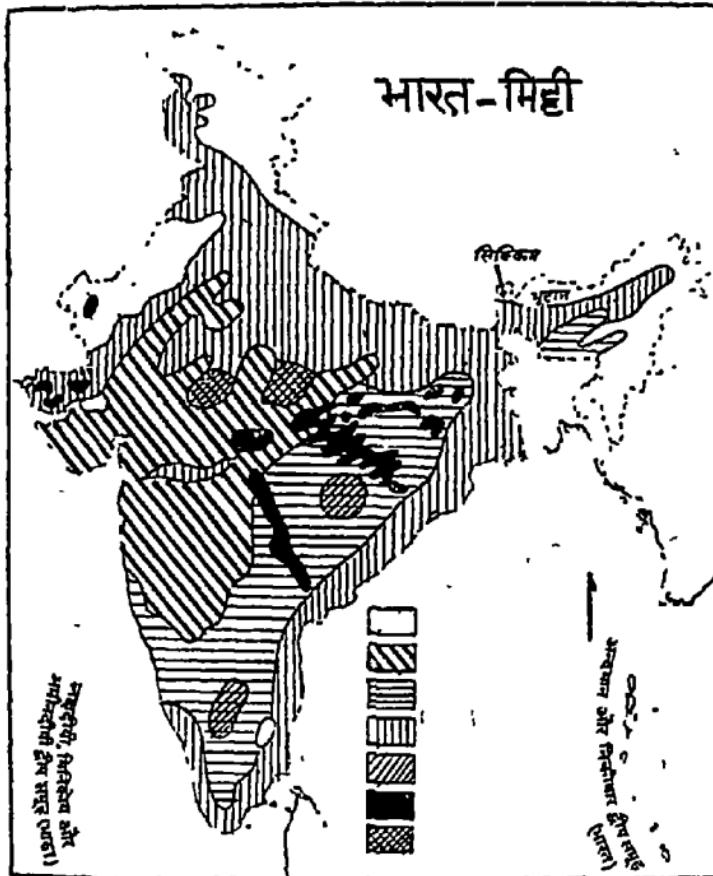
चित्र 13—भारत में पायी जाने वाली मिट्टियाँ

1. बलुई मिट्टी, 2. काली मिट्टी, 3. लाल मिट्टी,
4. उपजाऊ कछारी मिट्टी, 5. लैटेराइट, 6. गोंडवाना चट्टानें,
7. अन्य मिट्टियाँ।

लैटेराइट मिट्टी—बलुई मिट्टी के क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्व की ओर पतली पट्टी के रूप मे मिलते है पश्चिमी बंगाल से होकर असम तक फैले है।

रेगिस्तानी मिट्टी—इसमे रेतीली या उजाड मिट्टी की भी गणना की जाती है। रेगिस्तानी मिट्टी राजस्थान के थार प्रदेश मे, पजाब के दक्षिणी भाग में और राजस्थान के कुछ अन्य भागो मे मिलती है। अकेला थार मरुस्थल ही लगभग 1,03,600 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र मे फैला हुआ है।

इसके अतिरिक्त वनो की मिट्टी और अन्य प्रकार की मिटि्टयाँ भी मिलती हैं। कुछ मिट्टियो के नाम अलग-अलग स्थानो में अलग-अलग लिये जाते हैं।

मिट्टी का उपजाऊपन

उपज की दृष्टि से मिट्टी इतनी दृढ़ होनी चाहिए कि पौधो की जड़ो को पकड़ सके, इतनी मुलायम होनी चाहिए कि उससे पानी भली प्रकार सोखा जा सके, साथ ही उस मिट्टी मे सन्तुलित मात्रा में आवश्यक क्षार (Salts) भी होने चाहिए।

भारतवर्ष मे अधिक उपजाऊ मिट्टी के क्षेत्रो मे गंगा-जमुना का दोआब प्रदेश, पूर्वी तट और पश्चिमी तट के प्रदेश और लावा प्रदेश सम्मिलित हैं। वहुत कम उपजाऊ प्रदेश मे थार प्रदेश, गुजरात प्रदेश और पर्वतीय प्रदेश सम्मिलित हैं। शेष भाग साधारणत: उपजाऊ हैं।

मिट्टी की मुख्य समस्याएँ

उपज से सम्बन्ध रखने वाली मिट्टी की मुख्य समस्याएं निम्नलिखित है —

(1) भूमि अपक्षय (Soil exhaustion), (2) मिट्टी का कटाव (Soil erosion), (3), जल-लग्नता (Water logging), क्षारो का उठना, रेह इत्यादि, और (4) रेतीले टीलो का उपजाऊ मैदानो मे आकर भूमि को व्यर्थ बना देना।

भूमि अपक्षय (Soil Exhaustion)

भूमि की उर्वरता को बनाये रखने के लिए खादो का प्रयोग आवश्यक है। खादो के द्वारा जमीन को आवश्यक भोजन या पोषण मिलता है और आवश्यक तत्वो की कमी की पूर्ति होती है।

खादों का महत्व—

खादों का महत्व यह है कि किसी विशेष फसल के अतिरिक्त पोषण की आवश्यकता हो अथवा मिट्टी में जिन तत्वों की कमी हो, उन्हें खादों के द्वारा पूरा किया जा सके।

खादों के मुख्य प्रकार ये हैं—

(1) पशुओं के मल-मूत्र से मिलने वाला खाद—ये खाद बहुत उपयोगी होते हैं। भारतवर्ष में अधिकतर गांवों में गोबर के उपले या कंडे बनाकर जला दिये जाते हैं और पशुओं को खेतों में न बांधने के कारण मूत्र (Urine) व्यर्थ चला जाता है।

(2) कम्पोस्ट—व्यर्थ चली जाने वाली और सड़ जाने वाली चीजों, जैसे, साग-तरकारी, कूड़ा-करकट इत्यादि को डीकम्पोज करके अच्छा कम्पोस्ट खाद तैयार किया जा सकता है। सरकारों और नगरपालिकाओं की ओर से इस दिशा में प्रयत्न किये गये हैं।

(3) विष्ठा खाद (Night Soil Compost)—मनुष्यों के मल (पाखाने) से मिलने वाला खाद भी बहुत उपयोगी खाद माना जाता है। भारतवर्ष के ग्रामों में शौचालय (Latrines) न होने से मनुष्य खुले हुए खेतों में मल-त्याग करते हैं और यह खाद व्यर्थ चला जाता है। शहरों में इस प्रकार के खाद का भी उचित वितरण की व्यवस्था न होने से, प्राय पूर्ण उपयोग नहीं होने पाता। यदि गांवों में गर्त शौचालय (Pit latrines) बनाये जाएँ तो इस खाद का कुछ उपयोग हो सके।

(4) हरी खाद—कुछ फसलें जैसे सनई, चना इत्यादि को बोकर उगाकर जमीन में ही जोत दिया जाय तो आगे की फसल खूब उगती है। सरकारों ने बीज बांट कर इस प्रकार के खादों के उपयोग को प्रोत्साहन दिया है।

(5) खली का खाद—खली (Oil-cake) एक अच्छा खाद है। यूरोपीय देशों में इसका प्रयोग बहुत बढ़ा है। भारतवर्ष ने अब तिलहन के निर्यात को कम किया है; परन्तु सरकार का विचार है, जो ठीक भी है, कि खाद की अपेक्षा खली पशु के खाद्य के रूप में अधिक लाभदायक है।

(6) रासायनिक खाद—भारतवर्ष को लाखों रुपये के रासायनिक खाद आयात करने पड़ते हैं। इनमें नाइट्रेट और अमोनिया सल्फेट मुख्य हैं।

भारत की सरकार द्वारा विहार में धनबाद के निकट मिन्दरी में पहला प्रसिद्ध कारखाना खुला था परन्तु अब अनेको कारखाने खुल चुके हैं।

(7) अन्य खाद—मछली से, समुद्री घासो से, धान के पयाल से, हड्डियो से और कसाईघरो से खून का मिलने वाला खाद मूल्यवान खादो मे गिने जाते हैं।

भूमि अपक्षय को रोकने के लिए खादो के सिवाय दो अन्य मुख्य साधन (अ) फसलों को हेर-फेर कर बोना, और (आ) मिश्रित फसलें बोना है। मिश्रित फसलो (Mixed crops) के लगभग वही लाभ हैं जो फसलो को हेर-फेर कर बोने (Crop-rotation) के। सावधानी की बात यही है कि कौन-कौन सी फसलें मिलाकर बोई जायं अथवा किस फसल के साथ कौन-सी फसल बोई जायं।

मिट्टी का कटाव (Soil Erosion)

हवा या पानी की गति मे भूमि के ऊपर की सतह की उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो जाती है तो इस क्रिया को मिट्टी का कटाव कहते हैं। यह समस्या बहुत भयंकर है क्योंकि इसमे लाखो एकड भूमि खेती की दृष्टि से व्यर्थ हो जाती है।

मिट्टी के कटाव के मुख्य कारण ये हैं—(1) पेड काट लेने से या वनस्पति को नष्ट कर देने से जमीन पर हवा और पानी का आक्रमण अधिक तीव्र और शीघ्र होने लगता है। (2) पशुओं के चराने पर नियन्त्रण न होने से, विशेषकर बकरियो को हर कही चरने देने से वनस्पति शीघ्र नष्ट होती है और वही समस्या उपस्थित हो जाती है। (3) पहाडी ढालो पर खेती करने से भी मिट्टी का कटाव शीघ्र होता है, विशेषतः उस समय जब कि ढालो के पेड जला दिये जाते है, काट दिये जाते हैं, या अन्य किसी भाँति वनस्पति को नष्ट कर दिया जाता है। (4) कुछ जगली जातियाँ घूमते-फिरते कही रुक जाती हैं और वे तथा उनके पशु वहाँ की वनस्पति को नष्ट कर देते हैं। खाली भूमि की उपेक्षा के कारण प्रायः कटाव प्रारम्भ होने लगता है।

इन सभी कारणो मे मिट्टी के कटाव का मुख्य कारण वनस्पति का नष्ट होना ही है। वनस्पति की यह विशेषता है कि उसकी जड़ें मिट्टी को अपनी ओर आकर्षित करती हैं और बहने से या काटने से रोकती हैं। दूसरे,

वनस्पति हवा और पानी के वेग को भी रोकती है। इस प्रकार आँधी या बाढ़ो का वेग कम हो जाता है। वनस्पतियो की जड़े पानी को सोखकर पानी को नीचे एकत्रित करती है और तने हवा की तेजी को रोकते है। वनस्पति को नष्ट हो जाने पर हवा मिट्टी को शीघ्रता से काटती है और पानी ढालों और बहावो के स्थानो की मिट्टी को काट देता है। इस प्रकार उपजाऊ मिट्टी नष्ट होकर नदियो मे पहुँचती है, नदियाँ उथली हो जाती हैं और बाढे भी शीघ्र आने लगती हैं।

इसलिए मिट्टी के कटाव को रोकने के उपायो मे पहला और मुख्य उपाय (1) वृक्षारोपण या वन लगाना है। (2) पशुओं के चरने पर नियन्त्रण होना चाहिए अर्थात् ऐसा न हो कि पशु वनस्पतियों को समूल नष्ट कर दे। (3) गोलाई में अर्थात् कंटूर रेखाओ की तरह जुताई करने से भी हवा या पानी मिट्टी को सरलता से नही काट सकते, (4) बन्ध (Embankments) बनाने से भी मिट्टी का कटाव रुकता है। (5) मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए यह भी आवश्यक है कि भूमि वनस्पति-शून्य न छोडी जाय, जैसे यदि खेतो मे ठूँठ इत्यादि खडे है तो उखाडा न जाय, या खेत मे कोई वनस्पति न हो तो उसमे कुछ बो दिया जाय। उत्तर प्रदेश की सरकार मानसून के महीनो मे ऐसी फसले बुवाती है जो मिट्टी के कटाव को रोकने के साथ खेतो की उपज बढाने का भी काम करती है।

जल-लग्नता और क्षारो का उठना

यह भी गम्भीर समस्या है। इससे खेत नष्ट होते चले जा रहे है। यह सिंचाई के दुरुपयोग का दुष्परिणाम है। वर्ष के अधिकतर भाग मे भारत के गर्म और शुष्क जलवायु होने से अधिक सिंचाई के क्षेत्रो मे वाष्पीकरण के द्वारा भू-तल के नीचे के क्षार (नमक) ऊपर आ जाते हैं और मिट्टी को अनुपजाऊ बना देते हैं।

इसे रोकने के लिए तीन मुख्य उपाय हैं—(1) नालियो का ठीक प्रबन्ध हो, (2) नहर से होने वाली सिंचाई मे ठीक मात्रा से अधिक पानी के प्रयोग पर रोक लगाई जाय, और (3) ऐसे क्षेत्रो में कुओ या नल-कूपो (Tube wells) के द्वारा जमीन की सतह के पानी को निकालकर नदियों मे डाला जाय, जैसा कि पजाब के कुछ क्षेत्रो मे किया गया है।

रेतीले टीलो को बढ़ने से रोकने के लिए वन ही सर्वोत्तम साधन हैं। राजस्थान की सीमा पर पाँच मील चौड़ी वनस्पति की पट्टी बनाई गई है।

संक्षेप

मिट्टी का अध्ययन कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण है– (क) खेत कितना बड़ा हो, (ख) क्या फसल उगाई जाए, (ग) नमी की कितनी जरूरत है, (घ) खाद कैसा हो, उसमें क्या रासायनिक गुण हों, (ङ) कृषि किस ढग पर की जाय, और (च) सिचाई का महसूल और लगान कितना रखा जाए।

भारत में अनेक प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं जिनमें मुख्य ये हैं—(1) कछारी मिट्टी, (2) काली मिट्टी, (3) लाल मिट्टी, (4) बलुई लैटेराइट) मिट्टी, तथा (5) रेगिस्तानी मिट्टी। चिकनी, दोमट इत्यादि अन्य मिट्टियाँ भी है।

भारत मे मिट्टी की प्रमुख समस्याएँ चार हैं—(क) भूमि अपक्षय, (ख) मिट्टी का कटाव, (ग) जल लग्नता और क्षार का उठना, तथा (घ) रेगिस्तान का बढ़ना। इनमे पहली समस्या का हल खादों का उपयोग है. दूसरी और चौथी समस्याओं का मुख्य उपाय वृक्षारोपण या वन लगाना है। जल-लग्नता को रोकने से लिए सिंचाई के साधनों का उचित ढग से उपयोग होना आवश्यक है। भारत मे भूमि संरक्षण (Soil Conservation) के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किये जा रहे है।

प्रश्न

1. भारतवर्ष मे कौन-कौन सी मिट्टियाँ मुख्यतः पाई जाती हैं ? ये मिट्टियाँ कहाँ कहाँ पाई जाती हैं ? उनका महत्व भी बताइए।
2. भारतवर्ष की मिट्टी की मुख्य समस्याओ का उल्लेख कीजिए और खादों का महत्व बताइए।
3. सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
   (क) भूक्षरण (Soil erosion), (ख) जल-प्रसार, (ग) मिश्रित फसलें और फसलें हेर-फेर कर बोना।
4. भारत में कौन-कौन सी खादें उपलब्ध हैं ? क्या भारतीय किसान उनका समुचित उपयोग कर रहा है ?

अध्याय 5

सिंचाई

(Irrigation)

सिंचाई वह कृत्रिम साधन है जिसके द्वारा भूमि की नमी की कमी को पूरा करके उसको उपजाऊ बनाया जाता है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है कृषि के लिए जमीन को नमी पहुंचाना आवश्यक है।

सिंचाई की आवश्यकता

अतएव कह सकते हैं कि भारतवर्ष के लिए सिंचाई की नितान्त आवश्यकता है। सिंचाई की आवश्यकता के मुख्य कारण निम्नलिखित है -

(1) **वर्षा की कमी** - भारतवर्ष के कुछ प्रदेशों, जैसे, राजस्थान और पूर्वी पंजाब के कुछ भागों में वर्षा इतनी कम होती है कि सिंचाई के बिना कृषि होना सम्भव नहीं है।

(2) **रबी की फसलें उगाने के लिए** - भारतवर्ष में रबी की फसलें जिन्हें जाड़े की फसलें भी कहते हैं, महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। परन्तु जाड़े का मौसम प्राय शुष्क रहता है (मानसूनी जलवायु का यह लक्षण है कि एक मौसम में वर्षा होती है और दूसरा मौसम शुष्क होता है)। इसलिए जाड़े की फसलें उगाने के लिए भी सिंचाई की परम आवश्यकता होती है।

(3) **वर्षा की अनिश्चितता**—वर्षा की अनिश्चितता से जो हानियाँ होती है, उनसे बचने के लिए सिंचाई के साधनों का प्रयोग करना पड़ता है।

(4) **कुछ फसलों के लिए** अधिक नमी की आवश्यकता होती है, जैसे धान और गन्ना की फसलें। देश के कुछ भागों को छोड़कर साधारणतः धान और गन्ना इत्यादि की फसले उगाने के लिये वर्षा का भरोसा नहीं किया जा सकता।

(5) **जनसंख्या में वृद्धि**—भारतवर्ष की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन देने के लिए देश की

भूमि मे अधिक से अधिक फसले उगाने के लिए तथा अधिक से अधिक भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए सिंचाई का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है ।

6) कुछ किस्मो की मिट्टियो मे जैसे, रेतीली और बलु' मिट्टी मे अन्य किस्मो की मिट्टियो की अपेक्षा अधिक नमी की आवश्यकता होती है और यह सिंचाई के द्वारा पूरी की जा सकती है ।

(7) उत्तरी अक्षाशो मे स्थित ठण्डे देशो की अपेक्षा भारत मे गर्मी अधिक पड़ने से पौधो को नमी अधिक चाहिए ।

(8) पशु-पालन के धन्धे को प्रोत्साहन देने के लिए प्राकृतिक चरागाहों की रक्षा और कृत्रिम चरागाह बनाने की आवश्यकता है । इसके लिए भी सिंचाई की परम आवश्यकता है ।

बगाल और असम इत्यादि देश के कुछ ही भाग ऐसे है जहाँ सिंचाई की आवश्यकता नही होती क्योकि वहाँ पर्याप्त वर्षा हो जाती है ।

सिंचाई के साधन

भारतवर्ष मे प्राचीन काल से ही सिंचाई के साधन काम मे लाये जाते थे । उन दिनो सिंचाई के लिए कई प्रकार के ढङ्गो का प्रचलन था जो थोड़े बहुत आजकल भी देखने को मिलते हैं । उन साधनो के द्वारा थोड़ी भूमि के सीचने मे भी अधिक श्रम लगता था, इसीलिए सिंचाई के अभाव मे प्रायः अकाल पडा करते थे । अब सिंचाई के साधनो मे काफी विकास हो गया है । यह विकास पिछली शताब्दी मे ही आरम्भ हुआ था जबकि विदेशी सरकार ने इस ओर ध्यान दिया । अब तक बहुत-सी योजनाएँ काम मे आ चुकी हैं और कई योजनाएँ चालू हैं ।

सिचाई के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं—

(1) नहरें, (2) कुएँ, (3) तालाब, (4) ट्यूब वेल (नलकूप)

सिंचाई के साधनों के वितरण पर प्रभाव डालने वाली दशाएँ

किसी क्षेत्र मे सिंचाई के किसी साधन विशेष का उपयोग क्यों हुआ है अथवा किन साधनो का उपयोग किया जा सकता है, यह जानना आवश्यक है । पंजाब और उत्तर प्रदेश में नहरें और दक्षिणी भारत में तालाबो द्वारा सिंचाई की गई है, यह वहाँ की विशेष दशाओं पर निर्भर है ।

यह ध्यान रहे कि सिंचाई का कोई साधन क्यों न हो उसके विकास के लिए तीन बाते तो हर दशा में आवश्यक होती हैं:—(1) उपजाऊ कृषि-

योग्य भूमि, (2) सस्ता श्रम. और (3) पूँजी साधन। यदि कृषि योग्य भूमि नही होगी तो सिंचाई के साधनो का विकास निरर्थक होगा और यदि आवश्यक मात्रा मे पूँजी और सस्ते मजदूर प्राप्त नही है तो भी सिंचाई के साधनो का विकास नही हो सकता।

नहरो के लिए मुख्यत. निम्नलिखित दशाएं आवश्यक है—

(1) साल भर बहने वाली नदियाँ हो ताकि पूरे वर्ष सिंचाई होती रहे। यदि नदियाँ बरसाती है तो शुष्क मौसम मे सूख जाने पर उनसे सिंचाई न हो सकेगी। वास्तव मे शुष्क मौसम मे ही सिंचाई की अधिक आवश्यकता हो सकती है। परन्तु बरसाती नदियो का उपयोग भी सिंचाई के लिए किया जा सकता है। भारत मे नई बांध योजनाओ मे अनेक बरसाती नदियो के पानी को बांध बनाकर जलाशयो मे एकत्रित किया है और उनसे नहरे निकाली गई है।

(2) कड़ी चट्टानो से रहित समतल धरातल होना चाहिए ताकि नहरे खोदने मे अधिक श्रम न करना पड़े। मरुस्थलीय क्षेत्र मे खुली नहरें बनाना सरल नही है जहां रेतीले टीले किसी भी क्षण नहर को बन्द कर सकते है। ककरीट की नहरे बनाकर इस कठिनाई पर विजय पाने का प्रयत्न किया गया है।

(3) नहरो के लिए समय. इस प्रकार का ढाल होना अनुकूल होता है कि नहरें शुष्क क्षेत्रो की ओर ले जाई जा सके।

ये तीनो अनुकूल दशाएँ प्राप्त होने के कारण सबसे अधिक नहरें उत्तर प्रदेश और पजाब मे पाई जाती है। दक्षिणी प्रायद्वीप के डेल्टो मे और नदियो की घाटियो मे नहरे निकाली गई है।

कुओ के लिए मुख्यत. निम्नलिखित दशाएँ आवश्यक होती है—

(1) छिद्रमय मिट्टी—कुएँ वही हो सकते है जहाँ भूमि की सतह के नीचे पानी हो और यह तभी सम्भव है जब ऊपर से पानी जाय। ऊपर का पानी नीचे जाने के लिए मिट्टी छिद्रमय होनी चाहिए। वृक्ष अपनी जडो द्वारा भूमि की सतह के नीचे पानी पहुचाने मे सहायता करते हैं। कछारी और

दोमट तथा रेतीली मिट्टियाँ छिद्रमय होती हैं। चिकनी मिट्टी और पक्की चट्टानो मे होकर पानी नीचे नही जा सकता।

(2) **कम गहराई पर पानी**—सिचाई की लागत कम रहे इसके लिए यह भी आवश्यक है कि कुओ मे पानी अधिक गहराई पर न हो क्योकि ऐसा होने से कुएँ खोदने मे अधिक लागत लगेगी ही, उनसे सिचाई करने मे श्रम इत्यादि की लागत अधिक पडेगी। भूमि की सतह के नीचे पानी कम गहराई पर मिलना निम्नलिखित दशाओ मे सम्भव है—

(क) नीचे कड़ी चट्टानें अथवा परत हों जो अधिक गहराई पर न हों,

(ख) उस क्षेत्र अथवा समीपवर्ती क्षेत्र मे वर्षा पर्याप्त मात्रा मे होती हो।

(3) जमीन मुलायम होनी चाहिए ताकि कुएँ बनाने मे अधिक कठिनाई न हो। यह आवश्यक नही कि जमीन समतल हो परन्तु यदि जमीन पथरीली है अथवा बहुत कडी है तो वहाँ कुएँ नही खोदे जा सकते।

तालाबों के लिए निम्नलिखित दशाएँ होनी आवश्यक हैं—

(1) **पथरीली भूमि**—जहाँ पानी इकट्ठा किया जा सके और जमीन पानी न सोखे।

(2) **ऊँची-नीची भूमि**—ऊँची जगहो पर तालाब हो ताकि नालियो से खेतो मे पानी पहुँच सके।

(3) वर्षा अनिश्चित हो परन्तु वर्षा की मात्रा इतनी हो कि पानी तालावो मे इकट्ठा किया जा सके।

नलकूपों (ट्यूब वैल) के लिए निम्नलिखित अनुकूल दशाएँ चाहिए—

(1) पानी की काफी माँग हो।

(2) पानी कम गहराई पर हो तथा कुओ के अनुकूल अन्य बातें हो।

(3) सस्ती बिजली प्राप्त हो।

भारत मे सिचाई के साधनों का वितरण निम्न प्रकार पाया जाता है—

नहरें—नहरें सिचाई का महत्वपूर्ण साधन हैं। देश के कुछ सींचे जाने वाले भाग 41 प्रतिशत के लगभग भाग नहरों से सींचा जाता है।

स्थायी नहरें (Perennial Canals)—मुख्यतया पजाब और उत्तर प्रदेश मे पाई जाती हैं।

बाँध की नहरें (Storage Canals)—दक्षिण मे मध्य प्रदेश और

बुन्देलखण्ड इत्यादि अनेक क्षेत्रों में विकसित की गई हैं। इन क्षेत्रों में बरसात का पानी बाँध बनाकर इकट्ठा कर लिया जाता है।

कुएँ—बहुत सी जमीन ऊपर से शुष्क प्रतीत होती है और नमी के अभाव में वहाँ कृषि नहीं हो सकती। परन्तु यदि उस जमीन को गहरा खोदा जाय
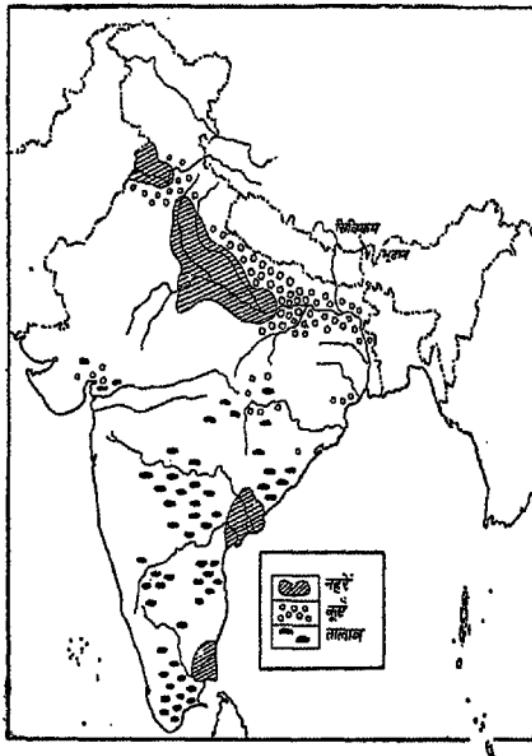
चित्र 14 – भारत में सिंचाई के मुख्य साधन

तो किसी चट्टान या कड़े परत तक पहुंचने पर पानी मिल जाता है। यह पानी पीने और सिंचाई के काम में आता है। कुएँ से सिंचाई करने के विविध ढङ्ग हैं। कहीं-कहीं पर बैलों की सहायता से पुर-वर्त्त द्वारा (चिरस-लाव द्वारा) पानी खींचकर सिंचाई की जाती है। कहीं पर रहँट (Persian wheel)

द्वारा और वही ढेकली का प्रयोग किया जाता है। देश भर मे कुओ की सख्या लगभग 30 लाख है। उत्तर-प्रदेश के उत्तर-पूर्वी भाग मे, जहाँ नहरो से आवश्यकता पूरी नही होती, कुएँ सिंचाई के महत्वपूर्ण साधन हैं। देश के सीचे जाने वाले कुल भाग का लगभग 30% भाग कुओ से सीचा जाता है। उत्तर प्रदेश के अधिकतर पूर्वी पजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र, बिहार और मद्रास मे कुओ से सिंचाई की जाती है। कुएँ दो प्रकार के होते हैं—(अ कच्चे कुएँ, (आ) पक्के कुएँ। कच्चे कुएँ एक प्रकार से अस्थायी होते है क्योंकि बरसात इत्यादि मे वे खराब हो जाते हैं। परन्तु कच्चे कुओ के बनवाने मे बहुत कम लागत लगती है। पक्के कुओ के बनवाने मे लागत अवश्य अधिक लगती है, परन्तु वे स्थायी रूप से उपयोगी सिद्ध होते है।

तालाब—दक्षिणी प्रायद्वीपीय भाग मे तालाब अधिकता से पाए जाते हैं। तालाबो के द्वारा आन्ध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश, द० पू० राजस्थान, मद्रास और मैसूर मे सिंचाई की जाती है। छोटी-छोटी बहती हुई नदियो अथवा बहते हुए बरसाती पानी को दीवारे बनाकर रोक लिया जाता है और शुष्क मौसम मे इस पानी को सिंचाई के काम मे लाया जाता है। मध्य प्रदेश और उडीसा मे तथा बिहार के उत्तरी भाग मे भी तालाब पाये जाते हैं। तालाबो की मुख्य कमी यह है कि कभी-कभी जहाँ वर्षा ऋतु मे वर्षा नही होती, तालाब भी सूखे रहते हैं और उन क्षेत्रों मे सिंचाई के अभाव मे अकाल पड़ जाता है। कच्चे तालाबो मे गर्मी के दिनो मे पानी सूख जाता है जबकि उसी समय सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसी कमी को कुछ अशो तक पूरा करने के लिए मैसूर और आन्ध्र प्रदेश मे पक्के तालाब बनवाये जा रहे हैं।

ट्यूब वैल तथा अन्य—उत्तर प्रदेश मे मेरठ, बिजनौर, मुरादाबाद, बदायूँ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ, इटावा और गोरखपुर इत्यादि जिलो मे नल कूप के द्वारा सिंचाई होती है। दक्षिण मे भी ट्यूब वैलो का कुछ प्रयोग हुआ है। नलकूप के द्वारा थोड़े समय मे बहुत अधिक पानी प्राप्त होता है। नलकूप बिजली के द्वारा चलते हैं। प्रति वर्ष इनकी सख्या बढती जा रही है। इनका प्रयोग केवल उपयुक्त जमीन मे ही किया जा सकता है। इसलिए प्राय: इनका प्रयोग वही हुआ है जहाँ कुओ के द्वारा सिंचाई की जाती थी। अमेरिकन विशेषज्ञो के अनुसार पूर्वी पजाब और उत्तर प्रदेश मे नलकूप बनाने के बहुत अच्छे साधन हैं। पजाब मे नलकूप

की योजना है जो दुनिया की सबसे बड़ी योजना कही जाती है। उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब मे नलकूप द्वारा जल-प्रसार को दूर कर जमुना नहर मे पानी बढ़ाया जायेगा जिससे, रोहतक और हिसार जिलो की भूमि की सिंचाई की जायगी।

भारतवर्ष मे नलकूपों (Tube Wells) से सिंचाई

भारतवर्ष मे नलकूपो में सिंचाई का कार्यक्रम 1930 मे सर्व प्रथम उत्तर प्रदेश मे आरम्भ हुआ। सन् 1950 तक उत्तर प्रदेश मे लगभग 2,000 नलकूप बन चुके थे जिनसे लगभग 4 लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई होने लगी थी।

परिणामो से उत्साहित होकर सन् 1950 मे "अधिक अन्न उपजाओ" कार्यक्रम के अन्तर्गत 996 नलकूप बनाने का निश्चय किया गया। तत्पश्चात् सयुक्त राज्य अमेरिका की सहायता से दो अन्य बड़े कार्यक्रमो के अन्तर्गत भी नलकूपो का निर्माण कार्य आरम्भ किया गया और लगभग सभी राज्यों में नलकूपो द्वारा सिंचाई का विकास हुआ है।

द्वितीय योजना काल मे वस्तुत: सभी राज्यो मे उपयुक्त स्थानो पर नलकूपो से सिंचाई कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। द्वितीय योजना के अन्त के पूर्व ही 5,464 नलकूप बन चुके थे जिनकी लागत 37 करोड रुपये के लगभग थी और जिससे लगभग 3 लाख हैक्टर भूमि सींची जा सकती थी। तीसरी योजना की अवधि में 300 नलकूप और बन जाने की आशा है।[1]

सिंचाई का विकास

सिंचाई के पुराने ढगो मे विकास हमारे यहाँ उन्नीसवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ है। पहले-पहल यमुना की दो नहरों और कावेरी डेल्टा की ओर ध्यान दिया गया जिससे सिंचाई की सुविधाएँ अधिक क्षेत्र को उपलब्ध होने लगी। सफलता मिलने पर नहरो से सिंचाई की अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की गईं। इस समय हमारे देश मे कुछ भागों मे नहरो का जाल-सा फैला हुआ है। आगे भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रो की मुख्य-मुख्य नहरे दी गई हैं।

पंजाब की नहरे

पंजाब मे नहरो के लिए उपयुक्त दशाये प्राप्त हैं। इसलिए यहाँ पर

1. The Times of India Year Book, 1963-64.

भारतवर्ष की सबसे अच्छी नहरें पाई जाती हैं। पंजाब शुष्क प्रदेश है और केवल नहरों के आधार पर ही यहाँ कृषि होती है। सच तो यह है कि नहरों ने यहाँ की अर्द्ध-मरुभूमि को लहलहाते हुए मैदानों मे बदल दिया है।

पूर्वी पंजाब की मुख्य नहरें निम्नलिखित हैं—

(1) पश्चिमी यमुना नहर—यह नहर यमुना नदी से उस स्थान पर निकाली गई है जहाँ नदी पर्वतों से नीचे मैदान में उतरती है। इस नहर से रोहतक और हिसार तथा पटियाला के जिलो मे सिंचाई की जाती है और लगभग 400 हजार हैक्टर भूमि की सिंचाई होती है।

(2) सरहिन्द नहर—यह नहर सतलज नदी से रूपड (Rupar) स्थान पर निकाली गई है। इस नहर से पूर्वी मैदान की सिंचाई होती है अर्थात लुधियाना, फीरोजपुर, हिसार और नाभा जिलो मे सिंचाई की जाती है। यह नहर बहुत पुरानी है।

(3) ऊपरी बारी दोआब नहर—यह नहर पाकिस्तान मे भी जाती है। यह नहर पर्वतों से नीचे उतरने के स्थान पर माधोपुर के पास रावी नदी से निकाली गई है। अमृतसर और गुरदासपुर जिलो मे इससे सिंचाई की जाती है।

उत्तर प्रदेश की नहरें

भारत के सब राज्यो मे कृषि क्षेत्रफल का सबसे अधिक प्रतिशत भाग उत्तर प्रदेश मे सीचा जाता है। गंगा-यमुना का दोआब नहरों से सीचा जाता है और वहाँ की लगभग 50% फसलें नहरों द्वारा उगाई जाती हैं। यहाँ की सब नहरें स्थायी हैं। यहाँ पाँच नहरें मुख्य हैं :

(1) पूर्वी यमुना नहर जो यमुना नदी से फैजाबाद के पास निकाली गयी है। यह नहर उत्तर प्रदेश के उत्तरी-पश्चिमी भाग की सिंचाई करती है।

(2) आगरा नहर—यह नहर यमुना नदी से देहली से कुछ दूर पर निकलती है। यह नहर सन् 1875 ई० मे बनी थी। लगभग 1,81,000 हैक्टर भूमि की सिंचाई करती है।

(3) ऊपरी गंगा की नहर—यह गंगा नदी से हरद्वार के पास निकाली गई है और भूमि लगभग 7 लाख हैक्टर की सिंचाई करती है। यह नहर बहुत पुरानी है (सन् 1856 में बनी थी) और अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(4) निचली गंगा नहर—यह नहर गंगा नदी से बुलन्दशहर जिले मे

नकौरा के पास निकाली गई है। इस नहर की वहुत-सी शाखाएँ फैली हुई हैं जो 466 हजार हैक्टर भूमि की सिंचाई करती हैं।
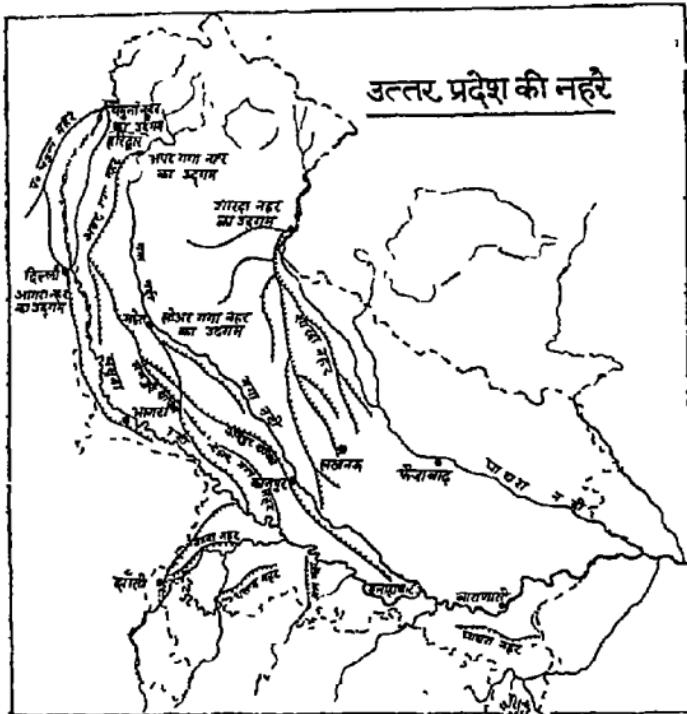
चित्र 15—उत्तर-प्रदेश की नहरें

(5) शारदा नहर—यह नहर सन् 1930 ई० मे वनकर तैयार हुई थी। यह नहर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अवध के अधिकतर जिलो मे सिंचाई का आरम्भ इसी नहर से हुआ है। इससे रुहेलखण्ड मे भी सिंचाई होती है। यह नहर शारदा नदी से वन वाँसा स्थान पर निकाली गई। यह नहर लखनऊ तक जाती है और गगा-घाघरा दोआव की सिंचाई करती है। लगभग 7·5 लाख हैक्टर भूमि सीची जाती है।

इनके अतिरिक्त केन, वेतवा इत्यादि नदियो से भी नहरें निकली गई है और अनेक नवीन परियोजनाएँ हैं।

मद्रास की नहरें

यद्यपि दक्षिण मे कम नहरें पाई जाती हैं परन्तु मद्रास-राज्य मे कुछ पुरानी

नहरें हैं जो यहाँ की 40 प्रतिशत बोई हुई भूमि की सिंचाई करती है। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों से नहरें निकाली गई हैं। यहाँ की नहरें अधिकतर बाँध की नहरें (Storage Canals) हैं। पेरियार योजना यहाँ की महत्वपूर्ण योजना है। इस योजना के अन्तर्गत पेरियार नदी का पानी सुरंग द्वारा पश्चिमी घाट के पश्चिमी भाग से पूर्वी भाग में लाया जाता है। इस योजना से लगभग 61,000 हैक्टर भूमि की सिंचाई मदुरा के निकवर्तीय क्षेत्र में की जाती है। मेट्टूर बाँध योजना भी इस राज्य की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष की महत्वपूर्ण योजना है। यह योजना सन् 1934 ई० मे पूरी हुई थी जिससे कावेरी डेल्टा की सिंचाई होती है।

मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा अन्य राज्यों के प्रमुख सिंचाई कार्यों का उल्लेख इस अध्याय में आगे किया गया है।

सिंचाई की योजना के लिए नदी-घाटी परियोजनाओं का अगला अध्याय भी देखिए।

पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई में प्रगति

प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व सिंचाई के सर्व साधनों द्वारा सींचा जाने वाला क्षेत्र 280 लाख हैक्टर था जिसमे से 89 लाख हैक्टर की सिंचाई बड़ी और मध्यम योजनाओं से की जाती थी। अनुमान है की पाँचवी योजना के अन्त तक **बड़ी-बड़ी और मध्यम सिंचाई योजनाओं से** (1975-76 तक) 344 लाख हैक्टर भूमि सींची जाने लगेगी।[1]

प्रथम और द्वितीय योजनाओं की अवधि मे सिंचाई मे प्रगति और तीसरी योजना के लक्ष्य इस प्रकार हैं—

---

[1] Third Five Year Plan, p 381 (*gross area*) *Gross irrigated* area represents the total of cropped areas irrigated in a year, i.e., net irrigated area added to the area under subsequent crops irrigated during the years.

सिंचित क्षेत्रफल

	सिंचित क्षेत्रफल(Net area)[1] (लाख हैक्टरो मे)			
	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66(लक्ष्य)
1. बडी और मध्यम सिंचाई योजनाओ से	89	101	125	172
2. छोटी सिंचाई योजनाओ से	119	127	158	192
कुल	208	228	283	364

सिंचाई की योजनाये प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत आरम्भ हुई थी उनसे 1955-56 मे 1,255 हजार हैक्टर (Gross area)—(1,174 हजार हैक्टर Net area) और 1960-61 मे अनुमानत: 40 लाख हैक्टर (Gross area—36 लाख हैक्टर Net area) क्षेत्रफल की सिंचाई की वृद्धि हुई। तीसरी योजना मे सिंचित क्षेत्रफल (Gross area) मे 5,180 हजार हैक्टर वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

सिंचाई से लाभ और हानियाँ

सिंचाई से लाभ—सिंचाई की आवश्यकताओ का उल्लेख करते हुए इस अध्याय के आरम्भ मे सिंचाई का महत्व बताया जा चुका है। सिंचाई से होने वाले लाभो पर संक्षेप मे नीचे प्रकाश डाला गया है—(1) मानसून के असफल होने और वर्षा की अनिश्चितता से अब बहुत कुछ छुटकारा मिल गया है। (2) सिंचाई के साधनो से शुष्क मरुभूमि और बीहड जमीन को लहलहाते खेतो मे बदल दिया गया है। उदाहरण के लिए, नहरें निकलने के पहले पंजाब की भूमि व्यर्थ पडी हुई थी। नहरे बनने के बाद वह भूमि गेहूँ, उगाने के लिए सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुई है। (3) सिंचाई की सुविधाओ के कारण रबी और खरीफ की दो फसलें वर्ष मे उगाना तो संभव हो ही गया, दो से अधिक फसलें भी उगाई जाने लगी है। (4) सिंचाई के द्वारा देश के विभिन्न

[1] Net irrigated area is the area irrigated in a year which receives irrigation for more than one crop, once only.

भागो मे उत्पादन में वृद्धि हुई है। साथ ही कृत्रिम चरागाह और घास उगाना सम्भव हो गया है जिससे पशु-पालन मे प्रोत्साहन मिला है। अधिक नमी चाहने वाली फसलो, जैसे धान और गन्ना की खेती, मे वृद्धि हुई है और कृषि व्यवसाय अब लाभदायक सिद्ध होने लगा है। (5) अप्रत्यक्ष रूप से सिचाई से परिवहन के साधनो की और व्यापार की उन्नति भी हुई है क्योंकि सिचाई से उपज की वृद्धि हुई और उसका विभिन्न क्षेत्रो मे भेजा जाना प्रारम्भ हो गया। (6) सिंचाई के साधनो से आबादी का वितरण उचित हो गया है क्योंकि अब शुष्क क्षेत्रो मे भी, जहां पहले आबादी कम थी, उद्योग और व्यापार की उन्नति होने के कारण आबादी बढ़ी है। (7) सिंचाई के द्वारा सरकार की आय मे भी वृद्धि हुई है। सरकार की आय मे वृद्धि होने का प्रत्यक्ष कारण यही है कि सरकार आबपाशी (Irrigation charge) वसूल करती है परन्तु साथ ही सिंचाई के आरम्भ होने से जमीन का मूल्य बढ़ जाने से सरकार को काफी लाभ हुआ है। सिंचाई से जनता की समृद्धि मे वृद्धि होने के कारण सरकार को मिलने वाले अन्य प्रकार के करो मे भी वृद्धि हुई है।

सिंचाई से हानियाँ तथा समस्याएँ—सिंचाई के साधनो से कुछ हानियाँ भी बताई जाती है परन्तु उनको दूर करना अधिक कठिन नही है - (1) नहरो के द्वारा जल लग्नता (Water logging) हो जाने से बड़ी हानियाँ होती है। नहरी क्षेत्रो मे जमीन के नीचे पानी की सतह ऊपर उठ आती है जिससे कृषि के लिए जमीन खराब हो जाती है। खेतो मे रेह (Salt) या खार उठने लगता है जिससे उस जमीन मे कुछ पैदा नही होता। पंजाब मे बहुत-सी जमीन इसी प्रकार बेकार हो गई है। (2) पानी के प्रसार द्वारा आसपास की आबादी मे मलेरिया इत्यादि रोग भी फैलते हुए देखे गये हैं जिनसे लोगो के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। (3) नहरो के लिए सिंचाई विभाग के अधिकारियो के आश्रित होना पड़ता है। कभी-कभी नहरो मे पानी न आने से ओसराबन्दी (Distribution of canal water) बुरे ढंग से कई लोगो को हानि होती है। इसके अतिरिक्त नहरें फूट जाने से समीपवर्ती ग्रामवासियो और फसलो को बहुत हानि होती है।

उपर्युक्त दोषो के रहने पर भी इसमें सन्देह नही कि नहरें कृषि की उन्नति के लिए परम आवश्यक हैं। सिंचाई की हानियो को बहुत कुछ रोका

या कम किया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि सिंचाई की ओर उचित ध्यान दिया जाये और जो योजनाएँ चल रही है उनको सफलतापूर्वक पूर्ण किया जा सके तो हमे खाद्यान्नो के लिए विदेशो का मुँह नही ताकना पड़ेगा।

सिंचाई की नवीन परियोजनाएँ

भारतवर्ष मे जल-शक्ति की कमी नही है। अनुमान है कि भारतवर्ष की नदियो और जमीन के अन्दर पाये जाने वाले पानी का अल्प भाग ही उपयोग किया जाता है और शेष समुद्र मे चला जाता है अथवा बाढ इत्यादि के द्वारा बडी-बडी आपत्तियां लाता है। पानी का उपयोग करने का बहुत क्षेत्र है।

बडी (Majar) और छोटी (Minor) सिंचाई योजनाओ के तुलनात्मक गुण और दोष

छोटी सिंचाई योजनाओ मे कुओं, छोटे-छोटे तालाबो इत्यादि का निर्माण सम्मिलित है। छोटी सिंचाई योजनाओ के मुख्य लाभ ये हैं—

(क) प्रारम्भ में थोड़ी सी पूँजी लगानी पड़ती है।

(ख) छोटी योजनाओ को शीघ्र क्रियान्वित किया जा सकता है और उससे शीघ्र लाभ उठाया जाने लगता है।

(ग) छोटी योजनाओं मे विशेष प्रकार की सहायता विदेशी कर्मचारी और यन्त्रो की आवश्यकता नहीं होती।

(घ) छोटी योजनाओ को क्रियान्वित करने के लिए स्थानीय साधनो का सरलता से सदुपयोग किया जा सकता है।

परन्तु छोटी योजनाओ के निम्नलिखित दोष भी हैं—

(1) उनको चालू रखने की ऊंची लागत।

(2) बडी योजनाओ की अपेक्षा छोटी योजनाओ का लाभ बहुत थोड़े दिनो तक मिलता है।

(3) छोटी योजनाएँ बहुत सीमित सुरक्षा (Protection) प्रदान करती है।

बड़ी योजनाओं के लाभ निम्नलिखित है—

(क) सामान्यत ये बहु-उद्देशीय हैं। सिंचाई के सिवाय इनमे जल-

विद्युत शक्ति, बाढ-नियन्त्रण और नौका-नयन इत्यादि के लाभ भी होते हैं ।

(ख) ये नदियो के व्यर्थ जाने वाले पानी का उपयोग करती हैं । वास्तव मे व्यर्थ जाने वाले पानी के उपयोग का इनके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही है ।

(ग) वर्षा के अभाव के क्षेत्रों मे और सूखा के दिनो मे ये अधिक सुरक्षा प्रदान करती है । बडी योजनाओ का लाभ अधिक क्षेत्रों को होता है ।

(घ) इनको चालू रखने का व्यय अगली पीढी को भी बहुत दिनो तक मिलने वाले लाभ की दृष्टि से बहुत कम होता है ।

बडी योजनाओ के मुख्य दोष ये है कि इनके लिए आरम्भ मे बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है और प्राय विदेशी सहायता लेनी पडती है । इसके अतिरिक्त बडी योजनाओ को क्रियान्वित करने मे समय बहुत लगता है । तथा कुछ लोगो को घर-बार और जमीनें छोडकर अन्यत्र बसना पडता है ।

पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश की मुख्य नहरो के नाम इस अध्याय मे पहले दिए जा चुके है । कुछ अधिक महत्वपूर्ण बहु-उद्देश्यीय नदी-घाटी परियोजनाओ का वर्णन अगले अध्याय मे दिया गया है ।

पूर्वी पंजाब मे सिंचाई योजनाओ मे गुडगाँव नहर, भाकरा-नंगल की नहरे इत्यादि भी महत्वपूर्ण हैं ।

उत्तर प्रदेश मे पूर्व-वर्णित नहरो के अतिरिक्त बेतवा नहर, केन, रामगंगा और घाघरा नहरे, शारदा नहरें, माताटीला और रिहाड नहरें महत्वपूर्ण हैं । इनके अतिरिक्त ललितपुर बाँध, गढवाल जिले के नायर बाँध और रामगगा बाँध, बनारस जिले मे अहरौरा और चन्द्र प्रभा बाँध इत्यादि सिंचाई की मुख्य योजनाएं हैं । बानगगा नहर भी महत्वपूर्ण है ।

बिहार मे सोन नहरें, त्रिवेनी नहर, कमला नहर, मयूराक्षी (बाएँ तट की नहर) दामोदर घाटी तथा कोसी योजनाएँ महत्वपूर्ण है ।

मध्य प्रदेश मे तन्दूला तथा महानदी नहरें, और चम्बल, चन्द्रकेशर, कसापारी, तावा तथा बारना सिंचाई योजनाएँ मुख्य है ।

राजस्थान की सिंचाई योजनाओ मे जवाई, पार्वती, भेजा, भाकरा नहरें, चम्बल, राजस्थान नहर तथा बनारस योजना इत्यादि महत्वपूर्ण है ।

बहु-उद्देश्यीय नदी-घाटी परियोजनाओ का वर्णन अगले अध्याय मे दिया गया है।

सिंचाई की समस्याओ के हल के उपाय

सिंचाई के भावी विकास मे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सिंचाई की बड़ी-बड़ी योजनाओ मे ही नही, भावी उन्नति के लिए निम्न दिशाओ मे प्रगति होनी चाहिए—

(1) जमीन की सतह के नीचे के पानी का सदुपयोग अधिक से अधिक किया जाय अर्थात् कुओ और नलकूपो इत्यादि का भी विकास किया जाय।

(2) नहरो के पानी के उपयोग मे मितव्ययता होनी चाहिए क्योंकि अधिक पानी देने से पानी ही व्यर्थ नही जाता बल्कि भूमि और फसलो को भी भारी हानि पहुँचती है।

(3) सामान्य किसान को सिचाई की सुविधाएँ पहुँचाने के लिए यह भी आवश्यक है कि सिचाई महसूल (Irrigation charges) की दर उचित रखी जाय और साथ ही प्रत्येक किसान को समय पर पानी मिल सके। ठीक समय पर पानी न मिलने से फसलो को बहुत हानि पहुचती है।

(4) सिचाई इजीनियरिग मे भी विकास होने की आवश्यकता है।

(5) नालियो की उचित व्यवस्था हो। यथासम्भव प्राकृतिक बहाव मे सुधार किया जाय।

सक्षेप

सिंचाई भूमि की नमी की कमी को पूरा करने का कृत्रिम साधन है। वर्षा की कमी और अनिश्चितता के कारण, रबी की फसलें तथा अधिक नमी चाहने वाली फसलें उगाने के लिए और बढ़ती हुई जनसख्या के लिए अन्न उत्पादन बढाने के लिए सिचाई की आवश्यकता स्पष्ट है और इसीलिए सिंचाई का महत्व समझा जाता है। सिचाई के मुख्य साधन नहरें, कुएँ, तालाब और नल-कूप हैं। कुल सिंचाई की 41 प्रतिशत नहरो द्वारा लगभग 30 प्रतिशत कुओ और नल-कूपो के द्वारा तथा शेष अन्य साधनों से सींचा जाता है। पजाब और उत्तर प्रदेश मे नहरे, उत्तर प्रदेश, पजाब,

राजस्थान, बम्बई और मद्रास में कुएँ तथा दक्षिणी भारत में तालाब अधिक महत्वपूर्ण हैं।

सिंचाई के द्वारा देश की काफी अधिक उन्नति हुई है। देश की आर्थिक उन्नति की योजनाओं में सिंचाई को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसके लिए बहुत-सी योजनाएँ चल रही हैं। बहु-उद्देशीय योजनाओं का काफी विकास होने की आशा है।

प्रश्न

1. सिंचाई के विभिन्न साधनों का विवेचन कीजिए। उन क्षेत्रों का, जहाँ ये साधन प्रयोग में लाए जाते हैं, निर्देशन कीजिए।
2. पंजाब में नहरों का विकास संसार में सर्वोत्कृष्ट हुआ बताया जाता है। क्यों? पंजाब की नहरों का वर्णन कीजिए और उनके आर्थिक लाभ बताइये।
3. भारतवर्ष में सिंचाई के विकास के कारणों को विस्तारपूर्वक समझाइये। राजस्थान में सिंचाई की सुविधाओं के विकास के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

अध्याय 6
बहु-उद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाएँ
(Multi-purpose River-valley Projects)

भारतवर्ष की नदियाँ समस्त देश मे इस प्रकार फैली हुई हैं कि यदि उनकी शक्ति का पूर्ण सदुपयोग किया जाय तो समस्त देश का पर्याप्त विकास किया जा सकता है। भारतवर्ष के जल का 1951 के पूर्व 5 6 प्रतिशत ही काम मे लाया जा रहा था और शेप या तो समुद्र मे व्यर्थ चला जाता था अथवा बाढ इत्यादि से जनसख्या और देश की सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता था। इसलिए परियोजनाएँ बनाई गई हैं कि इस जल का इस प्रकार-उपयोग किया जाय कि देश का अधिक से अधिक विकास हो सके। बहुउद्देशीय योजनाओ के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(1) सिंचाई—भारतवर्ष का कुल क्षेत्रफल लगभग 3,262 लाख हैक्टर है जिसमे से केवल 1,469 लाख हैक्टर भूमि जोती जाती है। इस भूमि का भी केवल 20 प्रतिशत भाग सींचा जाता है, इसलिए व्यर्थ पड़ी हुई भूमि (Waste land) को कृषि योग्य बनाने के लिए और कृषि-भूमि की उपज बढाने के लिए इन योजनाओ द्वारा सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

(2) जल-विद्युत का विकास—भारतवर्ष के ग्राम्य क्षेत्रो और नगरो मे प्रकाश पहुँचाने के लिए, कृषि, उद्योग-धन्धो और व्यवसायो को सस्ती शक्ति प्रदान करने के लिए देश को कोयला सम्पत्ति पर अनावश्यक भार कम करने के लिए (जैसे, रेलें बिजली से चल सकेंगी और कोयले की भट्टियो की जगह बिजली की भट्टियाँ ले लेंगी) तथा अन्य विकास करने के लिए जलविद्युत का उत्पादन भी इन परियोजनाओ के द्वारा किया जा रहा है।

(3) बाढ़ों का रोकना—बाढो से प्रति वर्ष देश को बहुत बड़ी आर्थिक हानि हो जाती है। रेलें और सडकें टूट जाती हैं, फसलें बरबाद हो जाती है, गाँव और नगर नष्ट हो जाते है और उन्हे बसाने की समस्या उपस्थित हो

जाती है, इत्यादि । बहु-उद्देशीय परियोजनाओं के द्वारा बाढ़ों को रोककर बाढ़ो के पानी का सदुयोग करने का प्रयत्न किया गया है ।

(4) **नौकानयन में वृद्धि**—नदियो मे नावो और स्टीमरो इत्यादि के द्वारा परिवहन का विकास होगा और उनसे कम व्यय मे माल एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जा सकेगा ।

(5) **मीनाशय और मछलियों का पालना**— भारत की भोजन-समस्या को हल करने के लिए और अन्य लाभो के लिए मछलियो का पालन बढाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इन परियोजनाओ के द्वारा इसमे भी वृद्धि की जायेगी ।

(6) इसके अनिरिक्त मनोरंजन की सुविधाएँ जुटाई जायेंगी और कुछ अन्य लाभ भी प्राप्त होगे । इस प्रकार ये परियोजनाएँ आर्थिक दृष्टि से देश के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

भारतवर्ष मे चल रही सैकडो परियोजनाओं से ऊपर बताए गए लाभ प्राप्त किए जा रहे हैं । बहुमुखी योजनाओं ने कृषि के क्षेत्र मे ही नही उद्योगो और परिवहन के विकास द्वारा देश की आर्थिक उन्नति मे महान् क्रांति ला दी है ।

बहु-उद्देशीय परियोजना के अनेक आर्थिक लाभो के साथ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इन योजनाओ की सफलता के लिए और उन्हे क्रियान्वित करने के लिए हमारी वर्तमान पीढ़ी को कुछ त्याग भी करना पडता है । उदाहरण के लिए जहाँ ये योजनाएँ चालू की गई हैं (जहाँ बाँध बनाये गए हैं) वहाँ के गाँवो और कस्बो के सैंकडो व्यक्तियो को घर-बार और जमीनें छोडकर दूसरे स्थानो पर बसाना पडा है । इस हानि के लिए उन्हे उचित मुआवजे देने का भी प्रयत्न किया है । परन्तु इससे उनकी क्षति-पूर्ति नही हो पाती । इसके अतिरिक्त योजनाओ मे लगी करोडो रुपये की पूँजी जुटाने के लिए जनता की बचत, अतिरिक्त कर और बढे हुए मूल्य इत्यादि के रूप मे भी बहुत कुछ त्याग करना पडा है । परन्तु सन्तोष की बात यह है कि इन योजनाओ से इसी पीढी को अनेक लाभ होने लगे हैं और आगे आने वाली पीढियो को तो निश्चय ही इनसे बहुत बड़ा लाभ होगा । बहुत-सी नदियों मे बाढे आने से जो भारी हानियाँ होती थी उनमे अब कमी हुई है । जल-विद्युत के विकास से अनेक नए कस्बो और मण्डियो का विकास हुआ है और रोजगार के नए-नए साधन खुले

हैं। सस्ती शक्ति मिलने से कई वस्तुओं का उत्पादन-मूल्य भी कम हुआ है और जीवन-स्तर ऊँचा उठाने मे सहायता मिली है।

कुछ अधिक महत्वपूर्ण योजनाओ का वर्णन यहाँ आगे दिया गया है—

भाकरा-नगल परियोजना

भाकरा-नगल योजना भारतवर्ष की सबसे बडी और ससार की दूसरी सबसे बडी नदी-घाटी परियोजना है।[1] इस योजना का विचार-बीज 1908 मे बोया गया था जब कि पजाब के तत्कालीन गवर्नर सर लुइस डाने (Sir Louis Dane) ने इस क्षेत्र मे अपनी शिकार यात्रा के समय इस स्थान पर एक ऊँचे बाँध निर्माण की सम्भावना की कल्पना की। परन्तु योजना का कार्य सन् 1946 से पूर्व प्रारम्भ न हो सका। उसके रूप मे कई सशोधन करने पडे और सन् 1948 मे अन्तिम रूप का निर्णय होकर कार्यारम्भ हो सका।

बाँध स्थल—भाकरा-नगल बाँध के स्थल का दृश्य मनोहारी है। यह शिवालक श्रेणी के व्ही (V) शक्ल के खड्ड (Gorge) जिसमे होकर सतलज नदी बहती है जिसके दोनो ओर ऊँची-ऊँची चट्टाने हैं, पर है। भाकरा बाँध स्थल अम्बाला जिले मे रूपड़ से लगभग 80 किलोमीटर उत्तर की ओर है और भाकरा बाँध से आठ मील नीचे की ओर नगल बाँध का स्थान है।

गोविन्दसागर—भाकरा बाँध के निर्माण द्वारा सतलज नदी को एक 80 किलोमीटर लम्बी झील (क्षेत्रफल मे लगभग 155 वर्ग किलोमीटर) के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया है। इस झील मे जिसे अब गोविन्दसागर नाम दे दिया गया है, लगभग 74 लाख एकड फीट पानी समा सकेगा।[2]

परियोजना की रूप—भाकरा-नगल योजना के अन्तर्गत पाँच मुख्य बाते सम्मिलित हैं.—(1) भाकरा बाँध, (2) नगल बाँध, (3) नगल हाइडल कैनाल (Hydel canal), (4) दो शक्ति-गृह—गगूवाल और कोटला, और (5) भाकरा की नहरे (Canal system)।

---

[1] ससार के सीधे बाँधो मे सबसे बड़ा है (Highest among the straight gravity type dams)। भाकरा बाँध की ऊँचाई कुतुबमीनार की ऊँचाई की लगभग तिगुनी है।

[2] एक एकड़ फीट=1234·48 घनमीटर।

भाकरा बांध 225 5 मीटर ऊँचा सीधा सीमेंट और ककरीट का है। ऊपर सिरे पर इसकी लम्बाई 518 मीटर, चौडाई 9·14 मीटर और निम्नतम विन्दु पर इसकी चौडाई 190 मीटर है।

भाकरा से नीचे की ओर लगभग 12 किलोमीटर दूरी पर नगल बाँध का निर्माण किया गया है। नंगल बांध का मुख्य उद्देश्य उस स्थान पर के सतलज नदी के पानी को लेकर नगल जल विद्युत नहर (Hydel canal) मे मोडना है। इसके अतिरिक्त इस बांध का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य सन्तुलन (Balancing reservoir) का है अर्थात् भाकरा बांध मे यदि पानी आवश्यकता से अधिक या कम होगा तो नगल बांध के द्वारा उसे सन्तुलित किया जायगा। नगल बांध की ऊँचाई 27·7 मीटर, लम्बाई 314 मीटर और चौडाई 122 मीटर है। नदी से बांध तक पानी पहुचाने के लिए लगभग नौ-नौ मीटर चौड़ी 26 खाडियां हैं जिनमे प्रत्येक मे लोहे का दरवाजा लगा है।

नगल जल-विद्युत नहर नंगल स्थान पर सतलज के बाएँ किनारे मे निकलती है। यह नहर बहुत उच्च कोटि की इंजीनियरिंग का नमूना है। इस नहर की लम्बाई लगभग 64 कि० मी० है। इतनी ही दूरी मे यह नहर लगभग 58 पहाडी नदियो को पार करती है। इस नहर की क्षमता (Capacity) 12,500 क्यूसेक्स (Cusecs) है। इसमे 36 पुल है। इस नहर मे सीमेंट, कंकरीट इत्यादि की लाइनिंग लगी है।

यह नहर ससार की सबसे बडी सिचाई नहर है। रूपड़ मे जहाँ से सरहिन्द नहर निकलती है) 64 कि० मी० की दूरी पार करके नगल जल-विद्युत नहर भाकरा की मुख्य नहर के रूप मे बदल जाती है जिससे सुदूरवर्ती हिसार और राजस्थान के मुख्य क्षेत्रों को सिचाई के लिए पानी मिलता है। इस नहर की लम्बाई 175 किलोमीटर है। बिस्त दोआब की नहरो से सिंचाई का क्षेत्र और भी बढ़ जायेगा। भाकरा की मुख्य और शाखा नहरो की कुल लम्बाई लगभग 1,191 किलोमीटर है और वितरक उपशाखाओं की लम्बाई 3,200 किलोमीटर से भी अधिक है और बिस्त दोआब की नहरो की लम्बाई मिलाकर लगभग 6,400 किलोमीटर है।

नगल बांध और नगल जल-विद्युत नहर सन् 1954 मे बनकर तैयार हो गये थे जिनका उद्घाटन स्वर्गीय प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने 8 जुलाई, 1954 को किया था

नगल जल-विद्युत नहर पर दो शक्ति-गृह (पावर हाउस) है—(1) गगूवाल शक्ति-गृह जो नगल से लगभग 19 किलोमीटर की दूरी पर है, (2) कोटला शक्ति-गृह जो नगल से लगभग 29 किलोमीटर की दूरी पर है। दोनो शक्ति-गृहो म से प्रत्येक की क्षमता लगभग 48,000 किलोवाट बिजली उत्पादन की है। गगूवाल शक्ति-गृह सन् 1955 के प्रारम्भ से और कोटला शक्ति-गृह सन् 1956 से काय कर रहा है।

योजना के पूरे होने की कुल लागत 175 करोड रुपये से अधिक है।

परियोजना के लाभ—इस योजना से पजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली को लाभ होगा। मुख्य लाभ ये हैं —

(1) भाकरा नगल योजना का सबसे अधिक महत्व इस दृष्टि से है कि राजस्थान और पूर्वी पजाब के जिन जिलो मे अकाल पडा करते थे, जहाँ कृषि
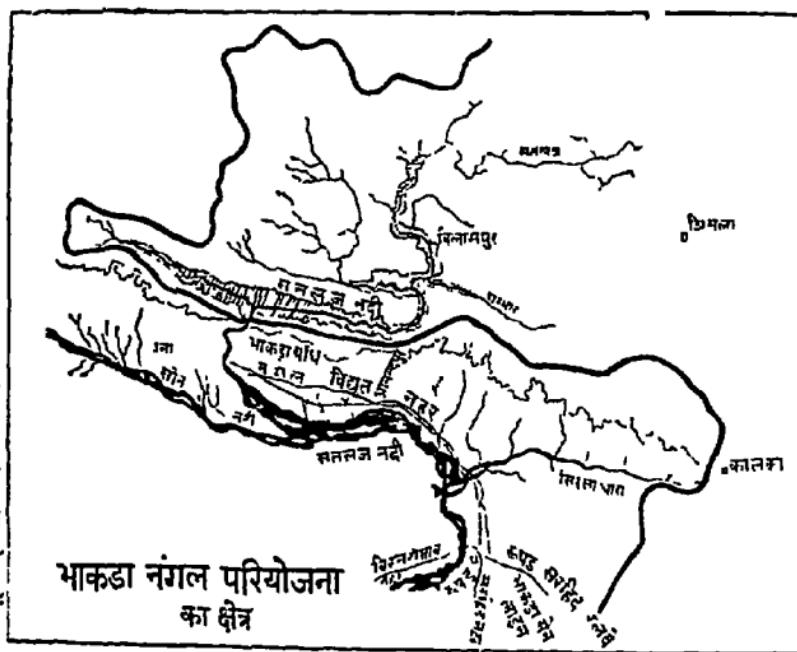
चित्र 16—भाकरा नगल परियोजना का क्षेत्र

करना अत्यन्त कठिन और जुए का सा खेल था, वहाँ भाकरा की नहरो से सिंचाई के द्वारा कृषि का विकास होने से इन क्षेत्रो के स्त्री-पुरुषो मे ही नही,

सम्पूर्ण भारत की जनता के मनो मे प्रसन्नता की लहरे उठ रही हैं (क्योकि अब पूरा भारत एक इकाई है)। सिंचाई की दृष्टि से पूर्वी पजाब के जालन्धर, होशियारपुर, फीरोजपुर, लुधियाना, हिसार, अम्बाला जिलों को, भारत के पुनर्गठन के पूर्व के पेप्सू क्षेत्रो को तथा राजस्थान के बीकानेर और जैसलमेर डिवीजनो को अधिक लाभ है।

(2) दूसरा महत्त्वपूर्ण लाभ जल-विद्युत के विकास के रूप मे होगा। राजस्थान, पजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रो को भी लाभ होगा। कुल 128 कस्बो को बिजली मिलेगी। कुल बिजली लगभग 4 लाख किलोवाट मिलेगी। बिजली-वितरण के मुख्य स्टेशन पूर्वी पजाब मे जोगेन्द्रनगर, काँगडा, पठानकोट, धारीवाल, अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, फीरोजपुर, मोगा मुक्तसर, फाजिल्का, अम्बाला, करनाल, पानीपत, हाँसी, भिवानी, राजपुरा, पटियाला और नाभा, इत्यादि; राजस्थान मे राजगढ और सादूलशहर, उत्तर प्रदेश मे सहारनपुर इत्यादि, और दिल्ली है। पजाब मे जल-विद्युत के विकास का महत्व इसलिए अधिक है कि वहाँ शक्ति के अन्य साधनो पैट्रोलियम और कोयला का अभाव है।

जल-विद्युत के विकास से सिंचाई के क्षेत्र मे यह लाभ हुआ है कि ग्राम्य क्षेत्रो मे लगभग 800 नलकूप लगाना सम्भव हुआ है। जगाधरी नलकूप योजना इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है कि इसके द्वारा जमीन के नीचे का ऊँचा उठता हुआ पानी निकालकर सिंचाई के काम आ सकेगा।

(3) सतलज और सिरसा इत्यादि पहाडी नदियो मे वर्षा के मौसम मे आने वाली बाढो को रोक दिया गया है।

(4) नई मण्डियो का विकास होगा और लगभग 25 लाख व्यक्तियो को बसाया जा सकेगा।

(5) भाकरा-नगल योजना का रोजगार देने मे महत्त्वपूर्ण योग है। बाँध बनाने मे, बिजली के काम मे नहरें बनाने और मिट्टी के काम मे हजारो व्यक्तियो को रोजगार मिला। इसके अतिरिक्त कपास की खेती मे उन्नति होने मे तथा बिजली मिलने मे सूती उद्योग और कुटीर उद्योगो की उन्नति होगी और उनमे भी रोजगार मिलेगा।

(6) भारतवर्ष को लगभग 90 करोड रुपए की विदेशी मुद्रा की बचत होगी।

भाकरा-नंगल योजना की प्रगति—नंगल बांध, नगल हाइडल चैनल, रूपड हैडवर्क्स का सशोधन, भाकरा नहरें और विस्त दोआब नहर पूरी हो चुकी हैं। गगूवाल और कोटला शक्ति-गृहो मे प्रत्येक 24,000 किलोवाट क्षमता की इकाइयां क्रमश 1955 और 1956 मे स्थापित हो गई थी। बाएँ तट के शक्ति-गृह की बिजली उत्पादन की पहली इकाई नवम्बर, 1960 मे पूरी हो गई थी, शेष चार इकाइयाँ तथा अन्य अधिकाश कार्य पूरे हो चुके हैं। बिजली के वितरण की लाइन लगभग पूरी हो चुकी है।

भाकरा बांध अपनी पूरी ऊँचाई 225½ मीटर तक बनकर 20 नवम्बर, 1962 को पूरा हो गया है।

दामोदर घाटी परियोजना

इस योजना की आवश्यकता दामोदर नदी मे अधिकतर बाढें आने के कारण हुई। दामोदर नदी, जो 610 मीटर की ऊँचाई पर छोटा नागपुर की पहाड़ियो से निकलती है और जिसकी लम्बाई 541 किलोमीटर के लगभग है, बिहार और बगाल से बहती हुई हुगली नदी मे मिलती है। नदी के ऊपरी भाग मे पहाडी स्थानो पर, जहाँ जङ्गल काट लिए गए हैं वर्षा के द्वारा मिट्टी के कटाव की समस्या उपस्थित होती है और निचले भाग मे वर्षा का पानी दामोदर नदी मे बाढें लाया करता था जिसके द्वारा बडी आर्थिक हानियाँ उठानी पडती थी।

परियोजना का रूप—मूल योजना मे मुख्यत. निम्नलिखित बाते शामिल हैं—(1) बिहार के हजारीबाग जिले मे बोकारो स्थान पर (बरमी रेलवे स्टेशन मे 11 कि० मी० दूर) 1,50,000 किलोवाट शक्ति (Capacity) का एक थर्मल पावर स्टेशन; (2) हजारीबाग जिले मे (कोडारमा रेलवे स्टेशन मे 22 5 किलोमीटर दक्षिण की ओर) तलैय्या बांध का निर्माण और 40,000 किलोवाट का एक पावर स्टेशन; (3) हजारीबाग से 39 कि० मी० दूर कोनार बांध का निर्माण; (4) बिहार के मानभूम जिले मे मैथोन (Maithon) बांध और 60 000 किलोवाट का पावर स्टेशन, यह स्थान कुमारधुबी रेलवे स्टेशन मे 5 कि० मी० दूर है, (5) मानभूम जिले मैथोन (Maithon) से 21 कि० मी० दक्षिण की ओर पंचेत (Panchet) पहाडी का बांध और 40

हजार किलोवाट का पावर स्टेशन; (6) पश्चिमी बंगाल के बर्दवान जिले में दुर्गापुर बैरेज और नहरों का निर्माण, और (7) बिजली का समीपवर्ती क्षेत्रों में वितरण। इसके अतिरिक्त योजना में कुछ छोटे जलाशय, मछली पालन में विकास और नौकानयन में वृद्धि भी सम्मिलित हैं। योजना में सम्मिलित बालपहाड़ी (Balpahari), बोकारो, अय्यर और बरमो के बाँधों और जल-विद्युत स्टेशनों का कार्य देर में शुरू किया जायगा।

परियोजना की लागत का अनुमान 132 करोड़ रुपये से ऊपर किया गया है। योजना का कार्य सन् 1948 में प्रारम्भ हुआ है। योजना का व्यय केन्द्रीय सरकार और बंगाल तथा बिहार की सरकारें मिलकर कर रही हैं।
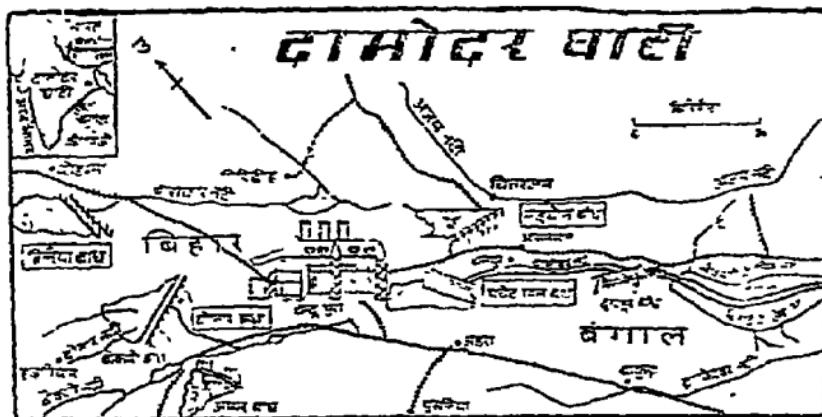
चित्र 17—दामोदर घाटी परियोजना

योजना की प्रगति—(1) बोकारो थर्मल पावर स्टेशन सन् 1953 में पूरा हो गया था। प्रारम्भ में इसकी क्षमता 150 हजार किलोवाट थी जो अन्त में 225 हजार किलोवाट होने का अनुमान है। (2) तिलैय्या हाइड्रो स्टेशन फरवरी 1953 ई० में चालू हुआ। इसका वितरण-कार्य प्रगति पर है। (3) कोनार बाँध सन् 1955 में पूरा हो गया था जिसका उद्घाटन स्व० नेहरू द्वारा 15 अक्टूबर, 1955 को हुआ। (4) मैथोन बाँध सन् 1957 में पूरा हुआ और इसका उद्घाटन स्व० प्रधान मन्त्री नेहरू ने 27 सितम्बर, 1957 को किया। (5) दुर्गापुर बैरेज सन् 1955 में पूरा हो गया था जिसका उद्घाटन डा० राधाकृष्णन ने 9 अगस्त, 1955 को किया था।

(6) पचेत पहाडी का बाँध 5 दिसम्बर,-1959 को पूरा हुआ । (7) पंचेत पहाडी शक्ति केन्द्र चालू हो गया है । मैथोन और पचेत दो मुख्य बांध हैं जिनके आधार पर निचली दामोदर घाटी मे बाढ-नियन्त्रण और सिंचाई के कार्य आरम्भ होगे ।

इसके अतिरिक्त दूसरी योजना की अवधि मे ही बोकारो थर्मल शक्ति केन्द्र का विकास किया गया है । दुर्गापुर थर्मल शक्ति स्टेशन पूरा किया गया है । हजारीबाग जिले मे थर्मल शक्ति केन्द्र द्वितीय योजना के अन्त तक पूरा नही हो पाया था ।

दुर्गापुर बैरेज सिंचाई परियोजना का काय मार्च, 962 तक पूरा हो गया था, इसमे लगभग 3,72,000 हैक्टर क्षेत्रफल की सिंचाई हो सकेगी ।

दामोदर घाटी शक्ति प्रणाली की वितरण लाइनो से कलकत्ता तक बिजली पहुंचाई गई है (सन् 1961-62 मे 20,830 लाख यूनिट) । दामोदर घाटी शक्ति प्रणाली से जमशेदपुर के टाटा लोहा-इस्पात कारखाने को, बर्नपुर के इन्डियन आयरन एण्ड स्टील कारखाने को, चितरंजन के लोकोमोटिव वर्क्स को तथा इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तान केबिल्स कलकत्ता इलेक्ट्रिक सप्लाई कॉरपोरेशन, ईस्टर्न रेलवे घटसिला (बिहार) की तांबे की खानो, रानीगज और झरिया की कोयला खानो और बिहार तथा पश्चिम बगाल के सरकारी बिजली बोर्डों को बिजली मिलती है, इत्यादि । बिजली वितरण के कार्य मे बहुत प्रगति हो चुकी है ।

तीसरी योजना की अवधि मे दामोदर घाटी परियोजना के वे कार्य पूरे हो चुकेंगे जो दूसरी योजना के काल मे पूरे नही हो पाए थे तथा ये कार्य प्रारम्भ किए गए हैं, (1) दुर्गापुर थर्मल शक्ति केन्द्र का विस्तार, (2) चन्द्रपुरा थर्मल शक्ति के केन्द्र का विस्तार, (3) ग्रिड सब-स्टेशनो तथा वितरण लाइनो का विस्तार, (4) रेलमार्गों के विद्युतीकरण के लिए बिजली की पूर्ति, (5) औद्योगिक तथा घरेलू उद्देश्यो के लिए एक बाँध और (6) सिंचाई की सुविधाओ मे विस्तार तथा सुधार ।

परियोजना के लाभ—दामोदर घाटी योजना के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं—

(1) जल-विद्युत का उत्पादन (5,490 लाख किलोवाट)

(2) सिंचाई का विकास (423 हजार हैक्टर)

(3) नई भूमि को कृषि योग्य बनाना,

(4) भू-क्षरण अर्थात् मिट्टी के कटाव को रोकना। इसके लिए लगभग 18 6 हजार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र मे वन लगाये जाएँगे,

(5) विस्थापितो का बसाना,

(6) मलेरिया नियन्त्रण,

चित्र 18 — दामोदर घाटी से लाभ

(7) छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास,

(8) मछली-पालन का विकास,

(9) नौकानयन का विकास, विशेषकर कोयला और अन्य कच्चे माल को ढोना,

(10) बाढ नियन्त्रण (लगभग 7 लाख हैक्टर क्षेत्र मे), तथा

(11) मनोरजन के साधन जुटाना।

कुल मिलाकर दामोदर घाटी योजना दामोदर घाटी की महान् आर्थिक उन्नति की योजना है।

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका की

टेनेसीवैली ऑथोरिटी के आधार पर केन्द्रीय सरकार के एक एक्ट द्वारा सन् 1948 मे दामोदर वैली कॉर्पोरेशन बनाया गया था। यह योजना बिहार और बगाल के लाभ की है।

हीराकुंड बांध परियोजना

महानदी की लम्बाई 858 किलोमीटर है। महानदी का शाब्दिक अर्थ बडी नदी है। महानदी उडीसा की ही नही भारतवर्ष की बडी नदी है। नराज से ऊपर महानदी का अपवाह क्षेत्र (Catchment area) अमरीका की टेनेसी नदी के सग्रहण का सवा गुना, लगभग 1,32,000 वर्ग किलोमीटर है। शुष्क ऋतु मे यह नदी बहुत छोटी रह जाती है और इसे पैदल पार किया जा सकता है परन्तु वर्षा काल मे यह उग्र रूप धारण कर लेती है, बाढ आ जाती है, तटो की उर्वर भूमि को काट डालती है। महानदी का पानी केवल कुछ अश को छोडकर, जो सिचाई के काम मे आने लगा, शेष व्यर्थ चला जाता था और अकथनीय हानि पहुँचाता था। सन् 1865-66 के अकाल (सूखा) मे अकेले कटक जिले मे लगभग 10 लाख व्यक्तियो की मृत्यु हुई। पुरी जिले की लगभग 40 प्रतिशत जनसख्या की मृत्यु हो गई। इस अकाल के तुरन्त पश्चात् ही सन् 1866 मे बाढें आई। सूखा से जो कुछ बचा था उसका बहुत कुछ बाढ ने नष्ट कर दिया। यह उल्लेख मिलता है कि महानदी डेल्टा प्रदेश मे सन् 1868 से 39 बार प्रबल बाढ आ चुकी हैं और प्रत्येक बार 20 लाख से लेकर 36 लाख रुपये तक की हानि का अनुमान किया जाता है।

महानदी की बाढ़ो को रोकना सम्भव न हो सका, इसलिए सन् 1948 मे महानदी बेसिन की बाढो को रोकने के साथ अन्य अनेक उद्देश्यो से महानदी योजना का कार्य हाथ मे लेने का निर्णय अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

महानदी घाटी के विकास की तीन योजनाओ मे हीराकुंड परियोजना प्रमुख है। अन्य दो योजनाएँ टिक्करपारा और नराज बाँध योजनाएँ हैं।

बांध का स्थान और परियोजना का रूप—हीराकुड बांध का स्थान उडीसा मे महानदी पर सम्बलपुर से ऊपर की ओर लगभग 14 5 किलोमीटर दूरी पर है।

हीराकुड बाँध दुनिया का सबसे अधिक लम्बा बाँध है और दुनिया के सबसे बडे बाँधो मे से एक है। इस बाँध मे तुगभद्रा बाँध की अपेक्षा दूना

और कावेरी के मेट्टूर बाँध से तिगुना पानी समाता है। इसकी क्षमता भाकरा बाँध के लगभग है।

हीराकुंड योजना का कार्य सन् 1948 मे प्रारम्भ हुआ था।

जैसा कि नाम से विदित है, हीराकुंड बाँध का स्थान महानदी मे स्थित 'हीराकुंड द्वीप' है। बाँध की लम्बाई[1] 26 किलोमीटर और ऊँचाई 61 मीटर है। हीराकुंड बाँध मे लगभग सत्तर लाख एकड़ फीट[2] पानी समाता है जिसका फैलाव 746 वर्ग किलोमीटर मे है। यह भाकरा जलाशय के पानी के फैलाव का लगभग चौगुना है।

समूची परियोजना के अन्तर्गत तीन बाँधो और दो शक्ति-गृहो (Power houses) का निर्माण सम्मिलित है। पहला शक्ति-गृह मुख्य बाँध के बिल्कुल समीप बन गया है। दूसरे बाँध का स्थान हीराकुंड बाँध से 26 किलोमीटर की ओर चिपलीमा (Chiplima) है।

हीराकुंड बाँध का निर्माण कंकरीट, ईंट, चूना और मिट्टी से हुआ है।

हीराकुंड का प्रथम चरण (Stage I) जनवरी, 1957 मे पूरा हुआ था जिसका उद्घाटन स्वर्गीय प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने 13 जनवरी 1957 को किया था।

परियोजना के लाभ हीराकुंड योजना के प्रथम चरण मे दोनो नहरे और एक शक्ति गृह बने हैं।

(1) अप्रैल 1957 ई० मे सम्भलपुर और बोलनगिरि जिलो के लगभग 272 हेक्टर भूमि और कटक तथा पुरी जिलो की लगभग 755 हजार हैक्टर भूमि की सिंचाई होने लगी है। इससे लगभग 5-6 लाख मैट्रिक टन खाद्यान्न और 2 4 लाख मैट्रिक टन अन्य पदार्थो की वृद्धि का अनुमान है।

(2) जनवरी, 1957 ई० मे पहला शक्ति-गृह जिसकी क्षमता 123 हजार किलोवाट बिजली की है, चालू हो गया है और उससे लगभग 1,18,155 किलोवाट बिजली मिलने लगी है।

---

1 मुख्य बाँध की लम्बाई 5 किलोमीटर है। मुख्य बाँध जनवरी 13, 1957 का पूरा हो गया था।

2 लगभग 86,344 लाख घन मीटर।

द्वितीय चरण मे चिपलीमा शक्ति-गृह बनकर तैयार हो गया है। (1962) और उनमे लगभग 72 हजार किलोवाट बिजली मिलेगी। मुख्य बाँध के शक्ति-गृह की एक और इकाई मे 37,500 किलोवाट बिजली और मिलने लगेगी द्वितीय चरण 1963 मे पूरा हो चुका है।

हीराकुड परियोजना मे बिजली का लाभ निम्नलिखित जिलो को है—सम्भलपुर, सुन्दरगढ, क्योंझर, मयूरभज, ढेंकानाल, कटक, पुरी, बोलनगिरि और कालाहाण्डी जिले।

(3) हीराकुड योजना का तीसरा मुख्य लाभ यह है कि अब बाढें नही आया करेगी और महानदी डेल्टा पर बाढो से होने वाली जीवन और जायदाद की लाखो रुपये की हानि रुक जायगी।

(4) इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थों मे सम्पन्न इस क्षेत्र मे नौकानयन मे वृद्धि हुई है।

मार्च, 1962 तक बिजली की स्थापित क्षमता 1 23,000 किलोवाट थी और 1960 61 मे 153 हजार हैक्टर क्षेत्र की सिचाई की सुविधाएँ हो गयी थी।

हीराकुड बांध की बिजली हीराकुड मे इण्डियन अल्यूमिनियम कम्पनी को, राउरकेला को, जोडा स्थित फैरो-मैंगनीज फैक्ट्री को, राजगगपुर की सीमेंट फैक्टरी को, ब्रजराज नगर की ओरियन्ट पेपर मिल्स को तथा कटक, पुरी, सम्भलपुर, ढेंकानल, सुन्दरगढ, क्योंझर मयूरभज, बालासोर तथा बोलनगिरि-पटना जिलो के अनेक उद्योगो को बिजली मिलने लगी है।

चित्र 19 —हीराकुड परियोजना क्षेत्र

हीराकुड बांध योजना के प्रथम चरण की लागत लगभग 71 करोड रु०, द्वितीय चरण 15 करोड रुपये और तीसरे चरण की लगभग 15 करोड रु०

होगी। तृतीय चरण मे नराज के ऊपर महानदी पर बाँध बनाकर नहरो से पुरी और कटक जिलो की 6 लाख हैक्टर से अधिक भूमि की सिंचाई होगी।

तुंगभद्रा परियोजना

कृष्णा नदी की सहायक नदी तुगभद्रा की परियोजना आन्ध्र और मैसूर राज्य की अत्यन्त महत्वपूर्ण योजना है। इस योजना के अन्तर्गत (1) एक पक्के बाँध का निर्माण, (2) मुख्य बाँध की बगल मे जलाशय (Reservoir) बनाने के लिए दो छोटे बाँधो का निर्माण, (3) नदी के दोनो ओर दो नहरे, (4) एक ऊँची सतह की नहर, (5) जल-विद्युत शक्ति के प्लान्ट (सयत्र) सम्मिलित हैं।

बाँध बाँध-स्थल मैसूर राज्य के बेल्लारी जिले मे मल्लपुरम् के समीप है। बाँध की लम्बाई 2,438 मीटर और ऊँचाई 49·37 मीटर है। बाँध मे 32,166 लाख घनमीटर पानी समाता है। जलाशय का कुल क्षेत्रफल लगभग 378 वर्ग किलोमीटर है।

मुख्य बाँध 183 मीटर लम्बा है और पत्थर का ही बना है। मुख्य बाँध के बायी ओर दो छोटे बाँध हैं, एक मिट्टी का बना हुआ और दूसरा मिश्रित। इन बाँधो का काम टेढी-मेढी तुगभद्रा को बगल से रोकना है।

जलाशय लगभग 378 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र मे फैला हुआ है। जलाशय के निर्माण मे निकटवर्ती 65 गाँवो को खाली करना पड़ा है और इन गाँवो को अन्य उपयुक्त जगहो पर बसाने मे योजना की लागत के रूप मे लगभग नौ करोड रुपये की राशि व्यय करनी पड़ी है।

नदी के दोनो ओर से बाँध से दो नहरे निकाली गई हैं। दाईं ओर मुख्य नहर 362 कि॰ मी॰ लम्बी है। बाईं ओर की नहर की लम्बाई 204 कि॰ मी॰ है। इन नहरो की क्षमता लगभग 17 000 Cusecs है। ये नहरे अपनी अनेक वितरक नहरो के द्वारा आन्ध्र और मैसूर राज्य के बहुत से दूरवर्ती शुष्क क्षेत्रो की सिचाई करने लगी हैं। रायल सीमा जैसे शुष्क क्षेत्र को भी अब पानी मिलने लगा है।

एक ऊँची सतह की 274 किलोमीटर लम्बी नहर भी है जो लगभग 18 हजार हैक्टर भूमि की, विशेषत. अनन्तपुर और रायचूर जिलो के अभावग्रस्त क्षेत्र की सिचाई करती है। तुगभद्रा योजना मे मैसूर और आन्ध्र के कुल

लगभग 6 लाख हैक्टर अतिरिक्त क्षेत्र की सिंचाई के द्वारा लगभग 142 हजार मैट्रिक टन खाद्यान्नों और 81,000 मैट्रिक टन औद्योगिक फसलों के उत्पादन की वृद्धि होगी।

जल विद्युत—तुंगभद्रा घाटी में विद्युत की आवश्यकता पूरी करने के कई शक्ति-गृह बनाए हैं। एक शक्ति-गृह बाँध की दायीं ओर है और दूसरा सिंचाई नहर के 24 वें किलोमीटर पर है जहाँ एक प्राकृतिक प्रपात है। इन दोनों शक्ति-गृहों की शक्ति लगभग 24 500 किलोवाट है। बाएँ किनारे पर बाँध के समीप और सिंचाई नहरों पर चार प्रपातों पर विद्युत उत्पादन होगा। कुल विद्युत लगभग 173 हजार किलोवाट मिलेगी।

लागत और प्रगति योजना पूरी करने की कुल लागत लगभग 108 करोड़ रुपये होने का अनुमान है। तुंगभद्रा का मुख्य बाँध जुलाई, 1953 में पूरा हो गया था और उत्तर की ओर की नहर और दक्षिण ओर की निम्न सतह नहर का पानी सिंचाई के लिए मिलने लगा था। बाँध जून, 1958 में हर प्रकार से पूरा हो गया था।

निम्न सतह की नहर (दाईं ओर की) जून, 1957 में पूरी हो गयी थी। बाँये तट की नहर सन् 19(0 तक 105 कि० मी० तक पूरी हो गई थी। बाँध के शक्ति-गृह में और हाम्पी के शक्ति-गृह में प्रत्येक में 9,000 किलोवाट बिजली उत्पादन की क्षमता की इकाइयाँ क्रमश 1957 और 1958 में स्थापित हो चुकी थी। तीसरी योजना की अवधि में योजना पूरी हो जायगी।

अप्रैल, 1963 तक तुंगभद्रा योजना से लगभग 1,62,000 हैक्टर भूमि की सिंचाई होने लगी थी और 45,000 किलोवाट की पूर्ति होने लगी थी।

जल-विद्युत के विकास से कुटीर उद्योगों की उन्नति होने की आशा है। ट्यूब वैल्स से भी सिंचाई हो सकेगी। अन्य उद्योगों का विकास होने की भी सम्भावना है और तब यहाँ के लोग पुराने विजयनगरम् राज्य की समृद्धि और सुख के स्वप्न पूरे कर सकेंगे।

कोसी परियोजना

कोसी परियोजना के अन्तर्गत पहले यह सोचा गया था कि बाराह क्षेत्र से 16 किलोमीटर ऊपर की ओर 239 मीटर ऊँचे बाँध का निर्माण किया जाय और उससे बाढ़-नियन्त्रण, शक्ति-उत्पादन, सिंचाई, नौकानयन, भू-रक्षण, मछली

पालन मनोरंजन इत्यादि के उद्देश्यों की पूर्ति हो। इस योजना की लागत 175 करोड़ रुपया होती। परन्तु अधिक लागत और योजना पूरी करने के लिए अधिक समय के विचार से मूल योजना को त्याग कर बिहार की शोक-सरिता' कोसी को पालतू बनाने के लिए पुनर्विचार किया गया।

वर्तमान कोसी योजना केन्द्रीय जल शक्ति आयोग (सेन्ट्रल वाटर एण्ड पावर कमीशन) ने नवम्बर, 1953 मे तैयार की। कोसी योजना के अन्तर्गत तीन इकाइयाँ सम्मिलित हैं—

(1) हनुमाननगर तथा हैड वर्क्स नैपाल मे छत्र से तीन मील के लगभग नीचे की ओर बांध (Barrage) बनाया जायगा। इस बाँध के तीन मुख्य कार्य हैं। (क) बालूरेत को रोकना और ऊपर नदी के ढाल को चौडा करना, (ख) लगभग 567 हजार हैक्टर क्षेत्र की सिचाई की आवश्यकता, और (ग) शक्ति का विकास करना।

यह बाँध सन् 1963 मे पूरा हो चुका है।

(2) बाढ़ो से रक्षा के उपाय— बांध से नीचे 121 किलोमीटर तक का निर्माण Embankment) पश्चिमी और 101 कि० मी० पूर्वी ओर। पूर्व मे प्रवाह बाँध के ऊपर की ओर 19 कि० मी० बाढ़ तट बनाने की भी व्यवस्था है।

(3) पूर्वी कोसी नहरें—इनमे एक मुख्य नहर शाखा नहरें और उनकी अनेक वितरक शाखाएं होगी जिनसे पूर्नियाँ और साहसा जिलो की लगभग 567 हजार हैक्टर भूमि की सिचाई होगी।

कोसी योजना के अन्तर्गत लगभग 8 हजार किलोवाट जल विद्युत उत्पादन की योजना विचाराधीन है। समझौते के अनुसार उत्पन्न बिजली की आधी नैपाल को दी जायगी। चत्रा नहर प्रणाली से पूर्वी नैपाल की लगभग 81,000 हैक्टर भूमि की सिचाई होगी।

सर्व प्रथम निर्मली के समीप पश्चिमी बाढ तटो का निर्माण आरम्भ हुआ (14 जनवरी 1955 को)

योजना के कार्यों की प्रगति मार्च, 1960 तक इस प्रकार थी —

1 बाँध मे कंकरीट का कार्य 17 प्रतिशत और मिट्टी का कार्य 36 प्रतिशत हो चुका था। पूर्वी कच्चे बाँध तथा निर्देशक बाँधो का काफी काम पूरा हो चुका था।

2. बन्धों (Embankments) का पूर्व और पश्चिम दोनों ओर निर्माण पूरा हो गया था। तटों की ऊँचाई औसतन 4 6 मीटर और लम्बाई दोनों ओर 121 कि० मी० है। इन तटों के निर्माण से भारत और नेपाल की कुल छ लाख एकड़ भूमि बाढ़ मुक्त हो गई है।
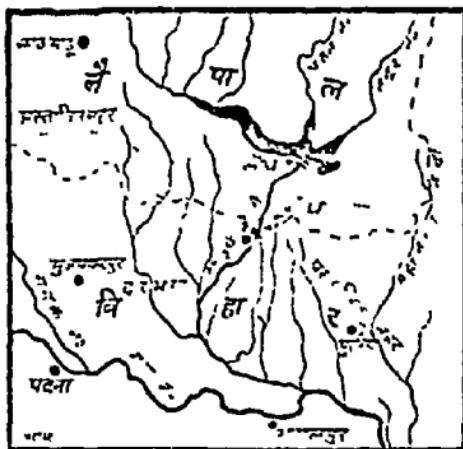
चित्र 20—कोसी परियोजना क्षेत्र

3 पूर्वी कोसी नहरों की खुदाई का काम मुख्य नहरों पर 69 प्रतिशत पूरा हो चुका था और वितरण शाखाओं का आठ प्रतिशत के लगभग।[1]

कोसी परियोजना अधिकांश 1963 में पूरी हो चुकी है और इसकी कुल लागत लगभग 44 करोड़ 76 लाख रुपया होने का अनुमान है।[2]

उत्तर प्रदेश की प्रमुख नदी घाटी परियोजना —

(1) रिहन्द परियोजना
(2) माताटीला बाँध परियोजना
(3) गण्डक परियोजना
(4) शारदा परियोजना

रिहन्द बाँध (पीपरी) परियोजना

रिहन्द बाँध परियोजना उत्तर प्रदेश की बहुत महत्वपूर्ण परियोजना है, इससे बिहार को भी लाभ होगा।

---

1 Government of India Progress of Selected Projects during the Second Five Year Plan, Statistics and Surveys. Division, New Delhi March, 1961, p 15

2 Ibid

रिहन्द बाँध सोन नदी की शाखा रिहन्द पर मिर्जापुर जिले मे पीपरी गाँव के निकट बनाया गया है। बाँध की लम्बाई लगभग 989 मीटर है और ऊँचाई 90 मीटर है। इसके जलाशय गोविन्दवल्लभ पन्त सागर में लगभग 1 062 करोड़ घनमीटर (86 लाख एकड़ फीट) पानी समाता है। जलाशय का क्षेत्रफल लगभग 466 वर्ग किलोमीटर है।

रिहन्द बाँध के शक्तिगृह की स्थापित क्षमता 2 50 000 किलोवाट है जिसमे पचास-पचास हजार किलोवाट के पाँच विद्युत-उत्पादन यूनिट (Generating units) हैं और 50,000 किलोवाट के एक जनरेटिंग-सैट की जगह है।

लाभ—रिहन्द परियोजना से अन्ततोगत्वा यू० पी० राज्य के पूर्वी जिलो मे 4 000 नलकूप स्थापित करने के लिए बिजली मिलेगी जिनमे उत्तर प्रदेश की 6 5 लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई होगी। शक्तिगृह से प्राप्त पानी से बिहार की लगभग 2 लाख हैक्टर भूमि सींची जा सकेगी। कई महत्वपूर्ण उद्योगो को बिजली मिलेगी।

लागत—बिजली वितरण की लागत समेत रिहन्द परियोजना की कुल लागत 46 करोड रुपए से अधिक है।

शक्ति-गृह का उद्घाटन भारत के प्रथम प्रधान मत्री स्व० नेहरू ने 7 जनवरी, 1963 को किया था, और 1 फरवरी, 1963 से उसका कार्य वाणिज्यिक ढंग पर आरम्भ हुआ था।

चम्बल परियोजना

चम्बल परियोजना राजस्थान और मध्य प्रदेश की सम्मिलित बहु-उद्देश्यीय परियोजना है। इसके अन्तर्गत तीन बाँधो और हरेक बाँध पर शक्तिगृहो का निर्माण तथा कोटा के समीप एक बैरेज का निर्माण और सिचाई के लिए उसमे से दोनो ओर नहरो का निर्माण सम्मिलित है। पूरी योजना तीन चरणो मे बाँट दी गई है।

प्रथम चरण मे ये बाते निम्नलिखित है—

(1) राजस्थान और मध्य प्रदेश की सीमा पर चौरासीगढ किले के निकट 62 मीटर ऊँचे, 514 मीटर लम्बे तथा 84,500 घनमीटर की भण्डार क्षमता (Storage capacity) के गान्धी सागर बाँध का निर्माण।

(2) गाधी सागर बाँध का शक्ति गृह (जिसमे कुल पाँच इकाइयाँ होगी

और प्रत्येक की बिजली उत्पादन की क्षमता 33 हजार किलोमीटर होगी, इनमे से चार इकाइयो की स्थापना प्रथम चरण मे सम्मिलित है ।)

(3) बिजली ले जाने के लिए 1,486 किलोमीटर लाइन (Transmission lines) ।

(4) राजस्थान मे कोटा बैरेज जिसमे 37·2 मीटर ऊँचा मिट्टी का बांध और 19 प्रवाह द्वार (Spillway with 19 gates)

(5) कोटा सिंचाई बांध (बैरेज) से चम्बल के दोनो ओर नहरें 261 कि० मी० राजस्थान मे तथा 641 किलोमीटर मध्य प्रदेश मे, दाईं मुख्य नहर 376 किलोमीटर लम्बी है जिसमे से 132 किलोमीटर राजस्थान मे और शेष मध्य प्रदेश मे हैं ।

द्वितीय चरण मे सम्मिलित बातें ये हैं—

(1) राणा प्रताप सागर मे बांध, चित्तौड जिले मे रावतभाटा गांव के समीप 36·61 मीटर ऊंचा और 1,158 मीटर लम्बा ।

(2) एक शक्ति-गृह—बांए तट पर मिट्टी के बांध के नीचे समीप की घाटी मे जिसमे बिजली उत्पादन की पांच इकाइयां होगी और प्रत्येक की क्षमता 32 हजार किलोवाट की होगी । इनमे से एक इकाई की स्थापना बाद मे होगी ।

तीसरे चरण मे कोटा बांध और एक शक्ति-गृह का निर्माण सम्मिलित है ।

प्रथम और द्वितीय चरण पूरे होने पर चम्बल योजना से 220 हजार किलोवाट बिजली (स्थापित क्षमता) की व्यवस्था होगी और 567 हजार हैक्टर भूमि की सिंचाई होगी (4,45,000 हैक्टर प्रथम चरण के बाद और 1,22.000 हैक्टर प्रथम चरण के बाद) ।

लागत—सन् 1957 के अनुमानों के अनुसार चम्बल योजना के प्रथम चरण की लागत 63 59 करोड़ रुपये और द्वितीय चरण की लागत 17·21 करोड रुपये होगी ।

प्रगति—चम्बल योजना के प्रथम चरण का कार्य 1953 मे आरम्भ हुआ

---

1. Progress of Selected Projects, op. cit., p. 13.

था और 1964 मे लगभग पूरा हो चुका है। द्वितीय चरण का कार्य अक्टूबर, 1960 मे आरम्भ हुआ और 1964-65 मे पूर्ण होने की आशा है। तृतीय चरण का कार्य तीसरी योजना की अवधि मे पूरा होने की आशा है।[1]

यद्यपि चम्बल योजना के प्रथम चरण का कार्य भी 1963 तक पूरा नही हो पाया था, गांधी सागर बांध से 19 नवम्बर, 1960 को बिजली का उत्पादन आरम्भ हो गया था और उसके दूसरे दिन से कोटा सिंचाई बांध से सिंचाई के लिए पानी मिलने लगा था।

जवाई परियोजना

इस परियोजना का प्रारम्भ इस शताब्दी के प्रारम्भिक दशक मे हुआ था। जब इस क्षेत्र की जांच-पड़ताल की गई थी परन्तु सिरोही दरबार में कुछ गम्भीर एतराज उठ खड़े होने से इसे स्थगित कर देना पड़ा। सन् 1947 मे खाद्यान्नो के अभाव के कारण योजना का कार्य तुरन्त आरम्भ कर देने की आवश्यकता अनुभव हुई। इस समय भी इस योजना द्वारा बिजली के उत्पादन का विचार (जैसा कि 4,000 किलोवाट बिजली उत्पादन की आशा थी) छोड़ देना पड़ा।

जवाई परियोजना के अन्तर्गत (1) एक जलाशय का निर्माण, (2) एक कंकरीट के बांध का निर्माण, (3) दो मिट्टी के बांधो का निर्माण, (4) दो पहलू दीवालो (Flank walls), और (5) नहरो का निर्माण सम्मिलित है।

इस परियोजना द्वारा जोधपुर से लगभग 161 किलोमीटर दक्षिण मे एहरिनपुरा की पहाड़ियों के बीच जवाई नदी के पानी को रोककर 26 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के जलाशय मे एकत्रित किया गया है। यहाँ से इस पानी का वितरण कंकरीट से तैयार की हुई नहरो के द्वारा किया गया है।

पक्के बांध की ऊँचाई लगभग 35 मीटर और लम्बाई 924 मीटर के लगभग है। लगभग 227 मीटर पर ले जाने के लिए तेरह दरवाजो का प्रयोग किया गया है। बांध मे कुल पानी लगभग 1841 लाख घनमीटर समा सकेगा। बांध के नीचे एक निरीक्षण गैलरी बनाई गई ताकि समय-समय पर निरीक्षण किया जा सके कि कही से पानी तो नही चू रहा है।

मुख्य बांध (जो पक्का है) के उत्तर और दक्षिण की ओर दो बगलू बांध बनाए गए हैं जिनका सामना तो पक्का है परन्तु आधार मिट्टी का है।

इन बांधो का काम पानी को जलाशय की बगलो के इधर-उधर जाने मे रोकना है, इसी प्रकार दो बगलू दीवारे हैं जिनकी लम्बाई क्रमश 1,067 मीटर और 1,219 मीटर है। ये दीवारे जलाशय के तटो का काम करती है ताकि बाढ के रूप मे पानी बिल्कुल भी व्यर्थ न जावे।

मुख्य नहर, जिसमे चूना और ककरीट लगा है, 22 5 किलोमीटर लम्बी है। यह नहर लगभग 400 क्यूमेक पानी ले जाती है। इसके अतिरिक्त चार सिचाई नहरो और उनकी शाखा नहरो की कुल लम्बाई 193 कि० मी० है। इन नहरो के कमाण्ड मे लगभग 45 हजार हैक्टर भूमि आती है और 18 हजार हैक्टर भूमि का वार्षिक सिचाई के औसत का अनुमान है।

जवाई योजना मे लगभग 3 करोड की पूंजी लगी है। यह परियोजना सन् 1957 मे पूरी हुई थी।

जवाई परियोजना की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमे अधिकतर स्थानीय सामान (Material) और स्थानीय श्रम (Labour) का ही उपयोग हुआ है। इसमे बहुत कम यन्त्रो का उपयोग किया गया। लगभग दो हजार मजदूरो ने प्रतिदिन दो पारियो (Shifts) मे काम करक इस योजना को पूरा किया।

अब पानी जैसे शुष्क क्षेत्र मे रबी की फसले उगाई जाने लगी हैं। इस परियोजना का अधिक लाभ जोधपुर डिवीजन के पाली, जालोर और सिरोही इत्यादि अरावली के पश्चिम की ओर स्थित जिलो को होगा।

राजस्थान नहर परियोजना

तीस मार्च का दिन राजस्थान के लिए सदैव स्मरणीय रहेगा। 30 मार्च, 1949 को राजपूताना के रजवाडो को मिलाकर राजस्थान की स्थापना की गई। 30 मार्च, 1958 को राजस्थान नहर का उद्घाटन हुआ। राजस्थान के लिए आर्थिक क्षेत्र मे यह महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन का सूत्रपात है। राजस्थान नहर भारतवर्ष की शायद ससार की भी) सबसे लम्बी सिचाई नहर होगी। यह पजाब मे हरिके स्थान से राजस्थान के जैसलमेर जिले मे रामगढ तक जाएगी।

राजस्थान नहर सतलज और व्यास नदियो के सगम स्थल पर बने हरिके बैरेज (Harike barrage) से निकलती है। बैरेज से 177 कि० मी० तक यह

नहर पंजाब राज्य में बहकर राजस्थान में प्रवेश करेगी । इस नहर से पंजाब में सिचाई नही की जायगी । राजस्थान नहर की कुल लम्बाई (पूरी होने पर) 681 किलोमीटर होगी ।

राजस्थान नहर को दो भागो मे बाँटा गया है —

(क) राजस्थान फीडर जो 216 किलोमीटर लम्बी होगी और जिसमें से पहले 177 किलोमीटर पंजाब मे होंगे, तथा

(ख) राजस्थान नहर 468 किलोमीटर लम्बी पूरी राजस्थान मे ।

आरम्भ में राजस्थान नहर को जल रावी और व्यास नदियो से मिलेगा । व्यास नदी पर पोग बाँध बनाया जा रहा है जिसमे जल द्वारा पूर्ति बढाई (Supplement) जा सकेगी । बाँध का निर्माण कार्य 1960-61 मे आरम्भ हुआ था और 8 साल मे पूरा होने की आशा है । बाँध से 2·5 लाख किलोवाट पनबिजली मिलेगी ।

राजस्थान नहर योजना के मूल रूप मे यह सोचा गया था कि 37 किलोमीटर की दूरी के भाग मे नहर मे कंकरीट लाइनिंग रहे क्योंकि 'राजस्थान नहर के क्षेत्र मे प्रत्येक बूँद जल का मूल्य उतनी ही तौल स्वर्ण के बराबर है ।" अब यह निश्चय हुआ है कि फीडर और नहर में पूरी लम्बाई मे कंकरीट लाइनिंग हो ।

राजस्थान नहर बीकानेर डिवीजन की हनुमानगढ़, अनूपगढ, रायसिंह नगर और बीकानेर तहसीलो, और जोधपुर डिवीजन मे जैसलमेर जिले की रचना जैसलमेर और रामगढ़ तहसीलो की सिंचाई करेगी । इन क्षेत्रो मे जमीन की सतह के नीचे 90 से 120 मीटर की गहराई पर पानी मिलता है और पीने के लिए भी पानी की बहुत तगी रहती है । इस भाग मे वर्षा का औसत 100 से 200 मिलीमीटर वार्षिक है । अभी तक यह क्षेत्र बहुत उजाड़ और अकालग्रस्त रहा है ।

राजस्थान नहर अन्ततोगत्वा राजस्थान की लगभग 16 लाख हैक्टर भूमि की सिचाई करेगी । प्रथम चरण मे स्थायी रूप मे केवल चार लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई होगी और शेष भाग की अस्थाई सिचाई होगी । द्वितीय चरण में रावी और व्यास नदियो पर मानसून के अतिरिक्त पानी को एकत्रित किया जायगा और तब सम्पूर्ण क्षेत्र मे स्थायी सिंचाई हो सकेगी ।

राजस्थान नहर योजना के मुख्य लाभ निम्नलिखित होंगे—

(1) राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी भाग की शुष्क वीरान भूमि लहलहाते हुए मैदान में बदल जाएगी। परिणामस्वरूप खाद्यान्न, कपास और तिलहन का भारी मात्रा में उत्पादन होने लगेगा।

(2) इन क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ेगी और कच्चे माल का उत्पादन होने के कारण नए व्यवसायों का विकास होगा।

(3) भाकरा-नंगल से जल-विद्युत इस क्षेत्र में भी मिलेगी और बिजली से जगमगाती व्यापारिक मण्डियों का विकास होगा। अनुमान है कि तीन बड़ी-बड़ी मण्डियां जिसमें तीस हजार प्रति मण्डी में जनसंख्या होगी और 11 छोटी मण्डियां विकसित होंगी जिसमें प्रत्येक में 10,000 जनसंख्या होगी। इस भाग में परिवहन और संदेशवाहन साधनों का भी विकास होगा।

(4) नहर, सड़कों और सम्बन्धित कार्यों में 50 हजार से भी अधिक व्यक्तियों और 20,000 गधों को रोजगार मिलेगा।

(5) बढ़ते हुए रेगिस्तान की रुकावट सरल हो जाएगी।

(6) पाकिस्तान की सीमा पर वन लगाए जाएंगे।

(7) मुख्य और अन्तिम लाभ यह होगा कि इस नहर में नौकानयन भी होगा। नहर की चौड़ाई 41 मीटर और गहराई लगभग 6 मीटर होगी। इस नहर द्वारा अन्ततोगत्वा दिल्ली को कांदला से जोड़ने का प्रस्ताव है।

राजस्थान नहर की लागत अनुमानतः 1,200 करोड़ रुपये होगी। इसके प्रथम चरण के पूरा होने में लगभग 12 वर्ष लगेंगे (अर्थात् 1969-70 तक पूरी होगी)। इस नहर का लाभ लगभग 50 लाख व्यक्तियों को होगा। दूसरा चरण 1977-78 तक पूरा होगा।

11 अक्टूबर, 1961 को राजस्थान नहर से हनुमानगढ़ में सिंचाई के लिए पानी मिलना आरम्भ हुआ। सूरतगढ़ ब्रांच और रावतसर डिस्ट्रीब्यूटरी पूरी होगई हैं।

कोयण परियोजना

कोयण परियोजना के प्रथम चरण का उद्घाटन जनवरी, 1954 में हुआ था। यह महाराष्ट्र की महत्वपूर्ण नदी घाटी परियोजना है। इसके अन्तर्गत कोयण नदी के आरपार एक 63 मीटर ऊँचे बांध का निर्माण सम्मिलित है

और एक सुरग के द्वारा नदी के पानी को मोडा जायगा ताकि 478 मीटर का प्रपात हो सके। जमीन के नीचे (Underground) शक्ति-गृह मे प्रत्येक 60,000 किलोवाट की चार इकाइयां होगी जिनमे बम्बई, पूना और समीपवर्ती क्षेत्रों को जल-विद्युत प्राप्त होगी।

गण्डक परियोजना

गण्डक सिंचाई तथा शक्ति परियोजना के सम्बन्ध में भारत सरकार और नैपाल सरकार मे अन्तर्राष्ट्रीय समझौता 4 दिसम्बर, 1959 को हुआ था। इस परियोजना का लाभ बिहार और उत्तर प्रदेश को होगा और नैपाल को भी।

गण्डक परियोजना के अन्तर्गत गण्डक नदी के आरपार भैंसालोटन स्थान पर त्रिवेनी नहर हैण्ड रेग्यूलेटर से 304 मीटर नीचे 838 मीटर लम्बा सिंचाई बांध बनेगा और उसके साथ एक सडक और रेलवे पुल भी। इसमे दो नहर प्रणालियाँ होगी—(1) पूर्वी नहर प्रणाली, तथा (2) पश्चिमी नहर प्रणाली। मुख्य पश्चिमी नहर के 12 किलोमीटर पर 15 हजार किलोवाट स्थापित क्षमता का एक शक्ति-गृह बनेगा जो बाद मे नैपाल को उपहार मे दिया जायगा।

परियोजना की लागत लगभग 52 करोड रुपए होगी।

गण्डक परियोजना देश की अन्य परियोजनाओ की अपेक्षा सस्ती होगी और पूरी क्षमता तक सिंचाई का विकास होने पर पूँजी पर 7½ प्रतिशत से अधिक प्रतिवर्ष प्रतिफल Return) मिलने की आशा है। कुल मिलाकर इस परियोजना से 15 लाख हैक्टर से अधिक भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इससे बिहार, उत्तर प्रदेश और नैपाल के घने बसे पिछड़े प्रदेशो की उन्नति होगी। यह परियोजना भारत-नैपाल मैत्री और सहयोग का दूसरा ज्वलन्त प्रतीक है (पहला कोसी परियोजना के रूप मे था)।

गण्डक बैरेज की आधार शिला नैपाल के महाराजा महेन्द्र के द्वारा भैंसालोटन (अब वाल्मीकि नगर) मे स्व० नेहरू जी की उपस्थिति मे 4 मई 1964 को रखी गई थी। इससे पहले ही कुछ प्रारम्भिक कार्य, जैसे, 48 किलोमीटर पक्की सडक बागाहा रेलहैड से वाल्मीकि नगर तक) का और बागाहा पर स्टोर यार्ड का निर्माण हो चुका था।

शक्ति-गृह वन रहा है और कई नहरो का जाल बिछाया जा रहा है। गडक वैरेज और उसकी नहरो का वितरण-प्रणाली समेत निर्माण 1967-68 तक पूरा होने की आशा है।

संक्षेप

नदियो का पानी, जो समुद्र में व्यर्थ चला जाता था और वाढो से जो हानियाँ होती थी उन्हे रोककर उस पानी को वहु-उद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाओ के द्वारा उपयोगी बनाया जायगा। इन परियोजनाओ के प्रमुख उद्देश्य (1) सिंचाई, (2) जल-विद्युत का विकास, (3) बाढो का रोकना, (4) नौकानयन, (5) मछलियो का पालन और (6) मनोरंजन इत्यादि हैं।

इन परियोजनाओ के द्वारा देश की खाद्य-समस्या बहुत कुछ हल होने की आशा की जाती है। बाढो से होने वाले अकाल रुक जायेंगे, उद्योगो और व्यवसायो की उन्नति होगी और देश की समृद्धि में सन्तोषजनक वृद्धि हो सकेगी।

प्रश्न

1. बहु-उद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाओ के आर्थिक लाभो का अनुमान कीजिए। किसी एक बहु-उद्देशीय घाटी परियोजना का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. भारतवर्ष मे जल-विद्युत के विकास का क्या महत्त्व है ? एक मानचित्र मे अङ्कित कीजिए— (अ) वे स्थान जहाँ जल-विद्युत का विकास हुआ है, (आ) नदियो के बेसिन जहाँ विकास के लिए योजनाएँ हैं।
3. निम्नलिखित मे से किसी एक का वर्णन कीजिए—
   (क) भाकरा-नगल परियोजना।
   (ख) हीराकुंड बाँध परियोजना।
   (ग) दामोदर घाटी परियोजना।
   (घ) चम्बल परियोजना।
   (ङ) राजस्थान नहर।

अध्याय 7

प्राकृतिक वनस्पति, वन और वनों से मिलने वाले पदार्थ

(Forests and Forest Products)

जलवायु की विभिन्न दशाओं और अन्य कारणों से भूमि पर अनेक प्रकार के पेड़-पौधे प्राकृतिक रूप से उग आते हैं — इन्हें वनस्पति कहते हैं। वनस्पति भूमि के ऊपर उगने वाली प्राकृतिक सम्पत्ति है।

भिन्न-भिन्न प्राकृतिक प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पति पाई जाती है। इसका कारण यही है कि जलवायु का वनस्पति के ऊपर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अधिक गर्मी और अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में ही दुनिया के घने जंगल पाये जाते है। घास के मैदान वहीं पाये जाते हैं जहां नमी कम परन्तु लगातार मिलती रहती हो। वर्षा-शून्य अधिक गर्म और अधिक ठण्डे प्रदेशों में मरुस्थलीय वनस्पति ही पाई जाती है। पहाड़ी, पठारी और मैदानी वनस्पति में भी अन्तर होता है। पहाड़ों पर विभिन्न ऊंचाइयों पर जलवायु की दशाएं बदल जाने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पति पाई जाती है। इसके अतिरिक्त सूर्य का प्रकाश और हवाओं का भी वनस्पति पर प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि किसी देश की जलवायु और प्राकृतिक दशा जान लेने पर उस देश की वनस्पति का अनुमान लगाया जा सकता है।

भारत की जलवायु और प्राकृतिक रचना का वर्णन किया जा चुका है। भारतवर्ष का दक्षिणी भाग उष्ण कटिबन्ध में है और उत्तरी भाग समशीतोष्ण कटिबन्ध में, परन्तु देश के अधिकतर भाग में उष्ण कटिबन्धीय वनस्पति पाई जाती है। वर्षा के वितरण का भारतवर्ष की वनस्पति पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष में मैदान, पठार और 8,800 मीटर ऊंचाई तक के पहाड़ भी पाये जाते हैं। पहाड़ों पर वर्षा के परिमाण और

विभिन्न ऊँचाइयो के अनुसार वनस्पति भी बदलती जाती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष मे किस प्रकार प्राकृतिक दशाए और जलवायु की दशाएँ विभिन्न हैं, उसी प्रकार वनस्पति भी अनेक प्रकार की पाई जाती हैं।

भारतवर्ष की बढ़ती हुई जनसख्या का वनस्पति पर प्रभाव

भारतवर्ष की जनसख्या दिनो-दिन बढ़ती जा रही है। इस बढ़ती हुई जनसख्या को भोजन और रहने की जगह की आवश्यकता होना स्वाभाविक ही है। परिणाम यह हुआ है कि भारतवर्ष के अधिकतर भाग मे अब प्राकृतिक वनस्पति नही पाई जाती है। मैदानो के जगल खाद्यान्न उगाने के लिए काट कर साफ कर लिये गये है। पठारी जंगल कृषि के अतिरिक्त गमना-गमन की सुविधाओ परिवहन के साधनो के निर्माण आदि के लिए काटे गये है। पहाडी जातियो ने जहाँ कृषि करना सम्भव प्रतीत हुआ है लगभग 2 400 मीटर ऊँचाई तक स्थान-स्थान पर जगल जला-जला कर नष्ट कर दिये है। फर्नीचर, इमारत बनाने तथा चारे-ईंधन के लिए भी जंगलो को काटा गया है। इस प्रकार जगल कटते गये और इसका जमीन पर बुरा प्रभाव पडा। विदेशी सरकार ने इस ओर कोई महत्वपूर्ण ध्यान नही दिया। केवल सन् 1863 के पश्चात ही इस दिशा मे कुछ कार्य हुआ है। सन् 1935 मे प्रान्तीय सरकारो की देख-रेख मे जगलात विभाग के अन्तर्गत वैज्ञानिक ढग पर कार्य हो रहा है। वनो को नष्ट होने से बचाने के लिए पिछले कुछ वर्षों मे वृक्षारोपण की ओर भी ध्यान गया है।

उपर्युक्त विवेचन मे यह भली-भाँति विदित हो सकता है कि भारतवर्ष मे वनो को साफ करके कृषि कर ली गई है अथवा अन्य प्रकार से काट लिया गया है। चित्र 21 का अर्थ यह समझा जाना चाहिए कि सकेतो के अनुसार दिए हुए क्षेत्रो मे पहाडी ढालो पर एव अन्यत्र पाये जाने वाले वृक्ष प्राय. समान कोटि के हैं।

भारतवर्ष की मुख्य वनस्पति

भारतवर्ष मे घास के मैदान प्राय नही पाये जाते। वर्षा के दिनो मे पहाडियो पर तथा यत्र-तत्र घास अवश्य हो जाती है। 2,000 मिलीमीटर से अधिक वर्षा वाले प्रदेशो मे पहाडियो पर सदाबहार वन पाये जाते है। हिमालय के पूर्वी भाग मे, जहाँ वर्षा अधिक होती है, असम की पहाडियो पर और पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढालो पर सदाबहार वन प्रमुख हैं। 1,000 से 2,000

मिलीमीटर तक की वर्षा वाले प्रदेशो में पतझड़ वाले वन, जिन्हे मानसूनी जगल भी कह सकते है, पाये जाते हैं । मानसूनी जगल हिमालय के दक्षिणी ढालो देश के पश्चिमी भागो तथा दक्षिणी पठार के उत्तर-पूर्वी भाग मे पाये जाते हैं । जहाँ 1,000 मिलीमीटर से भी कम वर्षा-होती है वहाँ कांटेदार लम्बी जड़ वाले वृक्ष और झाडियाँ पाई जाती हैं जो अपनी नमी सुरक्षित रख सकें । ये शुष्क जगल दक्षिणी पजाब, राजस्थान के अधिकतर भाग और गुजरात मे पाये जाते हैं । नदियो के डेल्टो और समुद्र तटों पर भिन्न प्रकार की वनस्पति पाई जाती है । गगा और ब्रह्मपुत्र के डेल्टा पर सुन्दर वन प्रसिद्ध हैं । पहाड़ों पर ऊँचाई एव तदनुसार जलवायु की बदलती हुई दशाओ के कारण वनस्पति भी विभिन्न प्रकार की पाई जाती है । हिमालय के निम्न पश्चिमी भाग मे मानसूनी जंगल और अधिक वर्षा वाले पूर्वी भाग मे सदाबहार जगल पाये जाते हैं । दक्षिण मे नीलगिरि और कार्डमम की पहाडियो पर 1,500 मीटर की ऊँचाई तक लगभग इसी प्रकार की वनस्पति पाई जाती है । हिमालय पर 100 से 1,500 मीटर ऊँचाई तक शीतोष्ण कटिबन्धीय पर्वतीय जगल पाये जाते हैं जिनमे देवदार और बलूत के वृक्ष मुख्य हैं । 1,500 से 2 100 मीटर ऊँचाई तक नोकदार पत्ती के जगल (Coniferous forests) पाये जाते हैं जिनमे चीड, सनोवर इत्यादि के वृक्ष मुख्य हैं । पर्वतो की अधिक ऊँचाइयो पर अधिक ठडा और शुष्क होने के कारण केवल शुष्क वनस्पति— झाडी इत्यादि ही उग सकती है । भारतवर्ष मे बाँस के जगल भी मुख्य हैं । बाँस अनेक प्रकार के और देश के विभिन्न भागो मे पाये जाते हैं ।

भारतवर्ष मे वनो का क्षेत्रफल

भारतवर्ष में लगभग 728 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे वन पाये जाते हैं । वनो का सबसे अधिक क्षेत्रफल मध्य प्रदेश मे है ।

देश मे वनो का क्षेत्रफल भूमि के क्षेत्रफल का लगभग 22 4 प्रतिशत है । 12 मई, 1952 ई० के वन-नीति प्रस्ताव (Forest Policy Resolution) के अनुसार वनो का क्षेत्रफल कुल भूमि के क्षेत्रफल का एक-तिहाई होना चाहिये ।

भारत के लगभग 728 हजार वर्ग किलोमीटर वनो मे से लगभग 24,600

वर्ग-किलोमीटर मे नुकीली पत्ती के वन और शेष मे चौडी पत्ती के वन हैं जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटरो मे)
(क) नुकीली पत्ती के वन	24,665
(ख) चौडी पत्ती के वन	
(1) साल	1,06 237
(2) सागौन	57 993
(3) अन्य	5,38,626
	7,27,521

भारतीय वनों का वर्गीकरण[1]

सरकारी तौर पर नियन्त्रण की दृष्टि से भारतीय वनो को तीन भागो मे बाँटा गया है—

	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)
(1) सुरक्षित वन (Reserved forests)	3,57,565
(2) रक्षित वन (Protected forests)	1,62,143
(3) अन्य वन (Unclassed forests)	2,07,813
कुल	7,27 521

पहली श्रेणी के वनो की देख-रेख अधिक ध्यानपूर्वक की जाती है। उनको प्रयोग करने वाले व्यक्तियो से सरकार निश्चयपूर्वक उनके अधिकार, सीमा इत्यादि का उल्लेख करती है। दूसरी श्रेणी के वनो की सीमा, अधिकार इत्यादि पर विशेष ध्यान नही दिया जाता और तीसरी श्रेणी के वनो का प्रबन्ध ढगपूर्वक नही किया जाता— केवल नियन्त्रण मात्र ही होता है।

दूसरा वर्गीकरण नमी और वृक्षो की किस्म के आधार पर—नमी और

---

1 सन् 1894 मे जगल को चार भागों मे बाँटा गया था—(1) जलवायु और भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वन, (2) मूल्यवान लकडी वाले वन, (3) छोटे वन, (4) पशुचर भूमि। यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नही था।

वृक्षों की किस्म के आधार पर भारतीय वनो को पाँच मुख्य भागो में बाँटा जाता है—

(1) सदाबहार वन—ये वन अधिक वर्षा पाने वाले पर्वतीय ढालो और पहाड़ियो पर पाये जाते हैं। इनकी लकडी कडी होती है। चोटी पर घने और सायादार वृक्ष होते है। इनकी ऊँचाई 30 मीटर और अधिक तक होती है। ये जंगल पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढालो पर अर्थात् महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर और केरल के पश्चिमी भागो मे, निम्न पूर्वी हिमालय और असम की पहाडियो पर मुख्य रूप से पाये जाते हैं।
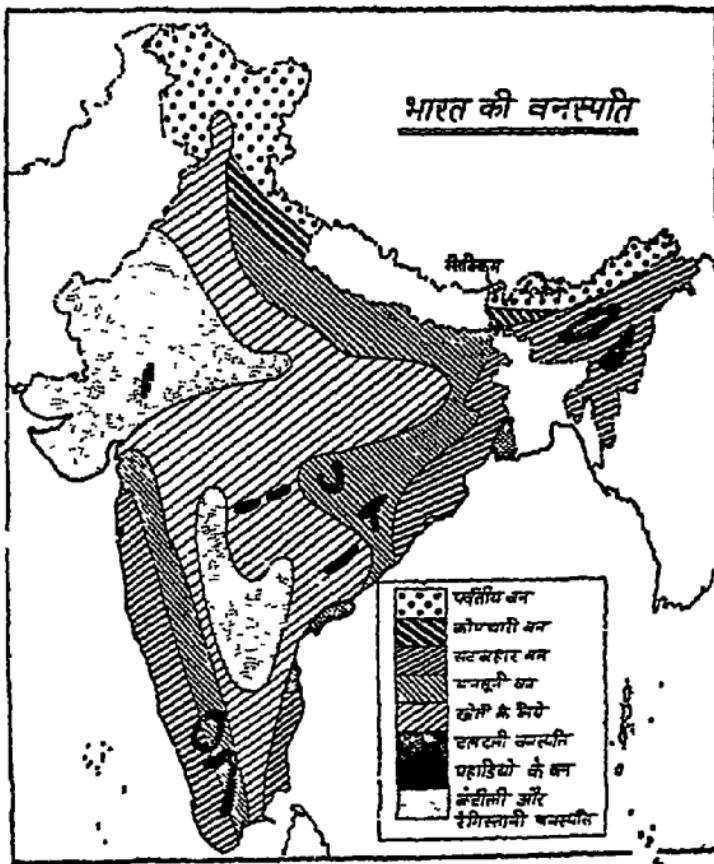
चित्र 21—भारत की वनस्पति के विभाग

(2) **मानसूनी वन**—इन्हे पतझड़ वाले वन भी कहते हैं क्योंकि इनमे वृक्ष ष्क ऋतु मे अपने पत्ते छोड़ देते हैं ताकि नमी नष्ट न हो । ये वन अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते है क्योकि इनसे व्यावसायिक दृष्टि से बहुमूल्य लकड़ी प्राप्त होती है। साल और सागौन वृक्ष मुख्य हैं। ये जगल घने नही होते पेडो की ऊँचाई भी अधिक नही होती। निम्न हिमालय और दक्षिणी प्रायद्वीप के अधिकतर भाग मे ये पाए जाते हैं, जहाँ 1,000 से 2,000 मिलीमीटर तक वर्षा होती है।

(3) **शुष्क वन**—जहाँ 1,000 मिलीमीटर से कम वर्षा होती है, वहाँ शुष्क वन पाये जाते हैं जिनमे काँटेदार वृक्ष, बबूल और शमी जिसे छोकर जाँटी और खेजला भी कहते हैं मुख्य वृक्ष हैं। अधिक कम वर्षा वाले भाग मे केवल काँटेदार झाडियाँ (करील इत्यादि) ही पाई जाती हैं। इस प्रकार के वन राजस्थान और दक्षिणी पजाब मे मुख्य रूप मे पाये जाते हैं।

(4) **पर्वतीय वन**—जैसा कि पहले (भारतवर्ष की मुख्य वनस्पति के अन्तर्गत) बताया जा चुका है, पर्वतीय वन ऊँचाई और वर्षा की विभिन्नता के
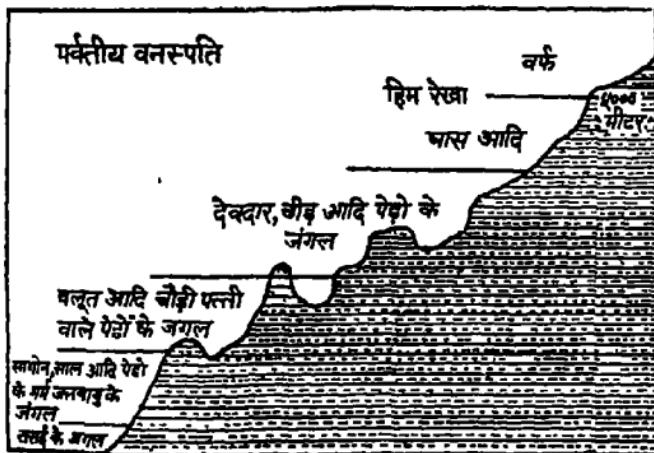
चित्र 22—ऊँचाई पर वनस्पति में परिवर्तन होता जाता है (ऊँचाई के कारण जलवायु में अन्तर पाए जाने से वनस्पति में भी अन्तर पाया जाता है।)

अनुसार विभिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। इनमे वलूत, देवदार, चीड़ इत्यादि के वृक्ष मुख्य हैं।

(5) डेल्टाई वन – ये वन नदियो के डेल्टो पर समुद्र-तट पर पाये जाते हैं, जहाँ ज्वारो के द्वारा नमी मिलती रहती है। इसीलिए इन्हे Tidal forests कहते हैं। गगा और ब्रह्मपुत्र के डेल्टे पर सुन्दरवन तथा महानदी और गोदावरी के डेल्टो के जगल मुख्य हैं।

वनों का महत्व

वन राष्ट्र की असूल्य सम्पत्ति है। वनो का महत्व अत्यधिक है।

(1) वन अपने वातावरण मे नमी वनाए रखते है और इस प्रकार वातावरण मे शुष्कता बहुत कम हो जाती है। इमसे राहगीरो को और पशुओं को गर्मी से बचने के लिए आश्रय मिलता है। वन आंधियों और तूफानो के वेग को रोकते हैं।

(2) वातावरण में नमी होने के कारण नमी से सम्पन्न हवाएँ अपनी नमी उन क्षेत्रो मे छोड़ देती हैं और इम प्रकार वन उन क्षेत्रों मे वर्षा लाते है।

(3) वन बाढो को रोकने का काम भी करते हैं। बहते हुए पानी की गति वृक्षो के द्वारा नियन्त्रित हो जाती है और उसमे अधिक वेग नही रहता। वृक्ष पानी को जडो के द्वारा सोख लेते हैं और पत्तों के द्वारा सॉस लेकर वायुमण्डल मे नमी ला देते है। सोखी हुई नमी पीछे सिंचाई के लिए काम आती है। जहाँ नीचे जमीन मे पानी होता है वही कुएँ और ट्यूब-वैल हो सकते हैं। यदि पहाडी ढालो के वृक्षो को काट दिया जाय तो वहाँ की चट्टानें कट-कटकर नदियो के बहाव के साथ आकर मैदानो मे नदियो को उथला कर देती हैं और बाढें शीघ्र आ जाती हैं इसलिए वनो का महत्व स्पष्ट है।

(4) अब यह भली प्रकार समझ लिया गया है कि मिट्टी का कटाव (Soil erosion) रोकने के लिए वन लगाना ही सर्वोत्तम उपाय है। वृक्षो की जडे मिट्टी को अपनी ओर आकर्षित करती हैं और इस प्रकार उपजाऊ मिट्टी क्षरित होने से बच जाती है। रेगिस्तान को बढने से रोकने के लिए राजस्थान सरकार ने वृक्ष रोपने की ओर अधिक ध्यान दिया है।

(5) वन देश को प्राकृतिक सौन्दर्य प्रदान करते हैं। वनो के शान्तिमय वातावरण मे भारतवर्ष के ऋषियो और मुनियो ने साधना करके इसी देश

का नही समस्त ससार के कल्याण का मार्ग दिखाया है। आज भी हजारो मील से लोग नगरो की अशान्तिमय भीड-भाड से कुछ समय निकालकर वनो मे शान्तिरक्षा खोजने के लिए जाते है।

(6) वनो के द्वारा देश की जनसख्या के बडे भाग को रोजगार मिलता है। देश की रक्षा मे भी वनो का महत्वपूर्ण हाथ है।

उपर्युक्त अप्रत्यक्ष परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण लाभो के अतिरिक्त कुछ प्रत्यक्ष लाभ भी होते हैं।

(7) वनो मे अनेक प्रकार के उद्योगो के लिए कच्चा माल मिलता है, जैसे—दियासलाई उद्योग कागज उद्योग, लाख उद्योग, फर्नीचर उद्योग, रबड उद्योग इत्यादि।

(8) कई उद्योगो के लिए कच्चा माल मिलने के अतिरिक्त वनो मे कई प्रकार के पदार्थ मिलते हैं जिनका उपयोग की दृष्टि से व्यापार की दृष्टि मे और परिवहन के साधनो की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है।

(9) वनो से सरकार को प्रति वर्ष करोडो रुपयो की आमदनी होती है।

(10) वनो मे अनेक प्रकार के जीव-जन्तु मिलते है जिनसे उनका अध्ययन सम्भव होता है। कुछ लोग शिकार खेलते है और जीव-जन्तु मनोरंजन का साधन जुटाते हैं।

कृषि के लिए वनो से लाभ

वनो से कृषि को अनेक प्रकार से लाभ पहुँचता है। मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं –

(1) वन वर्षा लाने मे महत्वपूर्ण योग प्रदान करते हैं अतः कृषि के लिए नमी मिलती है।

(2) वन तूफानो और बाढो के वेग को कम करके कृषि को हानि से बचाते हैं।

(3) जडो के द्वारा अतिरिक्त पानी को सोखकर वृक्ष उसे भूमि की सतह के नीचे जमा करने मे सहायता पहुंचाते हैं जो कुओ और नलकूपो के द्वारा सिचाई के काम मे लिया जा सकता है।

(4) वन मिट्टी के कटाव को रोकते हैं जिससे कृषि योग्य भूमि बर्बाद नही होने पाती।

(5) वृक्षों की पत्तियों स भूमि को उर्वरता मिलती है।

(6) कृषको को वनो से पशुओ के लिए चारा मिलता है तथा कृषि के औजारो के लिए लकडी मिलती है।

(7) कृषि मे लगी जनसख्या को वनो से सहायक धन्धा मिलता है जिससे वे अपनी आय बढा सकते हैं।

वस्तुत कृषि की रक्षा और उन्नति के लिए वनो का महत्व अत्यधिक है। वनो को कृषि का ही अग माना जाता है।

वनो से मिलने वाले पदार्थ

वनो से मिलने वाले पदार्थों को हम दो भागो मे बाँट सकते हैं—(क) मुख्य पदार्थ, और (ख) गौण पदार्थ।

(क) मुख्य पदार्थ—वनो से मिलने वाले मुख्य पदार्थों मे इमारती लकडी और लकडी का ईंधन मुख्य है। भारतवर्ष से कई प्रकार की लकडी मिलती है जिनमे साल, देवदार, शीशम, सागौन, चीड, बबूल, नीम, आम, सनोवर और शाहबलूत के वृक्ष मुख्य हैं। वैसे कई प्रकार की लकडी बाजार मे बिकने आती हैं और प्रत्येक प्रकार की लकडी की कई किस्मे होती है।

लकडी के ईंधन का महत्व इसलिए अधिक है कि भारतवर्ष के ग्रामो मे गोबर को ईंधन की तरह जलाया जाता है जब कि उसका महत्व खाद की तरह अधिक है। इसके लिए आवश्यक है कि ईंधन की लकडी उन्हे उचित मूल्य पर जलाने को दी जाय।

इमारती लकडी के अतिरिक्त अन्य प्रकार की लकडी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। परिवहन के साधनो के विकास मे इस लकडी का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। बसो मे, ट्रामो मे, रेलगाडियो मे, जहाजो मे तथा परिवहन के अन्य साधनो मे भी लकडी का प्रयोग होता है। रेल-मार्ग बनाने के लिए स्लीपरो का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त लकडी से अनेक प्रकार का फर्नीचर बनाया जाता है और फर्नीचर उद्योग काफी विस्तृत हो चुका है। कृषि मे काम आने वाले अनेक प्रकार के औजार लकडी से बनते हैं।

(ख) गौण पदार्थ—गौण वन पदार्थ आर्थिक दृष्टि से गौण नही कहे जा सकते।

मुख्य गौण वन पदार्थ ये हैं—(1) कई प्रकार की जडी-बूटियां और औषधियां मिलती हैं; (2) कुछ पौधे विषैले होते हैं जिनसे खेती, कागज और कपडो के कीटाणुओ को नष्ट किया जा सकता है; (3) खाद्य-पदार्थों की दृष्टि से भी वनो का महत्व कम नही है। हमारे प्राचीन साधु तो कन्द, मूल और फलो के ऊपर ही जीवन निर्वाह करते थे। फलो मे पौष्टिक तत्व अधिक होते हैं। आजकल भी हम बेर शहतूत, जामुन, आंवला, कटहल और अखरोट इत्यादि खाते हैं, (4) पशुओ के लिए चारा मिलता है—घास-फूस और पत्तियाँ जानवरो को खिलाई जाती हैं; (5) वनो के कुछ वृक्षो से रेशा मिलता है जिससे कपडा और कृत्रिम रेशम बनाया जाता है - आक, सेमल, वन-कपास, रामबास, ताड और भावर घास रेशा और कपडा बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं; (6) टोकरियां बनाने का सामान भी वनो से मिलता है जिनमे बेंत मुख्य हैं; (7) वनो मे कुछ पदार्थ ऐसे मिलते हैं जिनसे सुगन्धित तेल और इत्र तैयार किये जाते हैं, जैसे चन्दन, मालती, अगर, कपूर, इत्यादि, (8) महुआ, फुलवा, नीम और चीड इत्यादि से तेल निकाला जाता है जो विभिन्न कामो में प्रयोग होते हैं; (9) बैरोजा मिलता है, (10) कुछ पेडो से गोद और लसदार पदार्थ प्राप्त होते हैं, (11) ढाक, हारसिंगार, मजीठी, दारू, हरड, बहेडा इत्यादि से रग बनाये जाते हैं, (12) कुछ पेडो से चर्म-शोधक पदार्थ मिलते है जिनसे टीमरू, आंवला, बबूल, हरड, बहेडा, करोदा के पत्ते, सेन की छाल, साल की छाल, इत्यादि मुख्य हैं; (13) खैर की लकडियो से कत्था बनाया जाता है, (14) कई स्थानो पर वनो के सूखे पेडो को जलाकर लकडी का कोयला तैयार किया जाता है, (15) चीड के पेड से तारपीन का तेल, कागज बनाने की लुग्दी मिलती है, (16) साबुन के लिए कुछ पदार्थ जैसे रीठा, शिकेकाई, रामबांस, काला शिरस की छाल भी वनो से मिलते हैं, (17) लकडी का बुरादा और लकडी की कतरन भी उपयोगी समझे जाते हैं, (18) वनो से चटाइयां, दरियां और आसन इत्यादि बनाने का सामान भी मिलता है—कुशासन कुशा से तैयार किये जाते हैं, (19) बीडी उद्योग मे कुछ पेडो के पत्ते काम मे लाये जाते हैं, (20) वनो की कुछ अच्छी किस्मो की लकडी से बटन बनाए जाते हैं, (21) पत्तियो से बहुमूल्य खाद प्राप्त होता है, (22) धूप आदि हवन-सामग्री मिलती है, (23) कपडो पर चमक

लाने के लिए इमली के वीज और जंगली हल्दी इत्यादि का प्रयोग किया जाता है; (24) वनो से कुछ वहुमूल्य पदार्थ—जैसे शहद, मोम, रेशम, लाख, हाथी-दांत, सीग इत्यादि मिलते हैं, (25) वाँस, सवाई घास और कुछ अन्य प्रकार की घासो से कागज वनाया जाता है।

यदि वनो से इन पदार्थों को ठीक ढग से प्राप्त किया जाय और उनका उचित और वैज्ञानिक ढग पर प्रयोग किया जाय तो वनों से राष्ट्र को समृद्धि-शाली वनाया जा सकता है।

भारतवर्ष के जगलो के उपयोग के मार्ग में सुविधाएं और कठिनाइयाँ

भारतवर्ष मे जगलो का आर्थिक उपयोग (Utilization) किये जाने के लिए कुछ निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त है—

(क) सस्ता श्रम—भारतवर्ष के लोगो का स्तर विदेशो की भाँति वढ़ा हुआ नही है, विशेषत. श्रमिक वग की आवश्यकतायें थोडी ही होती हैं और वे वहुत कम वेतन अथवा मजदूरी पर जगलो मे काम कर सकते है। वे मजवूत और परिश्रमी होते हैं।

(ख) सुन्दर और मूल्यवान लकड़ी—भारतवर्ष के वनो मे वहुत से वृक्षो की लकड़ी अत्यन्त सुन्दर, मजवूत और मूल्यवान मिलती है जिसकी देश-विदेशो मे अधिक माँग है।

(ग) आवागमन के कुछ सुलभ साधन—भारतवर्ष की तेज वहने वाली नदियाँ पर्वतीय तथा अन्य जगलो की कटी हुई लकडी को मैदानो तक वहाकर ले जाने मे सहायक सिद्ध होती हैं। भारतवर्ष के कुछ पशु, जिनमे हाथी, भैसे और वैल मुख्य हैं, इस दृष्टि से वड़े काम के हैं। इनके अतिरिक्त लकडी ढोने के लिए सस्ते मजदूर भी मिल जाते है।

उपर्युक्त सुविधाएँ प्राप्त अवश्य हैं परन्तु कठिनाइयाँ भी कम नही हैं। मजदूरी कम है परन्तु मजदूर अपने घरो को छोडकर दूर नही जाना चाहते अर्थात् उसमे गतिशीलता (Mobility) नही है। कुछ अन्य कठिनाइयाँ ये हैं—

(1) साहस और शिक्षा की कमी—भारतवर्ष के पूँजीपति भारतीय वनो से उद्योग और व्यवसाय चलाने के लिए साहस (Enterprise) नही करना

चाहते; श्रमिक-वर्ग घर नही छोडना चाहता और कुछ ऐसे लोग जो जगल काटते या कटवाते है शिक्षित नही हैं जिसका परिणाम यह होता है कि एक बार काट लेने पर वे जगल नष्ट हो जाते है।

(2) जंगली आक्रमणकारी जानवर—भारतीय जगलो मे जीवन-रक्षा भी कठिन पड़ती है। शेर, चीते, बाघ, तेंदुए और अनेक जगली जानवर मनुष्य पर आक्रमण करने और खा जाने वाले होते हैं। यद्यपि उनका बाहुल्य अब नही रहा है तथापि अब भी वे पाए जाते हैं और भय देने के लिए बहुत हैं।

(3) अस्वास्थ्यकर प्रभाव—जगलो का जीवन स्वास्थ्य पर भी प्राय: बुरा प्रभाव डालता है।

(4) दुगमता—भारतीय जगल प्राय दुर्गम हैं। कुछ जगल घने है और कुछ पर्वतीय जगलो तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। इसके अतिरिक्त यान्त्रिक परिवहन (Mechanical transport) के साधन प्राय. अल्प मात्रा मे ही प्राप्त हैं।

(5) वृक्षो के प्रकारों की बहुलता—कई प्रकार के वृक्ष इकट्ठे पाये जाने से उनका आर्थिक उपयोग करने मे अत्यन्त कठिनाई होती है। उदाहरणार्थ, यदि शीशम और बबूल के पेड़ पास-पास और घने उगे हुए हैं तो शीशम के वृक्षो को काट कर उनको फर्नीचर इत्यादि के लिए प्रयोग करने मे बड़ी असुविधा होती है।

(6) सकुचित बाजार—भारत मे मांग भी विदेशो के समान नही है। केवल धनी लोग ही फर्नीचर का प्रयोग करते हैं। परिवहन के साधनो का भी अभी अधिक विकास नही हुआ जिसमे लकडी का प्रयोग अधिक हो।

इन्ही कारणो से भारतीय जगलो का विदोहन (Exploitation) व्यावसायिक रूप से भली प्रकार नही हुआ।

सरकारी प्रयत्न

जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ मे बताया जा चुका है, विदेशी सरकार ने उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे जगलो की ओर ध्यान देना आरम्भ किया था। बम्बई मे जंगलात की देख-रेख का काम सन् 1919 से प्रान्तीय सरकार के हाथो मे आ गया था। सन् 1935 से, जैसा कि अब भी है, अन्य प्रान्तो मे भी जगलात का कार्य प्रान्तीय सरकारो के हाथ मे आ गया था।

प्रत्येक प्रान्त मे जगलो के सर्किल (क्षेत्र) और उसके विभाग-उपविभाग किये गये हैं जिनकी देख-रेख, व्यवस्था और शासन के लिए अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं।

शिक्षा की कमी को पूरा करने के लिए सर्वप्रथम प्रयत्न देहरादून में सन् 1878 मे एक शिक्षण-सस्था खोलकर किया गया जहाँ सन् 1906 से अनुसंधान भी आरम्भ कर दिया गया। सन् 1912 मे कोयम्बटूर मे भी एक शिक्षा-केन्द्र खुला। जगलात की शिक्षा और अन्वेषण-कार्य के लिए कुछ अन्य कालेज भी खुले। देहरादून इसका केन्द्र है। इस प्रकार पिछली चार दशाब्दियो मे सन्तोषजनक उन्नति हुई है, कई नये अन्वेषण हुए हैं और जंगलो का विकास आवश्यक रूप से करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु अभी बहुत-सा महत्वपूर्ण कार्य शेष है।

सुझाव

विशेषतः निम्नलिखित दिशाओ मे शीघ्र कदम उठाने आवश्यक हैं—

(1) वनो का मनमाने ढंग से प्रयोग रोका जाना चाहिए।

(2) वनो को अकस्मात आग लग जाने से बचाना चाहिए। आग लगने से करोडो रुपयो की सम्पत्ति ही नष्ट नही होती, भविष्य के लिए जो हानि होती है वह भयंकर है।

(3) अनियन्त्रित रूप से पशुओ के चरने पर रोक लगानी चाहिए क्योकि इससे नये छोटे-छोटे उगने वाले पेड़ नही उग पाते, भूमि कड़ी हो जाती है, भू-क्षरण भी होने लगता है और बहुमूल्य घासें, जिनका कागज इत्यादि बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है, नष्ट हो जाती है। पशुओं को चरने देने के बजाय उपयुक्त स्थानो से पशु-पालन के लिए घास काटने के ठेके दिये जा सकते हैं।

(4) पेडो की बीमारियो को रोकने का प्रयत्न किया जाय और पेडो को काटने या उनके सूख जाने से पूर्व अन्य पेड़ लगाये जायें ताकि आगे आने वाली पीढी भी वनो से लाभ उठा सके।

(5) वनो का प्रयोग सुनियोजित ढग पर किया जाय। वनो से चलने वाले उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जाय।

(6) वनो मे मनोरंजन—शिकार खेलने के साधन जुटाए जायें।

(7) परिवहन के साधनो मे विकास किया जाय।

(8) शिक्षा और गवेषणात्मक कार्य में वृद्धि हो। मजदूरों के जीवन स्तर और उनकी सुविधाओ का ध्यान रखा जाय।

(9) वन प्रवन्ध नीति सुदृढ हो और वन सम्पदा मे नियोजित विस्तार हो। वन-महोत्सवो को महत्व दिया जाना चाहिए परन्तु वृक्षारोपण के साथ-साथ आरोपित वृक्षो की रक्षा, वनो की रक्षा का ध्यान रखा जाना चाहिए।

वनो का क्षेत्र बढाने की दिशाएँ ये हैं—

(क) मिट्टी के कटाव के स्थानो पर वन लगाये जाएँ ;

(ख) मरुस्थल को बढाने से रोक के लिए रेगिस्तानी प्रदेश तथा उनकी सीमा पर वनो का विस्तार किया जाय ,

(ग) खाली पहाडियो और असमान धरातल पर वृक्षारोपण करने का प्रयत्न किया जाए,

(घ) नदियो, नहरो, सडको, रेल-मार्गो के दोनो ओर वृक्ष लगाए जाएँ; तथा

(ङ) खेतो की सीमाओ पर आम, शहतूत इत्यादि उपयोगी वृक्ष लगाए जाएँ।

आयोजनाओं मे वनों का विकास

प्रथम योजना-काल (1951-56) मे विभिन्न राज्यो मे निम्न दिशाओ मे कदम उठाए गये—

(1) 30 हजार हैक्टर से अधिक भूमि मे नए वन लगाये गए। वनमहोत्सवो द्वारा इस दिशा मे अधिक कार्य हुआ।

(2) वन-क्षेत्रो में आवागमन का विकास— लगभग 4,800 किलोमीटर सडको का निर्माण और सुधार किया।

(3) लगभग 81 लाख हैक्टर वनो को निजी अधिकार से सरकारी अधिकार और नियन्त्रण मे लिया गया।

इसके अतिरिक्त वन-प्रबन्ध की ओर भी अधिक ध्यान दिया गया।

केन्द्रीय सरकार ने राज्यो मे दियासलाई के लिए उपयुक्त वृक्षो मे वृद्धि करने के लिए कदम उठाए और अनुमान है कि इससे काफी वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा, अनुसन्धान इत्यादि मे विकास किया और जगली जीव-जन्तुओ की रक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाए।

द्वितीय योजना-काल (1956-61) में प्रथम योजना के कार्यों को चालू रखा गया और निम्न दिशाओं मे भी कार्य किया गया—

1. नए वन लगाना, वनो मे सुधार और विस्तार;

2 व्यापार और औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वृक्ष लगाना;

3. उत्पादन मे वृद्धि के लिए आवश्यक तरीको का प्रयोग और वनों से मिलने वाली उपज को सुलभ करना,

4 जगली जीव-जन्तुओं की सुरक्षा;

5. वनो मे कमचारियों और श्रमिकों की दशाओं में सुधार;

6. वन सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्य की गति में वृद्धि ;

7. प्रबन्धक (टैकनीकल) कर्मचारी सुलभ करना; और

8 देश मे वनों में विकास-योजनाओ को क्रियान्वित करने के लिए केन्द्रीय सगठन और निर्देशन कार्य।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में वन सम्बन्धी कार्यक्रम

तीसरी पचवर्षीय योजना मे नए वन लगाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग 2,83,000 हैक्टर क्षेत्र में सागौन, दियासलाई के उपयोग की लकड़ी बांस, वाटल और कजुवरिना आदि के वृक्ष लगाये जायेंगे। इसके अलावा 1,21,000 हैक्टर से अधिक क्षेत्र मे जल्दी बढने वाले इमारती लकडी के वृक्ष लगाने का कार्यक्रम भी शुरू किया जायगा। अनुमान है कि तीसरी योजना मे 5 लाख हैक्टर क्षेत्र मे वन लगाने का काम होगा।

लगभग 111 हजार वर्ग किलमीमीटर क्षेत्र मे सर्वेक्षण और सीमांकन का काम करने का प्रस्ताव है। जिन क्षेत्रों का सर्वेक्षण और सीमाकन पहले हो चुका है, उनमें पुनर्वास का काम बढाकर 243 हजार हैक्टर में किया जायगा।

देहरादून मे वन-अनुसधान सस्थान मे होने वाले काम को विस्तृत करने के लिए तीन प्रादेशिक अनुसंधान-केन्द्र खोले जायेंगे।

वनो के काम करने वाले कर्मचारियो की सहकारी समितियाँ बनाने और उनको उचित रियायतें देने का प्रस्ताव है। राज्यों की योजनाओं में इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि इस वर्ग के कर्मचारियों को आवास, डाक्टरी सहायता, पीने के पानी और प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ दी जाएँ।

संक्षेप

पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से उगने वाले पेड़-पौधों को वनस्पति कहते हैं। जलवायु (वर्षा, सूर्य का प्रकाश और हवाएं इत्यादि) का वनस्पति के ऊपर गम्भीर प्रभाव पड़ता है; प्राकृतिक दशा का जलवायु की दशाओं पर प्रभाव पड़ने के कारण वनस्पति पर भी आवश्यकीय प्रभाव होता है।

भारतवर्ष में जनसंख्या की वृद्धि का यह परिणाम हुआ है कि अब देश मे प्राकृतिक वनस्पति की कमी हो गई है। विकास की ओर भी सरकार का ध्यान गया है।

भारतवर्ष में अधिक वर्षा वाले पहाडी स्थानों पर सदाबहार जगल 1,000 से 2 000 मिलीमीटर तक वर्षा वाले स्थानो मे प्राय मानसून जगल, 1,900 मिलीमीटर से कम वर्षा वाले स्थानो मे शुष्क जगल और पर्वतों की ऊँचाइयो पर पर्वतीय जगल पाये जाते है। बांस के जगल भी महत्वपूर्ण है। डेल्टाई जगलो मे सुन्दर वन प्रमुख हैं। असम मे वनो का क्षेत्रफल भारत मे सब राज्यो से अधिक है।

सस्ता श्रम, सुन्दर और मूल्यवान लकडी और आवागमन के सुलभ साधन कुछ ऐसी सुविधाएं है जो भारतवर्ष को प्राप्त है, परन्तु साहस और शिक्षा की कमी, जंगली जानवर जगलो की अस्वास्थ्यकर जलवायु और दुर्गमता, वृक्षो के प्रकारो की बहुलता और सकुचित बाजार इत्यादि के कारण भारतीय जगलो का विदोहन (Exploitation) भली प्रकार नही हो सका है। सरकार और विविध शिक्षा-सस्थाओ ने उचित दिशा मे प्रयत्न किये है।

वन राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति है। अप्रत्यक्ष रूप से वनो के कई लाभ हैं—(1) वातावरण को नम रखना, (2) वर्षा लाना (3) बाढ रोकना, 4 सिचाई के लिए भूमि के अन्तर्गत पानी जमा करना, (5) भू-क्षरण रोकना, (6) प्राकृतिक सौन्दर्य, (7) रोजगार देना। प्रत्यक्ष लाभो मे (अ) मुख्य पदार्थ, तथा (आ) गौण पदार्थों की प्राप्ति, और (इ) सरकार की आमदनी है। मुख्य पदार्थ इमारती

लकड़ी, ईंधन इत्यादि हैं। गौण पदार्थ अनेक और अत्यधिक आर्थिक महत्व के होते हैं।

प्रश्न

1. 'भारतवर्ष में जंगलों के वितरण पर मुख्यतया वर्षा के वितरण का प्रभाव पड़ा है।' उदाहरणों सहित समझाइए।
2. भारतवर्ष के वनों का वर्गीकरण कीजिए। उनका अन्तर स्पष्ट करते हुए बताइए कि भारतवर्ष के वनों का कहाँ तक उपयोग हो सकता है?
3. भारतवर्ष की वन-सम्पत्ति का पूर्ण सदुपयोग क्यों नहीं हो सका? वन-सम्पत्ति के रक्षण और उपयोग के लिए आप क्या सुझाव देंगे?
4. वनों के मुख्य लाभ क्या हैं? वनों से मिलने वाली मुख्य उपज का उल्लेख कीजिए।

अध्याय 8
कृषि उपज
(Agriculture)

मनुष्य द्वारा भूमि से पौधे इत्यादि उगाने को कृषि कहते हैं। कृषि द्वारा मनुष्यों के लिए भोजन और उद्योगों के लिए कच्चा माल उगाया जाता है। वन-सम्पत्ति और मछली-सम्पत्ति इत्यादि में प्रकृति का प्रमुख स्थान है, परन्तु कृषि में प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का स्थान प्रमुख है। यह ठीक है कि प्राकृतिक दशा, जलवायु इत्यादि का कृषि के ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है परन्तु फिर भी मनुष्य सबसे अधिक आवश्यक अंग है।

भारतवर्ष में कृषि का महत्व—भारतवर्ष में कृषि का महत्व अत्यधिक है क्योंकि (1) कृषि भारतवर्ष की जनसंख्या के लगभग दो-तिहाई ($\frac{2}{3}$) को रोजगार देती है, अप्रत्यक्ष रूप से तो और भी अधिक जनसंख्या कृषि के ऊपर निर्भर है, (2) कृषि से देशवासियों को भोजन मिलता है (हमारे यहाँ अधिकतर जनसंख्या शाकाहारी है); (3) कृषि से देश के कई उद्योगों के लिए कच्चा माल मिलता है, जैसे, जूट, चीनी, वस्त्र, तेल इत्यादि, (4) सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि कृषि हमारी अधिकांश जनता को क्रय-शक्ति (Purchasing power) प्रदान करती है, जिसके द्वारा अन्य उद्योग चल सकते हैं। व्यापार, उद्योग-धन्धे और सरकार की आय सब उसी के ऊपर निर्भर हो जाते हैं।

कृषि की फसलें
रबी, खरीफ तथा जायद

भारत में मुख्यतया दो फसलें उगाई जाती हैं—(1) रबी, और (2) खरीफ। इसके बीच में कुछ अन्य फसलें भी अनुकूल दशाएँ होने पर कहीं-कहीं उगाई जाती है जिन्हें जायद कहते हैं। इनके अन्तर्गत उगाई जाने वाली मुख्य फसलें निम्नलिखित हैं—

रबी—गेहूँ, जौ, चना, अलसी, सरसों और राई इत्यादि।

खरीफ—ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंगफली, अण्डी, कपास, पटसन इत्यादि ।

जायद रबी—सरसों और राई इत्यादि ।

जायद खरीफ—ज्वार तथा चारे की फसलें, इत्यादि ।

धान की तीन फसलें उगाई जाती हैं । गन्ने की फसल उगाने में 10 से 12 महीने लगते हैं । कुछ अन्य फसलें स्थान, मिट्टी और जलवायु की भिन्नता के अनुसार जल्दी या देर में बोई और काटी जाती हैं ।

फसलों की उपज के लिए दशाओं का वर्णन आगे किया गया है ।

कुछ मुख्य फसलों की उपज के लिए अनुकूल दशाएँ और उनके उत्पादन-क्षेत्र

फसल	अनुकूल दशाएँ	मुख्य उत्पादन-क्षेत्र
1	2	3
धान	मिट्टी—उपजाऊ कछारी, डेल्टाई, भारी, नीचे चिकनी उपयुक्त, बाढ़ वाली भूमि । खाद । तापक्रम—उगने से पकने तक समान रूप से ऊँचा तापमान औसत 27° सेन्टीग्रेड वर्षा—1,300 से 2,000 मिलीमीटर वार्षिक सुविनरित । सिंचाई से भी सम्भव । सस्ते और अधिक सख्या मे कुशल श्रमिक ।	बिहार—पूर्वी जिले अधिक महत्वपूर्ण । प० बंगाल—प्रत्येक जिले मे । उड़ीसा - कटक, पुरी, सम्भलपुर जिले अधिक महत्वपूर्ण । मध्यप्रदेश—नदी घाटियो मे तथा अधिक वर्षा के क्षेत्र । असम—ब्रह्मपुत्र की घाटी, शिलांग पठार, कामरूप और गोलपाड़ा मुख्य । उत्तर प्रदेश—तराई और पूर्वी क्षेत्र मुख्य । अन्य महाराष्ट्र, गुजरात, पू० पंजाब, मद्रास (चिंगलपट, तंजोर जिले मुख्य) मैसूर (कनाडा जिला मुख्य), आन्ध्र इत्यादि ।

(8) शिक्षा और गवेषणात्मक कार्य में वृद्धि हो। मजदूरों के जीवन-स्तर और उनकी सुविधाओं का ध्यान रखा जाय।

(9) वन प्रबन्ध नीति सुदृढ़ हो और वन सम्पदा में नियोजित विस्तार हो। वन-महोत्सवों को महत्व दिया जाना चाहिए परन्तु वृक्षारोपण के साथ-साथ आरोपित वृक्षों की रक्षा, वनों की रक्षा का ध्यान रखा जाना चाहिए।

वनों का क्षेत्र बढ़ाने की दिशाएँ ये हैं—

(क) मिट्टी के कटाव के स्थानों पर वन लगाये जाएँ;

(ख) मरुस्थल को बढ़ाने से रोक के लिए रेगिस्तानी प्रदेश तथा उनकी सीमा पर वनों का विस्तार किया जाय;

(ग) खाली पहाड़ियों और असमान धरातल पर वृक्षारोपण करने का प्रयत्न किया जाए;

(घ) नदियों, नहरों, सड़कों, रेल-मार्गों के दोनों ओर वृक्ष लगाए जाएँ; तथा

(ङ) खेतों की सीमाओं पर आम, शहतूत इत्यादि उपयोगी वृक्ष लगाए जाएँ।

आयोजनाओं में वनों का विकास

प्रथम योजना-काल (1951-56) में विभिन्न राज्यों में निम्न दिशाओं में कदम उठाए गये—

(1) 30 हजार हैक्टर से अधिक भूमि में नए वन लगाये गए। वनमहोत्सवों द्वारा इस दिशा में अधिक कार्य हुआ।

(2) वन-क्षेत्रों में आवागमन का विकास—लगभग 4,800 किलोमीटर सड़कों का निर्माण और सुधार किया।

(3) लगभग 81 लाख हैक्टर वनों को निजी अधिकार से सरकारी अधिकार और नियन्त्रण में लिया गया।

इसके अतिरिक्त वन-प्रबन्ध की ओर भी अधिक ध्यान दिया गया।

केन्द्रीय सरकार ने राज्यों में दियासलाई के लिए उपयुक्त वृक्षों में वृद्धि करने के लिए कदम उठाए और अनुमान है कि इससे काफी वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा, अनुसन्धान इत्यादि में विकास किया और जंगली जीव-जन्तुओं की रक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाए।

1	2	3
		पू० पंजाब—रोहतक, जलन्धर, अमृतसर, जिले महत्वपूर्ण। अन्य—आन्ध्र प्रदेश, मैसूर (बेलगांव), मद्रास (कोयम्बटूर, मदुरा, प० बंगाल (वर्दवान, वीरभूम, नादिया मुर्शिदाबाद, हुगली, चौबीस परगना इत्यादि), मध्य प्रदेश, राजस्थान इत्यादि मे भी।
कपास (Cotton)	जलवायु की विभिन्न दशाओं मे। मिट्टी—काली मिट्टी महत्वपूर्ण। दुमट, चिकनी उपजाऊ मिट्टी में भी। खाद का महत्व। तापक्रम—उच्च तापक्रम, 21° से० ग्रे० से 30° सेन्टीग्रेड या ऊपर। नमी—750 से 1,000 मिलीमीटर वर्षा पर्याप्त है। सुवितरित वर्षा या सिचाई हानिकारक। अन्य—सस्ते श्रमिक।	महाराष्ट्र—खानदेश, अहमदनगर, शोलापुर, नागपुर, अकोला, अमरावती, यवतमाल जिले मुख्य। गुजरात—अहमदाबाद, भड़ोंच और सूरत जिले मुख्य। पंजाब—अधिकतर जिलों मे। मध्य प्रदेश—भूतपूर्व मध्य भारत के क्षेत्र तथा जबलपुर, दमोह, सागर इत्यादि। मैसूर—धारवाड, वेल्लारी तथा रायचूर जिले मुख्य। मद्रास—तिरुनेलवेली, कोयम्बटूर और सलेम जिले मुख्य। राजस्थान—गंगानगर जिला तथा उदयपुर और कोटा डिवीजन मुख्य। आन्ध्र प्रदेश—द० पश्चिमी भाग तथा निजामाबाद जिला मुख्य। अन्य—उत्तर प्रदेश, इत्यादि मे भी।

1	2	3
तम्बाकू (Tobacco)	मिट्टी—उपजाऊ मिट्टी, खाद का महत्व, हल्की दोमट मिट्टी अच्छी है। तापक्रम—उच्च तापक्रम लगभग 21° से० ग्रे० से 30° सेन्टीग्रेड। नमी - भूमि नम, 650 से 1,300 मिलीमीटर तक वर्षा अथवा सिंचाई की पर्याप्त सुविधा,पकते समय मौसम शुष्क हो। पाला बहुत हानिकर।	आन्ध्र प्रदेश गुंटूर और विशाखापटनम् जिले अधिक प्रसिद्ध हैं। पू० गोदावरी भी। महाराष्ट्र—सतारा और कोल्हापुर जिले मुख्य हैं। अहमदनगर, शोलापुर मे भी। गुजरात—खेड़ा (Kaira) जिले मे आनन्द, बोरसद, पटलाद और नादियाद ताल्लुक मुख्य हैं। मैसूर—बेलगाँव जिला इत्यादि। उत्तर प्रदेश—मैनपुरी, एटा, फर्रुखाबाद, बनारस, सहारनपुर इत्यादि जिले। प० बंगाल—जलपाईगुडी, मालदा, मुर्शिदाबाद, प० दीनाजपुर, हुगली, कूच-बिहार। बिहार—पूर्निया, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मुंगेर जिले। मद्रास—मदुरा, कोयम्बटूर जिले। पू० पंजाब—जलन्धर, गुरदास-पुर, होशियारपुर जिले। अन्य - असम, राजस्थान, इत्यादि।

1	2	3
चाय (Tea)	मिट्टी -उपजाऊ भूमि, खाद का महत्व। जमीन ढालू हो ताकि जडो मे पानी न भर सके। तापक्रम—औसतन 21° ग्रे० से० से 27° सेन्टीग्रेड। वर्षा—1,250 मिलीमीटर वार्षिक से अधिक होनी चाहिए। पाला हानिकर। सस्ते और कुशल श्रमिक	असम—दरांग, सिवसागर और लखीमपुर जिले मुख्य। प० बंगाल—दार्जिलिंग, जलपाईगुडी, कूचबिहार जिले। केरल—पहाडी क्षेत्र। मद्रास—कोयम्बटूर, नीलगिरि, तिरुनेलवेली। अन्य—त्रिपुरा, पू० पंजाब (कांगड़ा की घाटी) उत्तर प्रदेश (देहरादून, अल्मोडा, गढवाल), हिमाचल प्रदेश, मैसूर (मालाबार तट) बिहार (हजारीबाग, रांची, पूर्निया)।
जूट (पटसन)	मिट्टी—खूब उपजाऊ। नदियो की लाई मिट्टी उपयुक्त। दुमट, चिकनी और रेतीली उपजाऊ मिट्टी। तापमान—27° सेन्टीग्रेड से ऊपर। धूप। वर्षा—160सेंटीमीटर से अधिक सुवितरित।	सबसे अधिक प० बंगाल मे। बिहार दूसरा प्रमुख उत्पादक राज्य है। अन्य उत्पादक राज्य/क्षेत्र असम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तथा त्रिपुरा है।

धान

उपज के लिए आवश्यक दशाएँ—धान उष्ण कटिबन्ध का पौधा है। धान के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है। आरम्भ मे पौधे का प्राय: आधा भाग पानी मे डूब सके, इतना पानी होना चाहिए। 1,300 मिलीमीटर लगभग वार्षिक वर्षा धान उगाने के लिए काफी समझी जाती है। तापक्रम फसल उगाने के पूरे समय लगभग 27° से० ग्रे० रहना चाहिए। प्रबल वर्षा की बाढ से डूबी हुई जमीन इसके लिए अच्छी समझी जाती है। सिचाई

की सम्यक् सुविधाओं से भी धान उगाया जा सकता है। धान उगाने के लिये नीचे चिकनी मिट्टी उपयोगी होती है। धान बोने के लिए पहले मेडें बाँध-कर पानी घेर लिया जाता है। जोतने के बाद क्यारियो मे बीज बो दिया जाता है। जब पौधे उग कर लगभग 23 सेन्टीमीटर के हो जाते हैं तो उन्हे उखाड कर ठीक-ठीक दूरी पर रोप (Transplantation) दिया जाता है। इसके लिए सस्ते मजदूरो की नितान्त आवश्यकता है। जहाँ सस्ते मजदूर नही मिल सकते वहाँ धान उगाना लाभदायक सिद्ध नही हो सकता।

चीन के बाद भारत में सबसे अधिक धान उगाया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र—भारतवर्ष मे सबसे अधिक धान बिहार तथा प० बगाल मे पैदा किया जाता है। इसके अतिरिक्त असम, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और उडीसा मे भी धान उगाया जाता है। आन्ध्र प्रदेश और मद्रास राज्यो मे भी अधिक होता है और मालाबार तट मे धान की फसल उगाई जाती है।

प० बगाल धान उगाने के लिए अधिक प्रसिद्ध है। बगाल मे धान उगाने के लिए जितनी अनुकूल दशाएँ हैं भारत मे अन्यत्र उतनी नही है। बगाल मे धान की खेती के लिए मुख्य अनुकूल दशाये ये हैं —(1) बगाल मे वर्षा अप्रैल से ही प्रारम्भ हो जाती है और क्रमश. धीरे-धीरे बढ़ती जाती है; (2) बगाल मे तापक्रम निरन्तर ऊँचा (लगभग 28° से 29° तक) रहता है; (3) बगाल की भूमि बाढो की भूमि है और अत्यन्त उपजाऊ है, (4) बगाल मे जनसख्या अधिक होने से सस्ते मजदूर मिल जाते है। यही कारण है कि पश्चिमी बगाल के प्रत्येक जिले मे प्राय. 68 प्रतिशत से भी अधिक भूमि पर धान उगाया जाता है।

धान उगाने के लिए असम के कामरूप और गोलपाड़ा जिले, उडीसा, के कटक, पुरी और सम्भलपुर जिले, मद्रास मे तजौर और चिंगलपट जिले, मैसूर मे कनाडा और आन्ध्र प्रदेश मे पश्चिमी गोदावरी के क्षेत्र मुख्य हैं। उत्तर प्रदेश और पजाब इत्यादि राज्यो मे कुछ शुष्क क्षेत्रो मे भी सिचाई की सहायता से गर्मी के मौसम मे धान उगाया जाता है। नम पहाड़ी स्थलो मे भी चावल उगाया जाता है।

भारत मे धान की कृषि की मुख्य विशेषताएँ—(1) उत्तर प्रदेश और पजाब के अतिरिक्त भारत के धान-उत्पादक प्रमुख राज्यो मे प्राय. दो या तीन

फसलें उगाई जाती हैं। ये तीन फसलें हैं—(क) औस, (ख) अमान, और (ग) बोरो। औस फसल की बुवाई अप्रैल-मई मे होती है और यह फसल अगस्त-सितम्बर मे पक कर तैयार हो जाती है। अमान फसल जून मे बोई जाती है, जुलाई-अगस्त मे उसकी पौध लगाई जाती है और नवम्बर से जनवरी के बीच
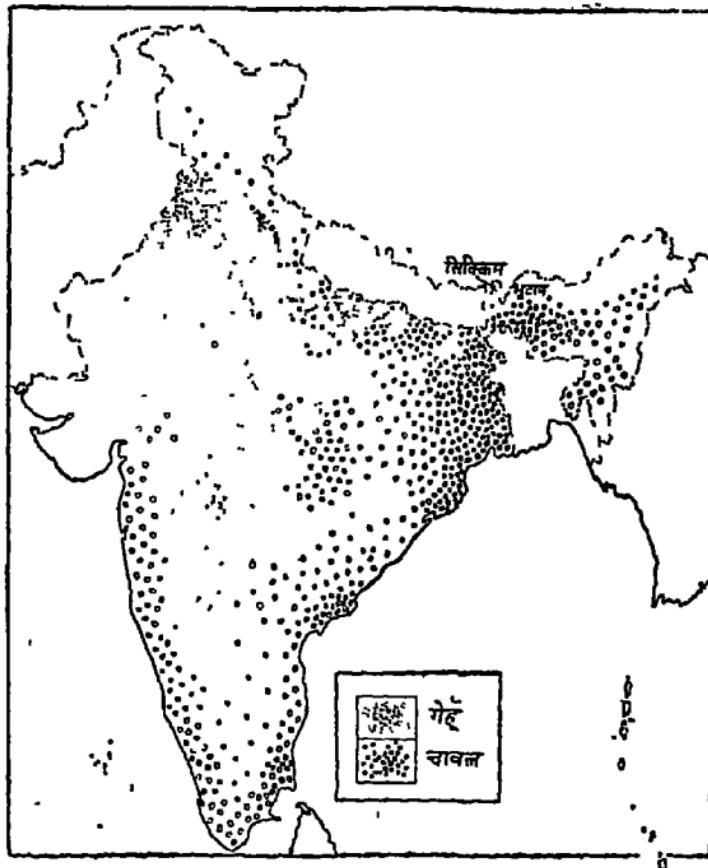
चित्र 23—भारत में गेहूँ और चावल की उपज के मुख्य क्षेत्र

मे फसल काटी जाती है। बोरो फसल अक्टूबर मे बोई जाती है, दिसम्बर मे उसकी पौध लगाई जाती है और मार्च मे काटी जाती है।

(2) धान बोने के तरीके भी भारत मे तीन है—(क) ऊँची या शुष्क भूमि मे जहाँ भूमि पानी में डूबी नही रहती धान छितराकर बोया जाता है; (ख, पानी से डूबी हुई भूमि मे धान रोपा जाता है (Transplantation),

और (ग) दक्षिणी प्रायद्वीप के कुछ क्षेत्रो मे हल चलाकर धान बोया जाता है।

(3) भारतवर्ष मे धान उगाने के लिए खादो का प्रयोग बहुत कम किया गया है। जापानी तरीके मे खाद को महत्व दिया गया है।

(4) भारत मे धान के बीज का चुनाव ठीक तरह नही हो पाता। हमारे देश मे लगभग चार हजार प्रकार का चावल पाया जाता है।

(5) भारत मे धान की प्रति एकड़ उपज अन्य कई देशो की अपेक्षा काफी कम है। इसके मुख्य कारण ये हैं—(क) सिंचाई का पर्याप्त विकास, (ख) खादो का कम उपयोग, (ग) बीजो का त्रुटिपूर्ण चुनाव और कृषि की घिसी-पिटी रीतियाँ, (घ) छोटे-छोटे खेत और फसल की बीमारियाँ (कीड़े इत्यादि)। धान की प्रति एकड उपज बढाने के लिए देश मे जापानी तरीके का प्रयोग और प्रचार किया गया जिससे उपज मे वृद्धि हुई है।

धान उगाने का जापानी तरीका—जापानी तरीके की मुख्य बाते ये है कि धान उगाने के लिए पहले ऊँची क्यारियो मे काफी रासायनिक खादो की सहायता से धान की पौध उगाई जाती है। बीजो के चुनाव मे भी सावधानी रखी जाती है, उनका श्रेणीयन (Grading) किया जाता है। पौध लगाते समय पौध एक निश्चित दूरी पर लगाई जाती है। पौध सावधानी से लगाई जाती है ताकि पौधा सीधा रहे। इसके अतिरिक्त हरी खाद का अधिक उपयोग किया जाता है। जापानी तरीके से कृषि करने पर प्रति एकड उत्पादन मे वृद्धि हुई है। द्वितीय योजना के अन्त तक अनुमान है 40 लाख हैक्टर क्षेत्र में जापानी तरीके से धान उगाया जाने लगा था।

उत्पादन—सन् 1950-51 मे 206 लाख मैट्रिक टन धान उगाया गया था। सन् 1960-61 का उत्पादन 342 लाख मैट्रिक टन हुआ, तीसरी योजना का लक्ष्य 457 लाख मैट्रिक टन हैं।

गेहूँ

उपज के लिए आवश्यक दशाएँ—गेहूँ समशीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। इसके लिए शुष्क और ठण्डी जलवायु की आवश्यकता होती है। बोने और उगाने का लगभग दो महीने का समय सर्दी का होना चाहिए अर्थात्

10° से० ग्रे० के लगभग तापक्रम होना चाहिए। अधिक नमी से गेहूँ के पौधे को हानि पहुँचती है। सिंचाई के द्वारा गेहूँ उगाया जा सकता है अथवा 700 मिलीमीटर के लगभग तक वर्षा इसके लिए काफी है। भारतवर्ष मे नहरो और कुओ से सिंचाई करके गेहूँ उगाया जाता है। इसके लिए कछारी या रेत मिली हुई चिकनी मिट्टी अच्छी समझी जाती है, जो उपजाऊ होनी चाहिए। काली मिट्टी मे भी गेहूँ उगाया जाता है। भिन्न-भिन्न देशो मे गेहूँ बोने और काटने का समय भिन्न-भिन्न है। भारतवर्ष मे गेहूँ सितम्बर के अन्त और अक्टूबर-नवम्बर अर्थात् दिवाली के आस-पास बोया जाता है। गेहूँ के पकने के लिए गर्मी की अर्थात् अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। फसल पकते समय वर्षा होने से पौधे को हानि पहुँचती है। भारतवर्ष मे गेहूँ की फसल काटने का समय होली के आस-पास फरवरी, मार्च, अप्रैल है।

उत्पादन क्षेत्र - भारतवर्ष मे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पजाब गेहूँ उगाने मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। बिहार, महाराष्ट्र इत्यादि मे गेहूँ होता है।

भारत मे गेहूँ का उत्पादन और तीसरी योजना का लक्ष्य[1]

सन् 1950-51 मे 65 लाख मैट्रिक टन और सन् 1961-62 मे लगभग 112 लाख मैट्रिक टन गेहूँ हुआ था। तीसरी योजना का लक्ष्य (1965-66 मे) डेढ़ करोड टन (153 लाख मैट्रिक टन) गेहूँ उत्पादन करने का है।

ज्वार-बाजरा

उपज के लिए आवश्यक दशाएँ—ये खरीफ की फसले हैं। ये भिन्न जलवायु की दशाओ मे उगाए जाते हैं। इनके लिए अधिक उपजाऊ भूमि की भी आवश्यकता नही होती और ये कम वर्षा वाले स्थानो मे भी उगाये जाते हैं। 250 से 750 मिलीमीटर तक वर्षा इनके लिए काफी समझी जाती है। तापक्रम इनके लिए लगभग 24° सेन्टीग्रेड उपयुक्त होता है।

उत्पादन-क्षेत्र—जलवायु और भूमि की अधिक विशेषताओ की आवश्यकता न होने के कारण ज्वार और बाजरा देश के सभी भागो मे (बहुत अधिक या बहुत कम वर्षा वाले क्षेत्रों को छोडकर) उगाया जाता है। बाजरा राजस्थान, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, मध्य प्रदेश, मद्रास और महाराष्ट्र, गुजरात,

[1] Source : Third Five Year Plan.

इत्यादि मे उगाया जाता है। ज्वार भी लगभग इन्ही क्षेत्रो मे उगाई जाती है। दक्षिण मे ज्वार बाजरा काफी उगाया जाता है। बाजरा की अपेक्षा ज्वार के लिए अधिक अच्छी जमीन की आवश्यकता है।

जौ

उपज के लिए आवश्यक दशायें— जौ गेहूँ के समान ही रबी की फसल है और भारतवर्ष मे नवम्बर के आस-पास बोया जाता है। जौ के लिए अधिक उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नही है और न अधिक नमी की। परन्तु जौ के पौधे की जड़ें गेहूँ के पौधे से कम गहरी होने के कारण अधिक खुश्की इसके लिए हानिकर है। जौ पकने के लिए अधिक तापक्रम की भी आवश्यकता नही है। 21° से० ग्रे० के लगभग तापक्रम और 500 मिलीमीटर के लगभग वर्षा अथवा सिंचाई के साधनो के स्थान पर जौ आसानी से उगाया जा सकता है।

उत्पादन-क्षेत्र—भारतवर्ष मे जौ की खेती मुख्यतया उत्तर प्रदेश, पजाब, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान मे होती है।

मक्का

मक्का की फसल खरीफ की फसल है जो भारतवर्ष मे जून मे या जुलाई के आरम्भ मे बोई जाती है। मक्का के लिए अधिक वर्षा की आवश्यकता नही होती, अधिक वर्षा से फसल नष्ट हो जाती है। परन्तु शुष्क भूमि मे मक्का नही उगाई जा सकती। इसके लिए लगभग 24° से० ग्रे० तापक्रम और 750 मि० मी० के लगभग वर्षा काफी होती है। मक्का की फसल जल्दी पक कर तैयार होती है और उस भूमि को जौ इत्यादि के बोने के काम मे लाया जा सकता है।

पजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान के दक्षिणी भाग और दक्षिणी प्रायद्वीप मे भी मक्का की खेती की जाती है। मक्का भारतवर्ष मे प्राय खाने ही के लिए बोई जाती है जब कि विदेशो मे अधिकतर पशुओ को खिलाने के लिए बोई जाती है।

दालें

चना, उर्द, मूँग, अरहर और मसूर दालो की मुख्य किस्मे हैं। चना रबी की फसलो के साथ बोया जाता है, परन्तु अन्य दालें खरीफ की फसलो के साथ बोई जाती हैं। अरहर खरीफ की फसल के साथ बोई जाती है और रबी की फसल के साथ काटी जाती है। दालें अधिकतर अकेली नही बोई जाती, ज्वार, बाजरा इत्यादि अन्य फसलो के साथ ही बोई जाती हैं।

उत्तर प्रदेश, पजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, विहार और उडीसा इत्यादि मे दालें उगाई जाती हैं। शाकाहारी लोग रोटियो के साथ दालें खाते हैं। इनमे प्रोटीन और कुछ अन्य पोषक तत्व अधिक होते है। दालें बोने से भूमि अच्छी बनती है क्योकि दालो के पौधो की जडो से मिट्टी को नाइट्रोजन मिलता है। चने का दाना पशुओ को खिलाया जाता है और सभी दालो से पशुओ के लिए भूसा मिलता है।

ईख (गन्ना)

उपज के लिए आवश्यक दशाएँ—गन्ने के लिए अच्छी जमीन, अधिक नमी और पूरे वर्ष अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। यह पौधा अधिकतर उष्ण कटिबन्ध के देशो मे ही होता है। गन्ना उगने मे लगभग पूरा वर्ष लगता है और इसके लिए पूरे 21° सेन्टीग्रेड से भी अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। इसके लिए सिचाई अधिक चाहिए अथवा 150 सेन्टीमीटर के लगभग वार्षिक वर्षा भी इसके लिए काफी होती है। पाला गन्ना की फसल के लिए हानिकर होता है। पकने के समय को छोडकर नमी भी पूरे वर्ष चाहिए। इसकी फसल प्राय: मार्च-अप्रैल के महीने मे बोई जाती है और नवम्बर-जनवरी तक काटी जाती है। पेंडी गन्ने की फसल एक बार काट लेने पर फिर उग आती है और प्राय. 3 से 10 बार तक अच्छी होती रहती है। गन्ने के लिए चिकनी, दुमट और कछारी मिट्टी अच्छी समझी जाती है। इसकी फसल के लिये अच्छे खादो की आवश्यकता होती है।

उत्पादन-क्षेत्र—कहा जाता है कि भारतवर्ष मे ही गन्ने की फसल सबसे पहले उगाई गई थी और सबसे अधिक गन्ना भारतवर्ष मे ही उगाया जाता है। सबसे अधिक गन्ना उत्तर प्रदेश और विहार मे उगाया जाता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी बगाल, पूर्वी पजाब, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और मैसूर भी गन्ना के प्रमुख उत्पादक हैं। 1929 से चीनी (Sugar) पर संरक्षण कर लगा लेने से गन्ने की फसल मे वृद्धि होती गई है और अब लगभग 16 लाख हैक्टर भूमि मे गन्ना उगाया जाता है।

सबसे अधिक गन्ना उत्तर प्रदेश मे उगाया जाता है। उत्तर प्रदेश मे गन्ना बोये जाने वाली भूमि का क्षेत्रफल देश मे गन्ने की भूमि के कुल क्षेत्रफल का 50 प्रतिशत से भी अधिक है। उत्तर प्रदेश मे लगभग सब जगह गन्ने की

खेती की जाती है परन्तु शाहजहाँपुर, फैजाबाद, आजमगढ़, बलिया, वाराणसी, बुलन्दशहर, जौनपुर और बिजनौर के जिलों में गन्ने की अधिक खेती होती है।
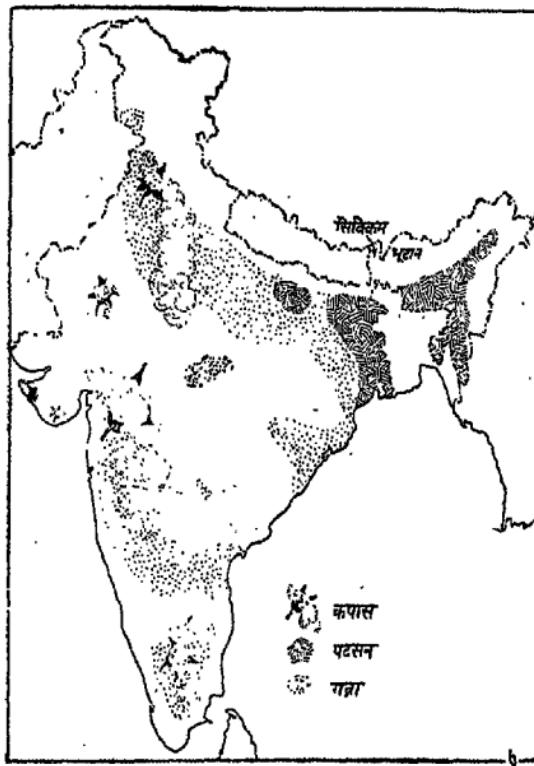
चित्र 24—भारत में कपास, पटसन और गन्ना की उपज के क्षेत्र

उत्तर प्रदेश में नलकूपों के लगाने से और गन्ना सहकारी समितियों के द्वारा और भी अधिक प्रोत्साहन मिला है।'

महाराष्ट्र राज्य भी गन्ने का प्रमुख उत्पादक है। अहमदनगर, कोल्हापुर, पूना, शोलापुर जिले तथा विदर्भ के कुछ जिले महत्वपूर्ण हैं।

बिहार मे भी अधिक गन्ना उगाया जाता है। बिहार के प्रसिद्ध गन्ना उत्पादक क्षेत्र चम्पारन, दरभंगा, मुजफ्फरपुर और सारन के जिले हैं।

इसके अतिरिक्त पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल मे काफी गन्ना उगाया जाता है। पूर्वी पंजाब मे रोहतक, जालन्धर और अमृतसर तथा पश्चिमी बंगाल मे बीरभूम, बर्दमान और नादिया जिले प्रसिद्ध हैं।

भारतवर्ष मे अब अच्छी किस्मो का गन्ना बोया जाने लगा है। कोयम्बटूर का अच्छा गन्ना अब अधिकतर बोया जाने लगा है। गन्ने के सम्बन्ध मे अन्वेषण केन्द्र भारत के गन्ना उत्पादक लगभग समस्त क्षेत्रों में फैले हुए हैं। नवम्बर, 1944 ई० में 'इण्डियन सेन्ट्रल शुगरकेन कमेटी' का निर्माण किया गया था और इससे गन्ने के उत्पादन, मार्केटिंग और चीनी-निर्माण इत्यादि कार्यों का विकास हुआ। परन्तु अभी कई सुधारों की आवश्यकता है—जैसे गन्ना क्षेत्रो को परिवहन की सुविधा देना और गन्ना उत्पादकों के लिए बैंकिंग की सुविधा इत्यादि। इस कमेटी की 'शुगर टेक्नोलॉजी एण्ड शुगरकेन रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की योजना मे विकास की ओर भी अधिक आशाएँ हैं।

भारत मे सन् 1960-61 में लगभग 23 लाख हैक्टर भूमि में 864 लाख मैट्रिक टन गन्ने का उत्पादन हुआ था।

महत्व—सन्तुलित आहार में एक बड़े मनुष्य की खुराक में 2 औंस चीनी आवश्यक बताई जाती है और भारतवर्ष में अभी देश के सब निवासियों के लिए पर्याप्त चीनी नही है। गन्ने से गुड़, खंडसारी, राब, चीनी इत्यादि मिलने के अतिरिक्त गन्ने को चूसना भी अधिकतर लोग लाभप्रद और अच्छा समझते हैं। गन्ने से शराब और गोण पदार्थ (By-product) के रूप में शीरा प्राप्त किया जाता है। गन्ने से पशुओ को चारा तथा जलाने तथा जमीन पर बिछाने के लिए प्याल मिलता है।

तिलहन

तिलहन के उत्पादन के लिए भारतवर्ष प्रसिद्ध है। तिलहन की फसलों का व्यापारिक फसलों मे महत्वपूर्ण स्थान है। तिलहन मे मुख्य रूप मे मूँगफली, सरसो, राई, तिल, अण्डी, नारियल, बिनौला, रेंडी, महुआ इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। तिलहन रबी और खरीफ दोनो फसलो के साथ उगाये जाते हैं। मूँगफली के लिये कुछ-कुछ रेतीली भूमि 27° से०ग्रे० के लगभग तापक्रम और साधारण नमी

की आवश्यकता होती है । नारियल समुद्र के पास डेल्टाई भूमि अथवा रेतीली जमीन मे ठीक प्रकार उगता है । सरसो और राई उपजाऊ कछारी भूमि मे और शुष्क जाडे की ऋतु मे उगाई जाती हैं । अण्डी प्राय खरीफ के साथ बोई जाती है और रबी के साथ काटी जाती है ।

तीसरी योजना के लक्ष्य—तिलहनो के उत्पादन का लक्ष्य तीसरी योजना मे लगभग 100 लाख मैट्रिक टन रखा गया है जबकि सन् 1960-61 का उत्पादन 67 लाख मैट्रिक टन था । नारियल का 1965-66 का उत्पादन लक्ष्य 528 करोड है जबकि 1960-61 का अनुमानित उत्पादन 450 करोड था ।

तिलहन की कुल कृषि मे वृद्धि हुई है ।

उत्पादन-क्षेत्र – मूँगफली, सरसो, राई, रेंडी, तिल और अण्डी कृषि योग्य भूमि के लगभग 8.4% भाग मे, लगभग 97 लाख हैक्टर भूमि मे बोए जाते हैं । सबसे अधिक मूँगफली उगाई जाती है । मूँगफली की फसलें मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश मे अधिक उगाई जाती हैं । सन् 1960-61 मे लगभग 63 लाख हैक्टर भूमि मे मूँगफली बोई गई थी जिससे लगभग 45 लाख मैट्रिक टन उत्पादन हुआ था ।

सरसो और राई के उत्पादन क्षेत्रो मे उत्तर प्रदेश, बिहार, पजाब और असम मुख्य है । इनकी खेती सन् 1960-61 मे 30 लाख हैक्टर भूमि मे हुई थी जिनसे लगभग 4 लाख मैट्रिक टन उत्पादन हुआ था ।

तिल लगभग समस्त भारत मे बोया जाता है परन्तु, दक्षिणी प्रायद्वीप मे इसकी खेती अधिक की जाती है । इसी प्रकार अण्डी भी लगभग पूरे भारत-वर्ष मे उगाई जाती है । ब्राजील के बाद ससार मे सबसे अधिक अण्डी भारत मे ही उगाई जाती है । भारत मे लगभग 445 हजार हैक्टर भूमि मे अण्डी बोई जाती है जिससे लगभग एक लाख टन प्रति वर्ष उत्पादन होता है

नारियल के पेड मद्रास, केरल, मैसूर मे अधिक उगाये जाते है, परन्तु महाराष्ट्र पश्चिमी बंगाल, उडीसा, असम मे भी काफी उगाये जाते हैं । बिनौला कपास के पौधो मे मिलता है ।

जूट (पटसन)

उपज के लिए आवश्यक दशाएँ—जूट उष्ण कटिबन्ध का पौधा है और भारत मे यह खरीफ की फसल है । इसका बीज फरवरी से लेकर मई तक

क्यारियों मे बो दिया जाता है। बोते समय लगभग 50 से 75 मिलीमीटर वर्षा और धूप तथा बाद मे प्रति सप्ताह 50 मिलीमीटर के लगभग वर्षा जूट उगाने के लिए बहुत अच्छे समझे जाते हैं। पौधो की लम्बाई लगभग 3 6 मीटर हो जाती है। अगस्त के करीब जब फूल आने लगता है, उनको काट लेते हैं। उन्हे काट कर गट्ठे बनाकर तालाबो मे सड़ने के लिए गाढ देते हैं और लगभग बीस दिन तक सडने देते हैं। इसके बाद उन्हें निकालकर साफ रेशों को सावधानी से निकालकर सुखा लिया जाता है। जूट के लिए दोमट, चिकनी और रेतीली उपजाऊ भूमि की आवश्यकता है। जूट उगाने से जमीन शीघ्र कमजोर हो जाती है इसलिए जूट के लिए ऐसी मिट्टी अच्छी समझी जाती है जो प्रति वर्ष बदलती रहे। गंगा और ब्रह्मपुत्र के द्वारा लाई हुए कछारी मिट्टी इसके लिए उपयुक्त है।

उत्पादन-क्षेत्र—दुनिया का लगभग सम्पूर्ण जूट गगा और ब्रह्मपुत्र की निचली घाटी मे उगाया जाता है। विभाजन के पश्चात् लगभग $\frac{3}{4}$ (तीन चौथाई) उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान मे चले गये। भारतवर्ष मे जूट का अधिक उत्पादन पश्चिमी बगाल, असम, बिहार और उडीसा तक सीमित है। त्रिपुरा और उत्तर प्रदेश के कुछ भागो में भी जूट उगाया जाता है। बिहार मे पूर्निया और उडीसा मे कटक जिले जूट उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं।

1955-56 मे जूट की 33 लाख गाँठे पैदा हुईं, जबकि 1961-62 मे यह मात्रा 63 लाख गाँठो की थी। तृतीय योजना का लक्ष्य 72 लाख गाँठे पैदा करने का है।

कपास

भारतवर्ष मे औद्योगिक महत्व के कारण कपास महत्वपूर्ण उपज मानी जाती है। सयुक्त राज्य अमरीका के बाद ससार के कपास उत्पादक देशों मे क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है परन्तु भारत ससार के कुल उत्पादन का 10 प्रतिशत से भी कम कपास उत्पादन करता है और देशी कपास कुछ घटिया किस्म की होती है।

उपज के लिए आवश्यक दशायें—कपास के लिए गर्म और खुश्क जलवायु अधिक उपयुक्त रहती है। वैसे यह बगाल जैसे नम प्रदेश मे भी उगाया जाता है, परन्तु कपास के लिए 1,000 मिलीमीटर से अधिक वर्षा हानिकारक समझी जाती है। भारतवर्ष के अधिकतर भागो में कपास की खेती सिंचाई की

सहायता से होती है। 600 से 900 मिलीमीटर तक ठीक बँटी हुई वर्षा कपास के लिए उपयुक्त समझी जाती है। वर्षा कपास उगाने के समय मे बँटी हुई होनी चाहिए परन्तु फूल आने के बाद वर्षा होने से कपास खराब हो जाती है। बोडी आने के बाद स्वच्छ आकाश और धूप अच्छी समझी जाती है। तापक्रम प्राय. 21° से० ग्रे० के लगभग उपयुक्त समझा जाता है और पाला या तुषार कपास की खेती को बहुत हानि पहुँचाते हैं। कपास के लिए दक्षिण की काली मिट्टी नमी को बनाये रखने की शक्ति होने के कारण सर्वश्रेष्ठ है।

भारत मे कपास प्राय जुलाई के आरम्भ में बोई जाती है और अक्टूबर-नवम्बर में फूल आने लगता है। दिसम्बर मे पौधे पर बोडी खिलने लगती है और कपास को चुन लिया जाता है। वैसे कपास की फसल-भिन्न-भिन्न जगहो मे भिन्न-भिन्न समय पर बोई जाती है और कपास चुनने का समय भी भिन्न-भिन्न होता है। कपास चुनने के लिए अधिक मजदूरो की आवश्यकता होती है इसलिए कपास उगाने के लिए सस्ते मजदूर (Cheap labour) मिलना भी आवश्यक है।

उत्पादन क्षेत्र—कपास मुख्यतः महाराष्ट्र. गुजरात, पजाब, मध्य प्रदेश, मद्रास, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र, मैसूर और राजस्थान मे उगाया जाता है। दक्षिण की काली (रेगड) भूमि मे अधिक कपास उगाई जाती है।

महाराष्ट्र के कपास उत्पादक प्रमुख जिले खानदेश, अहमदनगर, शोलापुर तथा विदर्भ के क्षेत्र हैं। गुजरात में अहमदाबाद, भडोच और सूरत जिलो मे अधिक कपास होता है।

पुराने मध्य प्रदेश मे विदर्भ के कुछ जिले जो अब महाराष्ट्र राज्य मे है, नागपुर अकोला अमरावती इत्यादि कपास की उपज के लिए प्रसिद्ध है।

मध्य प्रदेश मे कपास उत्पादन के मुख्य जिले जबलपुर दमोह सागर और कुछ पुराने मध्य भारत के क्षेत्र है। आन्ध्र प्रदेश का दक्षिण-पश्चिम का भाग महत्वपूर्ण है। मैसूर राज्य मे धारवाड और बेलारी जिले अधिक प्रसिद्ध हैं। मद्रास के तिरुनेलवेली, कोयम्बटूर और सलेम जिलो मे कपास का उत्पादन होता है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलो मे कपास उगाई जाती है। राजस्थान में बीकानेर डिवीजन मे विशेषत: गगानगर जिले मे) अजमेर, उदयपुर और कोटा डिवीजन मे कपास होती है। जोधपुर के पाली इत्यादि जिलो मे भी कपास की खेती होने लगी है।

भारत में कपास की बढिया किस्में सुयोग और विजय, जरीला और बग्नार हैं। अन्य किस्मे ऊमरास, सूरती, अमरीकी, धोलरा, भड़ोच, कमीला, सलेम, बगाली इत्यादि हैं। जयवन्त और जयधर किस्मे भी, जो कर्नाटक प्रदेश मे उगाई जाती हैं, प्रसिद्ध हैं।

कपास तीन प्रकार की होती है—(1) बड़े रेशे की, जिसकी लम्बाई 22 मिलीमीटर से अधिक तक होती है; (2) छोटे रेशे वाली जो 17·5 मि॰ मी॰ से कम लम्बाई की होती है; और (3) मध्यम किस्म की जिसकी लम्बाई 18 से 21 मिलीमीटर तक होती है। भारत मे पहले अधिकतर कपास छोटे रेशे वाली उगाई जाती थी, परन्तु अब कुछ वर्षो से बड़े रेशे की कपास उगाने का भी प्रयत्न किया गया है और अब भारत मे अमेरिकन कपास भी बोई जाती है। लम्बे रेशे वाली कपास भारतवर्ष मे महाराष्ट्र, गुजरात, पजाब और मद्रास के कुछ भागो मे बोई जाती है और वृद्धि की जा रही है। छोटे रेशे वाली रुई का कपड़ा बढिया किस्म का नही होता।

भारतवर्ष मे कपास के उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि हुई है। भारत मे रुई का उत्पादन 1955-56 मे 40 लाख गाँठ था, 1960-61 मे बढ़कर 54 लाख गाँठ हो गया।

भारत मे कपास का प्रति एकड उत्पादन अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है परन्तु कृषि विभाग और इण्डियन सेण्ट्रल कॉटन कमेटी' के प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप कपास की किस्म और उसके उत्पादन मे वृद्धि हुई है। विभिन्न राज्यों में कपास की किस्म को सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है और इसके लिए कृषि विभाग के प्रयत्न भी जारी हैं।

चाय

सबसे अधिक चाय का उत्पादन भारतवर्ष मे ही किया जाता है। चाय एक पेय पदार्थ है जिसका उपयोग सारे ससार में फैल चुका है।

उपज के लिए आवश्यक दशाएँ— चाय मानसूनी प्रदेशों का पौधा है। चाय के लिए अधिक वर्षा और अधिक धूप की आवश्यकता होती है परन्तु चाय ऐसी भूमि मे उगाई जाती है जहाँ चाय के पौधे की जडों में पानी न रहे। जडो मे पानी भरा रहने से पौधा खराब हो जाता है। पहाड़ी ढालो पर चाय अच्छी प्रकार उगाई जा सकती है जहाँ वर्षा अधिक होती हो। चाय के

लिए औसत तापमान 21° से 27° सेंटीग्रेड तथा वर्षा की मात्रा 1,250 मि० मी० तक चाहिए। पाला इसके लिए हानिकर होता है।

चाय के पौधे को अधिक बढ़ने नही दिया जाता। मुलायम पत्तियो को (अच्छी पत्तियाँ वे समझी जाती हैं जिनमे डंठल मे दो बड़ी और एक
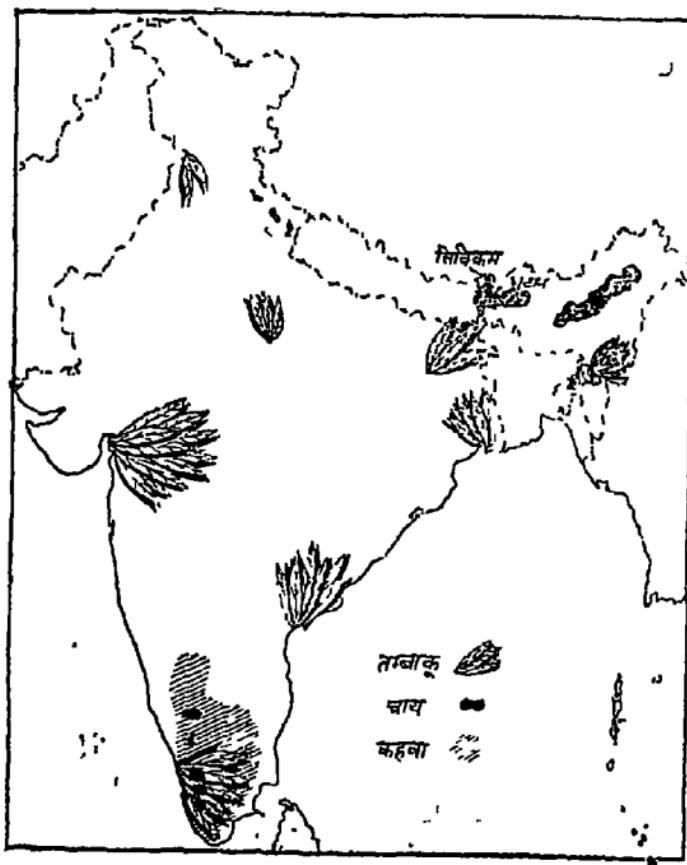
चित्र 25—भारतवर्ष में तम्बाकू, चाय और कहवा की उपज के क्षेत्र

छोटी पत्ती हो) ही अच्छी चाय के लिये तोड़ लेना आवश्यक होता है। इसके लिए सस्ते मजदूर मिलना आवश्यक है क्योंकि पत्ती तोड़ने मे बहुत श्रम की आवश्यकता होती है। चाय का उद्योग वही लाभदायक हो सकता है जहाँ सस्ते

मजदूर मिल सके। भारतवर्ष के चाय उद्यानो में पत्ती चुनने का काम स्त्रियों और छोटे लडकों से कराया जाता है जो कि कम मजदूरी पर ही काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। विभिन्न जलवायु का चाय की किस्म पर बडा प्रभाव पडता है।

उत्पादन क्षेत्र—भारतवर्ष में असम की पहाडियो के ढाल तथा हिमालय के ढालो पर दार्जिलिंग और देहरादून तथा दक्षिण मे नीलगिरि पर्वत के ढाल चाय के प्रमुख उत्पादन क्षेत्र हैं। वैसे भारतवर्ष मे कर्क रेखा के उत्तर मे लगभग 33° उत्तरी अक्षाश तक उपयुक्त जलवायु मे पहाडी ढालों पर चाय का उत्पादन फैला हुआ है, परन्तु दक्षिण मे नीलगिरि के ढालो पर भी चाय का उत्पादन होता है। भारतवर्ष मे सबसे अधिक चाय असम और पश्चिमी बंगाल से मिलती है; परन्तु मद्रास तथा केरल से भी अधिक चाय मिलती है। नीलगिरि के ढालो पर मालावार और कोयम्बटूर जिले चाय के प्रसिद्ध उत्पादक हैं। इनके अतिरिक्त त्रिपुरा, पूर्वी पंजाव, उत्तर प्रदेश, मैसूर, विहार (महत्व के क्रम से) भी चाय उगाते हैं। असम के दरांग, सिवसागर, लखीमपुर मुख्य क्षेत्र हैं। पश्चिमी बंगाल मे दार्जिलिंग और जलपाइगुडी प्रसिद्ध हैं।

महत्व— चाय देश के व्यापार की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। देश के कुल उत्पादन का लगभग तीन चौथाई भाग (75%) निर्यात किया जाता है। सबसे अधिक मूल्य का निर्यात चाय का ही किया जाता है। सन् 1955-56 मे लगभग 1,814 लाख किलोग्राम चाय निर्यात की गई थी। देश मे भी चाय का व्यापार निरन्तर बढता जा रहा है। 1960-61 मे चाय का उत्पादन 32 करोड किलोग्राम के लगभग था (3,205 लाख किलोग्राम) जिसमें से 1,958 लाख किलोग्राम चाय निर्यात की गई थी।

तम्बाकू

तम्बाकू का उपयोग भारतवर्ष मे 16 वी शताब्दी के बाद बढा है। यह पौधा पुर्तगालियो के द्वारा यहाँ सन् 1508 मे लाया गया था।

उपज के लिए आवश्यक दशाएँ—तम्बाकू के लिए उपजाऊ जमीन की आवश्यकता होती है, जहाँ नमी मिल सकती हो और जहाँ खाद ठीक प्रकार दिया जाय। जमीन मे रासायनिक तत्व होने चाहिए और जमीन इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे पौधे की जड़े आसानी से फैल सकें। तम्बाकू के लिए तापक्रम भी अधिक चाहिए। तम्बाकू बोने का समय भारत मे भिन्न

है और इसी प्रकार काटने का भी; परन्तु तम्बाकू काटने का समय प्राय. मार्च-अप्रैल देखा जाता है। इसके लिए उच्चतम तापक्रम 21° से 30° सेंटीग्रेड तक न था, वर्षा 650 से 1,300 मि० मी० आवश्यक होती है। पाला फसल के लिए हानिकर होता है। यह हल्की दोमट मिट्टी मे अच्छी होती है।

उत्पादन क्षेत्र—भारत के नम्वाकू उत्पादन करने वाले क्षेत्र पूरे देश मे फैले हुए हैं, परन्तु औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र पॉच हैं (1) पश्चिमी बगाल मे जलपाइगुडी, मालदा, वरहमपुर और दीनाजपुर मुख्य हैं। (2) गुजरात मे खेड़ा जिले मे आनन्द, बोरसद, पटलाद, नदियाद मुख्य हैं। महाराष्ट्र राज्य के सतारा, कोल्हापुर जिले प्रसिद्ध हैं। (3) आन्ध्र प्रदेश का गुटूर जिले का क्षेत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जहाँ अच्छी किस्म की तम्बाकू उगाई जाती है। (4) उतरी विहार मे मुजफ्फरपुर, पूर्निया और दरभग के जिले भी तम्बाकू के लिए प्रसिद्ध हैं, (5) मद्रास मे मदुरा और कोयम्बटूर जिले प्रसिद्ध है। मैसूर मे वेलगाँव जिला मुख्य है।

भारतवर्ष मे कई प्रकार की तम्बाकू उगाई जाती है। आन्ध्र प्रदेश के गुटूर जिले की तम्वाकू अच्छी समझी जाती है। यह तम्वाकू वर्जीनिया कहलाती है, जिसका रग पीला-सा होता है। सिगार और चुरुट की तम्वाकू कुछ वादामी-सी होती है और बीडी की तम्बाकू लाल-पीली-सी है। हुक्का की तम्वाकू कुछ अधिक गहरे रग की होती है और खाने की तम्बाकू वादामीपन लिए हुए पीली और दूसरी काली भी होती है। तम्वाकू की किस्म के ऊपर पानी और जमीन की किस्म का असर पडता है। आन्ध्र प्रदेश मे राजमुन्द्री मे सेन्ट्रल तम्बाकू रिसर्च इन्स्टीट्यूट तम्वाकू मे महत्वपूर्ण रिसर्च कर रहा है।

महत्व—उपभोग की दृष्टि से तम्वाकू हानिकारक होती है, परन्तु फिर भी इसका उपभोग निरन्तर बढता जा रहा है और इसलिए व्यापार की दृष्टि से तम्वाकू का महत्व छिपा नही है। भारतवर्ष की तम्बाकू की किस्म कुछ घटिया है और सिगरेटो के लिए अधिक उपयुक्त नही है। हमारी सरकार ने तम्वाकू कमेटी के द्वारा इस सम्बन्ध मे सुधार करने के लिए प्रयत्न किया है। नम्वाकू के उपभोग को निरुत्साहित करने के लिए तम्बाकू के उत्पादन पर विभिन्न राज्यो मे कर भी लगाया गया है।

कहवा

कहवा अरब से लाया हुआ चाय की तरह का पेय पदार्थ है। इसका पौधा प्राय: 500 से 1,500 मीटर की ऊँचाई तक पहाड़ी ढालो पर उगाया जाता है। मानसूनी हवा का वेग इसके लिए हानिकारक होता है। इसके लिए गर्मी, साधारण नमी और उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। यह अधिकतर उष्ण कटिबन्ध के प्रदेश मे ही उगाया जाता है। इसके लिए भी सस्ते मजदूर मिलने चाहिए। इसका पौधा लगभग तीन वर्ष मे फसल देने लगता है और फिर लगभग 30 वर्ष तक देता रहता है। भारतवर्ष में यह पौधा जुलाई के लगभग बोया जाता है और अक्टूबर से जनवरी तक फल तोड़े जाते हैं। भारतवर्ष मे लगभग 110 हजार हैक्टर भूमि में कहवा उगाया जाता है जिससे लगभग 456 लाख कि० ग्रा० कहवा प्राप्त होता है जिसका बहुत-सा भाग विदेशो को भेजा जाता है। भारतवर्ष मे कहवा का प्रमुख उत्पादक मैसूर है। आधे से अधिक कहवा मैसूर से ही मिलता है। मद्रास मे लगभग 25% कहवा मिलता है। केरल भी कहवा का प्रसिद्ध उत्पादक है।

अन्य फसलें

व्यापार की दृष्टि से पान का भी महत्व है। पान प्राय: देश के सभी राज्यो मे खाया जाता है। पान एक लता का पत्ता है। महोबा (उत्तर प्रदेश) पान के लिए प्रसिद्ध है। सुपारी का पेड़ समुद्र-तट पर लगाया जाता है। सुपारी का थोड़ा बहुत उत्पादन असम और पश्चिमी बङ्गाल में किया जाता है।

मसालो मे लाल मिर्च, काली मिर्च, सोंठ, हल्दी, धनियाँ, जीरा, सोफ, अजवाइन, लौंग, बहुत महत्वपूर्ण हैं। अधिकतर मसाले दक्षिण मे उगाए जाते है। लाल मिर्च प्राय: देश के सभी भागो मे उगाई जाती है। लाल मिर्च प्रारम्भ मे हरी होती है परन्तु पीछे पक कर और सूखकर लाल हो जाती है। कालीमिर्च भी पहले हरी होती है और पीछे सूखकर काली हो जाती है। सोंठ, कालीमिर्च और हल्दी का उत्पादन मद्रास मे अधिक होता है। मद्रास, मैसूर, केरल और दार्जिलिंग (पश्चिमी बंगाल) मे सिनकोना (जिससे कुनैन

बनाई जाती है) का उत्पादन भी महत्वपूर्ण है। केरल मे सुपाडी भी बहुत होती है।

व्यापार

जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ मे ही बताया जा चुका है, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो रूपो से कृषि का व्यापारिक महत्व अत्यधिक है। प्रत्यक्षतः (कुछ थोडी-सी फसलो को छोडकर जिनका केवल स्थानीय महत्व है) कृषि से मिलने वाले सभी पदार्थों मे देशी व्यापार होता है और कुछ अन्य मे तथा उनमे से कुछ मे विदेशी व्यापार भी बहुत बढा हुआ है।

आयोजनाओ द्वारा कृषि मे विकास

प्रथम पचवर्षीय योजना के आरम्भ मे कृषि उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि हुई है।

कृषि की उपज मे वृद्धि के लिये जो उपाय अपनाये गये है, उनमे मुख्य ये हैं—

(1) सिचाई के साधनो मे विकास।

(2) भूमि-स्वत्व पद्धति मे सुधार।

(3) व्यर्थ पडी हुई भूमि को कृषि योग्य बनाना।

(4) मिट्टी के कटाव और मिट्टी की अन्य समस्याओं को रोकने का प्रयत्न।

(5) चकबन्दी और सहकारिता इत्यादि के द्वारा खेती की आर्थिक इकाइयाँ बनाना। राज्यो मे भूमि की अधिकतम सीमा-निर्धारण की दिशा मे कदम उठाये गए हैं।

(6) विविध प्रकार के खादो का उत्पादन और उनके प्रयोग का प्रचार।

(7) अच्छी किस्म के बीजो और कृषि यन्त्रो का प्रचार।

इसके अतिरिक्त सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय-विस्तार योजना के द्वारा ग्राम और किसान का सर्वाङ्गीण विकास किया जा रहा है जिसमे बहुत कुछ सफलता भी मिली है।

खाद्य-समस्या का एक मुख्य पहलू यह भी है कि क्रय-शक्ति के अभाव मे अथवा खाद्यान्नो के मूल्य बहुत ऊँचे होने के कारण बहुत से लोग अपनी भोजन की आवश्यकता पूरी नही कर पाते। सरकार ने खाद्यानो के सम्बन्ध मे यह

मूल्य नीति अपनाने का यत्न किया है कि एक ओर तो कृषक को उचित मूल्य मिल जाए ताकि उत्पादन बढ़ाने मे उसे प्रोत्साहन मिलता रहे और दूसरी ओर उपभोक्ता को अधिक मूल्य न देने पड़े । यह समझना तो सरल है कि मूल्यों में वृद्धि रोकने का महत्वपूर्ण उपाय खाद्यान्नों की उपज बढाना है जिसके लिए सरकार ने जो प्रयत्न किए हैं, ऊपर बताए जा चुके हैं ।

संक्षेप

कृषि का महत्व खाद्यान्नों की दृष्टि से तो है ही परन्तु उद्योगों के लिए कच्चा माल, जनसंख्या के लिए रोजगार और क्रय-शक्ति प्रदान करने के कारण भी भारत मे कृषि का महत्व अत्यधिक है।

भारतवर्ष में बोई जाने वाली भूमि के लगभग 80 प्रतिशत भाग मे खाद्यान्नो की फसले उगाई जाती हैं ।

सबके अधिक क्षेत्रफल में बोई जाने वाली फसले धान, गेहूँ और ज्वार-बाजरा की है । औद्योगिक दृष्टि से जूट, कपास, ईख, तिलहन चाय और तम्बाकू महत्वपूर्ण हैं । प्रत्येक फसल को उगाने के लिए कुछ दशाएं आवश्यक होती हैं जिनमें वर्षा, तापक्रम और भूमि इत्यादि की विशेषताएं मुख्य हैं। इन्ही विशेषताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न फसलें भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे उगाई जाती है। उत्पादन के लिए आवश्यक दशाओं, उत्पादन क्षेत्र और फसलों के महत्व के सम्बन्ध में अध्याय में संक्षेप मे दिया गया है ।

खाद्य-समस्या देश की प्रमुख समस्या बन गई है । सरकारी और गैर सरकारी तौर पर इस समस्या को हल करने के लिए प्रयत्न किये गए है । पचवर्षीय योजनाओं में इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम लिए हैं और खाद्य-समस्या और कृषि को अत्यधिक महत्व दिया गया है ।

प्रश्न

1. भारतवर्ष में तीन मुख्य तिलहनो के नाम दीजिये । वे कहाँ-कहाँ उगाये जाते हैं ? और उनका महत्व क्या है ?
2. बगाल में जूट के उत्पादन को आप वहाँ की किन-किन भौगोलिक दशाओ का परिणाम समझते हैं ? एक चित्र द्वारा जूट उत्पादन करने वाले और जूट का माल बनाने वाले क्षेत्रो को अंकित कीजिये ।

3. गेहूं की खेती के लिये किन-किन भौगोलिक दशाओ की आवश्यकता है ? देश मे गेहूं का उत्पादन कहां-कहां किया जाता है ?
4. भारतवर्ष से ग्रेट ब्रिटेन को होने वाले तीन निर्यातो को चुनिये। उनका उत्पादन भारत मे कहां-कहां होता है और क्यो ?
5. धान उगाने के लिए आवश्यक भौगोलिक दशाएँ बतलाइए और भारतवर्ष के चित्र मे धान का वितरण दिखाइये।
6. आवश्यक चित्रो की सहायता मे समझाइये कि (अ) उत्तर प्रदेश मे गन्ना, (आ) असम मे चाय, और (इ) मध्य प्रदेश मे कपास की फसलो का विशिष्टीकरण क्यो कर किया जा सका है ?
7. किन्ही दो की उपज के लिए आवश्यक दशाएँ, उपज के क्षेत्र और उनके व्यापार का उल्लेख कीजिए—चावल, रुई, चाय, गेहूँ, कपास, गन्ना।

अध्याय 9

भारतवर्ष में पशु धन तथा डेरी उद्योग

(Livestock and Dairying)

पशुओ को हम दो भागो मे बाँट सकते हैं—(1) जंगली पशु, और (2) पालतू पशु। पहले भारतवर्ष मे जगली पशुओ का बाहुल्य था यद्यपि पालतू पशुओ की कमी नही थी। आबादी बढने के साथ-साथ घने जगलो के कट जाने से जंगली पशुओ मे बहुत कमी हो गई है। जगली पशु हिंसक, शिकारी और प्राय. हानिकारक ही होते हैं। शिकारी लोग उन्हे अपना शौक पूरा करने के लिए, मांस-भक्षण के लिए और कुछ पशुओ की खाल पर बैठने के लिए आसन इत्यादि बनाने के लिए मारते हैं। भारत मे अब भी अनेक प्रकार के जंगली पशु पाए जाते हैं, जैसे, शेर, रीछ, हाथी, गैंडा, जंगली सूअर इत्यादि।

पालतू पशु

पालतू पशुओ के लिए भारतवर्ष सदैव अग्रगण्य रहा है। गायो की तो यहाँ अत्यधिक मान्यता थी। गोपाल श्री कृष्ण का आविर्भाव यही हुआ था। आजकल भी भारतवर्ष के अधिकतर किसान पशु पालते हैं। भारतवर्ष मे पशुओ की संख्या 34 करोड के लगभग है।[1]

मुर्गियों की संख्या सन् 1961 मे 434 लाख थी और सन् 1961 मे 1 169 लाख।

गाय-बैल—पालतू पशुओं में गाय-बैलो की सख्या सबसे अधिक है और बैलों की संख्या भी अन्य पशुओं से अधिक है। कारण यह है कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है और खेत जोतने बोने, एक-सा करने, कुओ से सिंचाई करने और अनाज ढोने के लिए अधिकतर बैलो का ही प्रयोग किया जाता है। राजस्थान में भी, जहाँ ऊँट अधिक पाये जाते हैं, अधिकतर बैलो से ही खेती

[1] 1961 की पशु-गणना के अनुसार।

की जाती है। भारतवर्ष मे गाय-बैलो की संख्या सन् 1961 मे लगभग 18 करोड़ थी। यो तो बैल भारत मे प्रायः सर्वत्र ही पाये जाते हैं परन्तु पजाब और उत्तर प्रदेश मे उनका आधिक्य है।
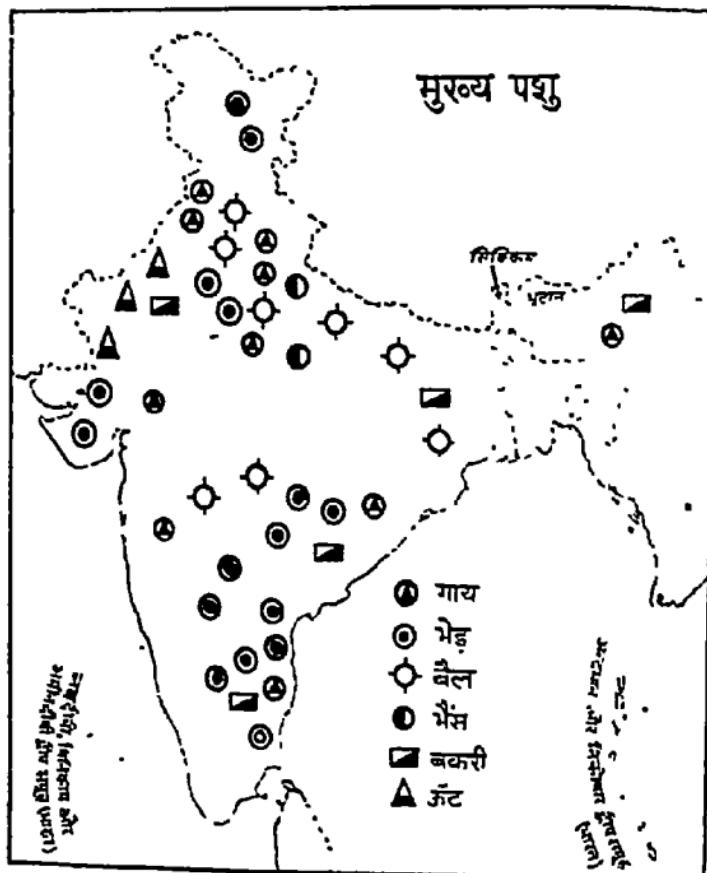
चित्र 26—भारत के मुख्य पशु

भारतवर्ष की गायो की अच्छी नस्लो मे साहीवाल (पजाब), कंकरेज और गिर (गुजरात) प्रसिद्ध हैं।

भारतवर्ष के विभिन्न देशो मे पाये जाने वाले बैलो की अच्छी नस्लो में ये मुख्य हैं—हासी (पजाब), नेल्लोर (आन्ध्र), अमृत महल (मैसूर), कगयम

(मद्रास), हरियाना (पंजाब), खेरीगढ़ (उत्तर प्रदेश), डांगी (गुजरात), निमार (मध्य प्रदेश)।

भैंस—भैंसों की संख्या भारतवर्ष में 5 करोड़ से अधिक है। भैंसे हल और गाड़ी खींचने के काम में आते हैं और भैंसें दूध के लिए पाली जाती हैं।

भारतवर्ष में पाई जाने वाली भैंसों में पंजाब की मुरा और गुजरात की जाफराबादी, महसाना, सूरती और पण्ढरपुरी नस्लों की भैंसें अच्छी मानी जाती हैं। विदर्भ की नागपुरी (महाराष्ट्र) और पंजाब की नीली और रावी भैंसे भी अच्छी हैं।

भेड़ और बकरी—भारतवर्ष में लगभग छः करोड़ बकरियाँ और लगभग चार करोड़ भेड़ें पाली जाती हैं। बकरी घास-फूस खाकर ही निर्वाह कर लेती हैं इसलिए लगभग पूरे भारत में पाली जाती हैं। भेड़ें सूखी घास और झाड़ी खाकर रहती हैं। भारतवर्ष में सबसे अधिक भेड़ें राजस्थान में पाली जाती हैं। इसके अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात और मैसूर में काफी भेड़ें पाई जाती हैं। भारतवर्ष की भेड़ें अच्छी किस्म की नहीं हैं।

ऊंट—ऊँट केवल उत्तर-पश्चिमी भारतवर्ष में ही पाये जाते हैं। ऊँट राजस्थान का मुख्य जानवर है; विशेषतः पश्चिमी राजस्थान में खेती-बारी और आने-जाने के लिए ऊँट ही काम में लिए जाते हैं। भारतवर्ष में ऊँटों की संख्या 6 लाख से कुछ ज्यादा है।

घोड़े, खच्चर और गदहों की संख्या कुल 28 लाख के लगभग है। घोड़े और खच्चर पहाड़ी स्थानों में बोझा लादने के काम आते हैं। अमरीका इत्यादि दुनिया के अन्य देशों की तरह हमारे यहाँ घोड़ों का प्रयोग खेती में नहीं किया जाता। शहरों में घोड़े ताँगा खींचने के लिए काम में लाये जाते हैं। गदहा भी बोझा ढोने वाला जानवर है।

शहद की मक्खियाँ (मधुमक्खी) भी जहाँ-तहाँ लगभग सभी जगह पाई जाती हैं परन्तु उनका पालन ढंग से नहीं किया जाता। मुर्गियाँ पालने का काम अण्डों के लिए प्रायः कंजर और निम्न जातियों के द्वारा ही किया जाता है। लाख और रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं।

पशुओं का आर्थिक महत्व और उनसे मिलने वाले पदार्थ

(1) गाय, भैंस और बकरी से हमें दूध मिलता है। दूध अत्यन्त पौष्टिक

पदार्थ माना जाता है इसलिए स्वास्थ्य और जीवन के लिए हम इसका महत्व समझ सकते हैं। दूध, दही, मक्खन और घी महत्वपूर्ण मिलने वाले पदार्थ हैं। दूध का उत्पादन करने वाले देशो मे सयुक्त राज्य अमरीका के बाद स्थान भारतवर्ष का ही है, परन्तु भारतवर्ष का प्रति व्यक्ति दूध का औसत उत्पादन बहुत कम है।

घी का उत्पादन मुख्यतया उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पूर्वी पजाब और मध्य प्रदेश मे किया जाता है। दूध देने वाले पशुओ से भारतवर्ष मे लगभग 26 करोड क्विन्टल दूध और 56 लाख क्विन्टल घी प्राप्त होता है।

(2) यद्यपि अधिकतर भारतवासी निरामिष भोजी हैं तथापि दक्षिणी भारत और जहां-तहां अन्य प्रदेशो मे सभी जगह मांस खाने वाले भी हैं। पालतू पशुओ मे से भेडो बकरी और बैलो का मांस अधिकतर खाया जाता है।

(3) पशुओ से हमे खाले और चमडा प्राप्त होते हैं जिनमे जूते, चप्पलें, सूटकेस, थैले, काठियाँ, गेटिगं, बटुए, इत्यादि अनेक वस्तुएँ बनाई जाती हैं। भारतवर्ष मे चमडे के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र कानपुर, आगरा, मद्रास, दिल्ली और कलकत्ता हैं।

(4) पशुओ से हमे दो प्रकार का खाद मिलता है—(अ) पशुओं के गोबर और पेशाब से मिलने वाला खाद, और (ब) पशुओ की हड्डियों और खून से मिलने वाला खाद। वास्तव मे पशुओ का गोबर बहुमूल्य सम्पत्ति है और बहुत से किसान इसे जलाकर अपना बहुत बडा अहित करते हैं। जो कुछ भी हो, ग्रामीण किसान पशुओं के गोबर को सुखाकर ईधन की तरह भी प्रयोग करते हैं और कुछ गोबर को घूरो मे डालकर खाद की तरह भी प्रयोग करते हैं।

(5) भेडो से ऊन प्राप्त होती है। इस ऊन से ऊन का व्यवसाय चलता है। भारतवर्ष मे लगभग 4 करोड भेडें हैं जिनसे लगभग 318 लाख किलोग्राम ऊन प्राप्त होता है जिसका मूल्य डेढ करोड़ रुपये से अधिक होता है। भारतवर्ष मे लगभग 12 करोड रुपये का ऊन आयात करना पड़ता है। भारत के ऊन के निर्यात का मूल्य 810 लाख रुपये के लगभग है।[1]

(6) पशुओं के सींगों से ज्योमेट्री के औजार (Instruments), कंघे और

1 The Times of India Year Book, 1960-61,

कंघी इत्यादि बनाये जाते हैं। हाथी-दाँत की बहुमूल्य वस्तुएँ तैयार की जाती हैं।

(7) कृषि में जुताई, बुवाई इत्यादि मे हल खीचने के लिए बैलों का प्रयोग होता है। कुओ से सिंचाई भी बैलों के द्वारा की जाती है। कोल्हू द्वारा तेल निकालने का काम भी बैलो की सहायता से किया जाता है।

(8) परिवहन के साधनो मे भी पशुओ का प्रयोग होता है। घोडे, घोडी, ऊँट और हाथी सवारी के काम आते हैं। इसके अतिरिक्त बैलगाडी मे बैल, ऊँटगाडी में ऊँट और इक्के, ताँगे बग्घी और टमटमो मे जोडे जाते हैं। बोझा ढोने वाले जानवरों में ऊँट, टट्टू, खच्चर, गदहे मुख्य हैं। घने जंगलो मे जहाँ परिवहन के अन्य साधन उपलब्ध नही होते, कटी हुई लकडी के भारी-भारी लट्ठो को खींचने का काम हाथियों से लिया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पशु भारतवर्ष की अमूल्य सम्पत्ति है। योजना आयोग के अनुसार शक्ति प्राप्त होने के अतिरिक्त पशुओ के द्वारा देश की राष्ट्रीय आय मे 100 करोड रुपये से अधिक प्रतिवर्ष मिलते हैं। भोजन और वस्त्र, कृषि और परिवहन के साधन—प्रत्येक मे पशु महत्त्वपूर्ण भाग बँटाते हैं। डेयरी उद्योग ऊन उद्योग, चमडा उद्योग इत्यादि पशुओ से ही चलते हैं। इसके अतिरिक्त कई कुटीर उद्योग धन्धे—जैसे जूते बनाना, तेल निकालना, गुड बनाना, हाथी दाँत का काम, शाल और कालीन का काम, ऊँट के बालो का काम इत्यादि—पशुओ से चलते हैं। साबुन बनाने के लिए चर्बी, खाद बनाने के लिए हड्डी इत्यादि भी कच्चे माल के रूप में प्राप्त होती है।

भारतवर्ष के पशुओं की पिछड़ी हुई दशा और उसके कारण

भारतवर्ष के पशु पिछड़ी हुई दशा मे है। दुधारू पशुओं अर्थात गाय, भैस इत्यादि का प्रति गाय अथवा प्रति भैंस दूध का औसत उत्पादन अत्यन्त कम है। विदेशो मे प्रति गाय अथवा प्रति भैंस दूध का औसत उत्पादन हमारे यहाँ के औसत उत्पादन से छः-सात गुने से लेकर दस-बारह गुने तक है। हमारे यहाँ भेड़ें गोश्त (Mutton) और ऊन दोनो दृष्टियो से निम्न कोटि की हैं। जिस प्रकार गाय-भैंस दुर्बल हैं, उसी प्रकार बैल भी अधिक मरे-मराये मे अस्थियो के ढाँचे मात्र ही देखने में आते हैं। दुर्बल और निकम्मे बैल भला खेती का कितना काम कर सकते हैं? इस पर भी उन पर अनेक प्रकार के रोगो के आक्रमण हुआ करते हैं। कभी 'खुर-पका', कभी 'मुँह-पका' और कभी 'गलघोटा' इत्यादि

पशुओ को प्रति वर्ष हजारो की संख्या में नष्ट कर डालते हैं। कई बार तो चारे की कमी से ही पशुओ का अन्तिम समय आ जाता है। इस प्रकार पशु-पालन जोखिम का कार्य बन गया है। निर्धन किसान, जिन्हे खेती के लिए पशु अनिवार्य रूप मे रखने पडते हैं पशुओ की दुरवस्था से भयकर आर्थिक हानि उठाते हैं। पशुओ की इस पिछडी हुई दशा के कुछ कारण अधोलिखित हैं—

(क) चारे की कमी —चारे की कमी पशुओ की गिरी हुई दशा का मुख्य कारण है। चारे की कमी के चार मुख्य कारण हैं—(1) एक ओर भारतवर्ष की जनसंख्या बढ जाने से भोजन की समस्या जटिल हो गई और 'अधिक अन्न उपजाओ' योजना के प्रचार-स्वरूप देश की ऊसर और बजर जमीनें जहाँ पशुचर भूमि अथवा प्राकृतिक चरागाह (Natural pastures) पाये जाते थे, जोत ली गई हैं। इसलिए प्राकृतिक चरागाहो की सुविधा समाप्तप्राय हो गई है। (2) दूसरी ओर भोजन की समस्या के ही परिणाम-स्वरूप कृषि योग्य भूमि मे चारे की फसलें उगाना अब प्राय: बन्द हो गया है। (3) चारे की कमी का तीसरा कारण यह है कि भारतवर्ष की अधिकतर वर्षा गर्मी के थोडे-से महीनो मे ही हो जाती है। वर्षा के इन दिनो मे सर्वत्र हरियाली छा जाती है, घास उग आती है और पशुओ के लिए काफी चारा मिल जाता है। परन्तु बरसात के इस मौसम के पश्चात् शेष पूरा वर्ष प्राय. शुष्क रहता है। इसलिए भारतवर्ष मे घास के मैदान नही पाये जाते और बरसात के मौसम को छोडकर चारे की कमी रहती है। (4) भूमि के अभाव के साथ ही सिचाई के साधनो की भी कमी है। कई प्रदेशो मे, जहाँ भूमि पडी हुई है, सिचाई के साधनो के अभाव मे चरागाह नही बनाए जा सकते। पूर्वी राजस्थान मे जहाँ पशु-पालन का धन्धा भी महत्त्वपूर्ण है, चारे की प्राय: कमी रहती है।

(ख) पशु सम्बन्धी ज्ञान की कमी—अधिकतर पशु पालने वाले नही जानते कि पशुओ को किस प्रकार दाना-चारा देना चाहिए, कब और किस प्रकार देना चाहिए, भूसा किस प्रकार का देना चाहिए, इत्यादि। पशुओं को सन्तुलित आहार किस प्रकार दिया जाय यह तो लोग प्राय: जानते ही नही।

(ग) सामर्थ्य से अधिक काम लेना—ऐसे पशु, जिन्हे काम के लिए पाला

जाता है, जैसे, बैल, घोडा, गदहा इत्यादि—उनसे अधिक काम लिया जाता है। परिणामतः स्वस्थ पशु कम देखने को मिलते हैं।

(घ) **खुली हवा और रहने के लिए उपयुक्त स्थान का अभाव**—भारतवर्ष में अधिकांश खेत छोटे-छोटे और दूर-दूर होने के कारण अधिकतर किसान अपने पशुओं को घरो मे या किसी अन्य गन्दी, सँकरी और अँधेरी जगहों मे बाँधते हैं। उनके नीचे गोबर और पेशाब से कीचड होती रहती है जिससे पशुओ के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है और छूत की बीमारियाँ फैलने मे सरलता रहती है।

(ङ) नस्ल गिरी हुई होने का कारण यह है कि भारतवर्ष मे अच्छी किस्म के सांड और नर-पशु प्रायः कम हैं। **क्रॉस-ब्रीडिंग** (Cross breeding) और सीमन इन्जेक्शनो का प्रचार बहुत कम है।

(च) **चिकित्सा और पशु-विशेषज्ञो का अभाव**—भारतवर्ष मे पशुओ का इतना महत्व होते हुए भी पशु-चिकित्सालयों का भारी अभाव है। जो कुछ चिकित्सालय पाये जाते हैं वे प्राय: शहरी क्षेत्रो मे ही हैं। गाँव के रहने-वाले उन चिकित्सालयो से लाभ नही उठा पाते। इने-गिने चिकित्सको को भी पशु-चिकित्सा का अच्छा ज्ञान नही है और वे पशुओ को छूना भी प्राय शान के खिलाफ समझते हैं।

सुधार के उपाय

पशुओ की दशा सुधारने के लिए निम्नलिखित उपाय[1] किये जाने चाहिए-

(1) चरागाहो की रक्षा, कृत्रिम चरागाह और सिंचाई की सहायता से पशुओ के लिए चारा और चारे की फसलें उगाई जाएँ।

(2) अच्छे, दुधारू और स्वस्थ पशुओ के पालको को प्रदर्शिनी इत्यादि लगाकर, पुरस्कार देकर प्रोत्साहन दिया जाय और नस्ल सुधारने के लिए क्रॉस ब्रीडिंग और सीमन के इन्जेक्शनो का प्रचार किया जाय। इस दिशा मे सरकार ने महत्वपूर्ण प्रयत्न किए हैं।

(3) गाँव के निवासियो को पशु-सम्बन्धी ज्ञान दिया जाय और सन्तुलित आहार देने के लाभ सिखाए जाएँ।

(4) ग्राम्य क्षेत्रो में पशु-चिकित्सालय खोले जाएँ जिनमे योग्य चिकित्सक

---

1 लेखक के साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे प्रकाशित एक लेख के आधार पर।

हो। पशुओं के जीवन और उनके होने वाले उत्पादन का बीमा करने और कराने का प्रचार किया जाय ताकि जोखिमों की आशंका कम हो जाय।

(5) पशुओं को गाँव के बाहर खेतो में या खुले मैदानो मे वाडे बनाकर रखा जाय। उन्हें छूत की बीमारियों से बचने के लिए विशेष सावधानी रखी जाय।

(6) प्रत्येक गांव अथवा दो गांव पीछे एक सरकारी समिति हो और ये सहकारी समितियाँ भी सगठित रूप मे हो। ये सहकारी समितियाँ वेतन पर विशेषज्ञो को रखें जो गाँव-गांव मे जाकर देखे कि समिति के सदस्यो के पशु रखने योग्य है या नही, उनके दूध, भोजन तथा अन्य विषयो का निरीक्षण करे।

(7) सहकारी समितियो की ओर से दुग्धशालाएँ (Dairies) हो जिनमे उनके सदस्य अपनी गायो और भैसो का दूध अच्छे मूल्य पर वेच सकें।

(8) पशुओ पर होने वाले अमानवीय अत्याचारो को रोकने के लिए कानून बनाया जाये ताकि पशुओ पर दुर्व्यवहार करने वालो को सजा मिल सके। वम्बई मे इस सम्बन्ध मे कुछ प्रयत्न किया गया था।

(9) अच्छे पशु पालने के ढग और लाभ का रेडियो और साहित्य इत्यादि के द्वारा प्रचार किया जाय।

यदि पशु पालन का महत्व समझ लिया जाय और इस ओर उचित ध्यान दिया जाय तो भारतीय जनता स्वास्थ्य और समृद्धि मे काफी लाभ कर सकती है।

पशु सुधार में सरकारी प्रयत्न

भारतीय सविधान के द्वारा और पशु-पालन के सगठन का कार्य राज्यो को सौंपा गया है, तथापि केन्द्रीय सरकार भी पशु-पालन के लिए राज्य सरकारो को सक्रिय सहयोग देती है।

पशुओ की दशा सुधारने के लिए सरकार की निम्नलिखित मुख्य योजनाएँ हैं—

(1) **गोसदन**—बूढी, अशक्त, दुर्बल और अयोग्य फालतू मवेशी को अच्छी नस्ल के पशुओ मे अलग रखने की योजना है, जिसका मुख्य उद्देश्य एक ओर भारतीय जनता की इस माँग पर ध्यान देना है कि कसाई घर बन्द किए

जायँ, और दूसरी ओर व्यर्थ पशुओं के द्वारा चारे और कृषि तथा नस्ल की हानि रोकना है ।

(2) **गो-शाला विकास**—द्वितीय योजना मे यह प्रस्ताव था कि भारत की लगभग 3,000 गो-शालाओ मे से लगभग 350 गो-शालाएँ चुनी जायँ जहाँ पशुओं की दशा सुधारी जाय । इन गो-शालाओ की व्यर्थ और अनुत्पादक मवेशी को गो-सदनो मे भेज दिया जाय । सरकार इन गो-शालाओ मे अच्छी नस्ल के पशु भी रखेगी परन्तु यह आवश्यक कर दिया गया है कि सख्या मे उतने ही अच्छी नस्ल के पशु गो-शालाएँ स्वय रखें । सन् 1960-61 तक विकसित गो-शालाओ की सख्या 246 हो गई थी । तीसरी योजना मे कार्य चालू है ।

(3) **केन्द्र ग्राम योजना** (Key Village Scheme)—इस योजना के अनुसार भारतवर्ष की सरकार केन्द्र ग्राम स्थापित कर रही है । प्रत्येक केन्द्र ग्राम के अन्तर्गत तीन या चार गाँवो की तीन साल से अधिक अवस्था की लगभग 500 गाये सम्मिलित की जाती है । इस योजना का मुख्य उद्देश्य नस्ल मे सुधार करना है । इस योजना के द्वारा निर्धारित चुने हुए ग्रामो मे नस्ल का कार्य चुने हुए साँडो द्वारा और कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रो द्वारा किया जाता है । अन्य बैलो को बधिया कर दिया जाता है या हटा दिया जाता है । एक कृत्रिम गर्भाधान 5,000 गायो के लिए काफी होता है । नस्ल सुधारने के अतिरिक्त केन्द्र ग्राम योजना बछड़ों के पालन, चारे की व्यवस्था तथा पशुओं से मिलने वाले पदार्थों की बिक्री का सहकारी ढंग पर प्रबन्ध करती है ।

(4) **पशुओं की बीमारियों की रोक**—प्रथम योजना-काल मे पशुओ की बीमारियो को रोकने के लिए, विशेषकर पशुओ की बीमारियो से बचाने के लिए, चिकित्सा के साधनो मे वृद्धि की गई । सन् 1951 मे पशु चिकित्सालयो की सख्या 2,000 थी, सन् 1956 मे 2,650 हो गई ।

द्वितीय योजना के अन्त तक (मार्च 1961 तक) 1,900 पशु चिकित्सालय (145 चलते-फिरते चिकित्सालयो को सम्मिलित करके) बढाने का लक्ष्य था । तृतीय योजना के अन्त तक (मार्च 1966 तक) पशु चिकित्सा के लिए

8,000 अस्पताल और औषधालय हो जाएंगे।[1] देश के समस्त मवेशियो को खूनी दस्तों की बीमारी से बचने के लिए टीके लगा दिये जाएंगे।

(5) दुग्ध व्यवसाय विकास योजना—जन-स्वास्थ्य की दृष्टि से दूध का उपभोग बढाने के लिए द्वितीय योजना-काल (1956-1961) मे शहरी क्षेत्रों मे 36 दूध सप्लाई करने की योजनाएँ, 12 मक्खन निकालने की योजनाएँ और 7 सूखा दूध बनाने के यन्त्र चालू करने की योजनाएँ थी। देश के अधिकाश राज्यो के कुछ बडे नगरो मे दुग्धशालाएं अथवा दुग्ध-सप्लाई योजनाएँ चालू की गई हैं।

तीसरी योजना की अवधि मे एक लाख से अधिक आबादी वाले शहरो और निरन्तर बढने वाले औद्योगिक उपनगरो मे दूध मुहैया करने की 55 नई योजनाएं चालू की जाएँगी। ग्रामीण दूध बस्तियो का विकास करने के लिए 8 मलाई-मक्खन निकालने के केन्द्र, 4 दुग्ध चूर्ण की फैक्टरियां और 2 पनीर फैक्टरियाँ स्थापित की जाएंगी। दूध उद्योग के कार्यक्रमो को बढावा देने के लिए दूध उद्योग के लिए आवश्यक साज-सामान और मशीनरी को देश मे ही बनाने के लिये प्रबन्ध किये जायेंगे।

(6) इसके अतिरिक्त सरकारी तौर पर समय-समय पर पशु-प्रदर्शिनियो का आयोजन किया गया जिनमे आये पशुओं मे से सर्वश्रेष्ठ पशुओ के पालको को पुरस्कार प्रदान किए गये। ऑल इण्डिया रेडियो ने विभिन्न स्टेशनो से ग्रामीण भाइयो के लिए देहाती प्रोग्रामो मे कभी-कभी पशु-पालन सम्बन्धी चर्चायें भी प्रसारित की हैं। कुछ राज्यों मे पशु-सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्य की ओर भी ध्यान दिया गया है।

पशुओ पर आधारित उद्योग

पशुओ का आर्थिक महत्व इस अध्याय मे ऊपर बताया जा चुका है। प्रत्यक्षत और अप्रत्यक्षत. पशुओं से चलने वाले अनेक उद्योग है जिनमे से मुख्य निम्नलिखित हैं —

(1) दुग्ध व्यवसाय (Dairy Industry)

(2) चमडा उद्योग।

(3) ऊन उद्योग।

(4) माँस उद्योग।

[1] योजना, 10—9—1961।

इसके अतिरिक्त मुर्गी पालना, मधु-मक्खी पालना, मछली व्यवसाय, लाख उद्योग, रेशम उद्योग इत्यादि भी जीव-सम्पत्ति पर आधारित माने जाते हैं।

डेरी उद्योग (Dairying)

भारतवर्ष में दुग्ध-उत्पादन सम्बन्धी पर्याप्त आँकडे प्राप्त नही हैं। परन्तु योजना आयोग के अनुमानो के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रथम पचवर्षीय योजना के पूर्व भारत मे दूध का वार्षिक उत्पादन लगभग 183 लाख मैट्रिक टन था। इसका लगभग 38 प्रतिशत पीने के काम मे लिया जाता है और लगभग 42 प्रतिशत का घी निकाला जाता है और शेष 20 प्रतिशत का खोया, मक्खन, दही इत्यादि बनाया जाता है।

जो दूध हमे मिलता है उसका आधे से अधिक भैंसो से और आधे से कुछ कम गायो से मिलता है। भारतवर्ष मे दूध का उपभोग प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 150 ग्राम से कुछ अधिक है। सन्तुलित आहार में प्रत्येक व्यक्ति को लगभग 425 ग्राम दूध मिलना चाहिए। द्वितीय योजना-काल तक दूध के उत्पादन मे वृद्धि का कोई लक्ष्य निर्धारित नही किया गया परन्तु सामुदायिक और राष्ट्रीय विस्तार सवा योजनाओ मे ऐसा ध्यान रखा गया कि दुग्ध-उत्पादन मे लगभग 10 प्रतिशत वृद्धि की जा सके। द्वितीय योजना के अन्त में दूध का वार्षिक उत्पादन 210 लाख मैट्रिक टन के लगभग था।[1]

भारतवर्ष मे प्रति गाय का औसत वार्षिक दूध का उत्पादन केवल 187 किलोग्राम है। ससार मे यह लगभग सब देशो से कम है। दुग्ध उत्पादन करने वाले प्रमुख देशो मे दूध का प्रति गाय वार्षिक उत्पादन का औसत 900 व 3,200 किलोग्राम तक है। भारतवर्ष मे भी कुछ थोडे से क्षेत्रो मे जहाँ गायो और भैंसो की नस्ल तथा उनके पालन की ओर ध्यान दिया गया है, उत्पादन बढा है।

भारतवर्ष मे दूध का उत्पादन करने वाले राज्यो मे प्रमुख उत्तर प्रदेश, पजाब और राजस्थान हैं। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उडीसा, बिहार और असम भी महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। आगरा, अलीगढ, मथुरा, बम्बई, कलकत्ता और भारत के अन्य अनेक नगरो मे दुग्धशालाओ का पर्याप्त विकास हुआ है।

घी का उत्पादन मुख्यतया उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पूर्वी पजाब और मध्य

---

1 The Times of India Year Book 1963-64

प्रदेश मे किया जाता है। उत्तर प्रदेश मे घी की मुख्य मण्डियाँ खुर्जा, कासगज, अलीगढ, इटावा और शिकोहाबाद है।

डेरी उद्योग के दोष—भारत मे डेरी उद्योग मे कई दोष पाये जाते हैं जिनके कारण यह उद्योग उन्नति नही कर पा रहा है। मुख्य दोष ये है —

(1) अधिकतर दुग्धशालायें अस्वास्थ्यकर स्थानो मे है जिनसे जन-स्वास्थ्य को भी भय है।

(2) नगरो मे दूध प्राय. पानी मिलाकर और कभी-कभी उसे गाढा बनाने के लिए अन्य पदार्थ मिलाकर बेचा जाता है। इसी प्रकार घी मे भी बहुत मिलावट की जाती है।

(3) पशुओ की दशा इस अध्याय मे पहले ही दिये कारणो से बहुत शोचनीय है।

(4) ग्राम्य-क्षेत्र मे दूध से मक्खन आदि बनाने के केन्द्रो का अभाव है।

(5) शीघ्र परिवहन के साधन भी नही है और शीत-भण्डार इत्यादि की भी सुविधाये प्राप्त नही हैं जिनके कारण दूध का बाजार बहुत सकुचित है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डेरी उद्योग असगठित है और उसमे नये तरीको का प्रयोग कम किया गया है।

डेरी उद्योग में सुधार– डेरी उद्योग मे सुधार करने के लिए वे सब उपाय तो अपनाने ही चाहिए जो इस अध्याय मे पशु सुधार के लिए पहले दिए हुए हैं, और इनके साथ ही इस ओर ध्यान देना आवश्यक है कि दुग्ध-शालाएँ स्वच्छ हो अथवा नगर के बाहरी क्षेत्रो मे सुव्यवस्थित हो मिलावट को रोकने के लिए कडे कदम उठाए जाने चाहिए, दुग्ध और दुग्ध से बने पदार्थो के मूल्य इस प्रकार रखने के प्रयत्न किए जाने चाहिए कि उत्पादक और उप-भोक्ता दोनो के लिए उचित हो, और डेरी उद्योग मे आधुनिक तरीको और परिवहन के शीघ्रगामी और अनुकूल साधनो के प्रयोग होने चाहिए।

बम्बई मे दूध के लिए आरे (Aarey) कोलोनी और कलकत्ता मे हरिंघट (Haringhat) मे स्थापित कोलोनी महत्वपूर्ण है। ऐसी ही दुग्ध कोलोनी मद्रास और दिल्ली मे स्थापित की गई हैं। सरकार की योजना है कि नगरो मे ऐसी सस्थाएँ हो जिन्हे मिल्क बोर्ड या ऐसा ही कुछ नाम दिया जाय जो ग्राम्य-क्षेत्रो से एकत्रित दूध के नगरो मे होने वाले वितरण पर नियन्त्रण रख सके।

मुर्गी-पालन-और मधु-मक्खी पालन का महत्व भारत मे हाल मे ही समझा गया है और इस ओर सरकार ने भी प्रोत्साहन दिया है। भारतवर्ष में मुर्गी-पालन निम्न श्रेणी का कार्य समझा जाता है और मुस्लिम या महतर ही मुर्गी पालते रहे हैं परन्तु अब मुर्गी-पालन एक धन्धे के रूप मे अपनाया जा रहा है। भारत मे मुर्गियाँ अच्छी नस्ल की नही हैं और उन्हे चारा इत्यादि भी अच्छा नही मिलता जिसके परिणामस्वरूप उनके अण्डे कम और खराब होते है। सरकारी तौर पर मुर्गियो की नस्ल सुधारने की दिशा मे प्रयत्न किये जा रहे है। मधु-मक्खी पालन की वैज्ञानिक विधि का भी प्रचार किया जा रहा है।

चमडा उद्योग का वर्णन 'बडे-बडे सगठित उद्योग' अध्याय मे किया गया है।

संक्षेप

पशु दो प्रकार के होते हैं—(1) जंगली पशु, और (2) पालतू पशु। जगली पशु आबादी बढने के कारण जगलो के कट जाने से अब बहुत कम रह गये हैं। भारतवर्ष के पालतू पशुओ मे गाय-बैलो की संख्या सबसे अधिक है। भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट, घोड़े टट्टू, खच्चर और गदहे भी मुख्य है। भारत के पालतू पशुओ की कुल सख्या लगभग 34 करोड है।

आर्थिक दृष्टि से पशुओं का महत्व किसी से छिपा नही है। दूध, दही, मक्खन और घी के अतिरिक्त पशुओ से माँस, चमडा, गोबर (ईंधन, खाद) और ऊन इत्यादि मिलते है। कई उद्योगो के लिए कच्चा माल मिलता है। कई कुटीर उद्योग-धन्धे पशुओं की सहायता से चलते है। भारतवर्ष में कृषि का काम पशुओ के बलबूते पर ही चलता है। परिवहन के साधनो मे भी पशुओ का प्रयोग होता है।

भारतवर्ष मे पशुओ की दशा बहुत गिरी हुई है जिसके मुख्य कारण चारे की कमी, अशिक्षा और चिकित्सा की कमी इत्यादि हैं। यदि पशुओं की दशा सुधारने के लिए उचित मार्ग अपनाया जाय तो राष्ट्र की सम्पत्ति मे अभिवृद्धि की आशा है।

प्रश्न

1 भारतवर्ष के पशुओ के आर्थिक महत्व का विवेचन कीजिए।

2. अन्य देशो से भारतवर्ष के पशुओ की दशा का मुकाबला कीजिए और बताइए कि भारतवर्ष के पशुओ की वर्तमान दशा ऐसी क्यो है ?

3. भारतवर्ष के पशुओ की पिछड़ी हुई दशा के मुख्य कारणो पर प्रकाश डालिए। पशुओ की दशा सुधारने के लिए क्या किया जा रहा है ? क्या आप अपना भी कोई सुझाव देंगे ?

4. भारतवर्ष के दुग्ध व्यवसाय की वर्तमान दशा का उल्लेख कीजिए। व्यवसाय के विकास के लिए आप क्या सुझाव देंगे ?

अध्याय 10

मछली क्षेत्र और मछली उद्योग

(Fisheries and Fishing)

मछली का महत्व —प्राचीन काल से ही मछली का महत्व रहा है परन्तु अब उसके औद्योगिक उपयोग बढ़े हैं। मछली का महत्व मुख्यतया निम्नलिखित कारणो से है—

(1) **मछली मनुष्य को भोजन प्रदान करती है।** देश मे और विदेशो मे काफी जनसख्या मछली से आहार प्राप्त करती है। मछलियो मे अण्डे देने और बढने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है और इस प्रकार यदि प्रयत्न किया जाय तो मछलियो से बढती हुई जनसख्या के लिए असीमित रूप मे भोजन प्राप्त किया जा सकता है। मछलियो से जो भोजन मिलता है उसके लिए मनुष्यो को प्रतीक्षा नही करनी पडती, जिस प्रकार अनाज की फसले उगाने के लिए दो महीने से छः महीने तक का समय लगता है, और न ही उतना उद्यम करना पडता है जितना कि अनाज की फसले उगाने के लिए।

(2 भारतवर्ष मे भोजन की समस्या परिमाण मे भोजन की कमी के कारण ही नही है; उनकी गम्भीरता इस दृष्टि से भी है कि भारतवर्ष के लगभग शत प्रतिशत व्यक्तियो को प्रोटीन तथा विटामिन युक्त पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है। **मछलियों से पौष्टिक भोजन मिलता है।**

(3) **मछलियों से पशु-पालन के धन्धे को लाभदायक बनाया जा सकता है।** *गायो को मछलियाँ खिलाने से उनके दूध मे वृद्धि होती है और मुर्गियो को* खिलाने से वे अण्डे अधिक देती हैं।

(4) **मछलियों से कई पदार्थ मिलते हैं,** जैसे, चमड़ा, तेल इत्यादि, और इस प्रकार कई उद्योगो के लिए आवश्यक सामान मिलता है—जैसे साबुन उद्योग, चमड़ा उद्योग, तेल उद्योग, इस्पात उद्योग आदि। मछली से हड्डी, तांत और चेपदार पदार्थ (Gelatine) मिलते हैं। मछलियों से मोती मिलते है और फास्फोरस भी मिलता है।

(5) व्यापार की दृष्टि से भी मछली का महत्व है। मछली को नमक और मसाला लगाकर हवा निकाले हुए डिब्बो मे भरकर दूर-दूर भेजा जाता है।

(6) मछली के अवशिष्ट पदार्थों मे कृषि के लिए उत्तम खाद मिलती है जिससे मिट्टी को उर्वरा शक्ति दी जा सकती है।

(7) मछली का तेल (कॉड लिवर ऑइल, शार्क ऑइल इत्यादि) कई ओषधियो मे काम आता है।

इस प्रकार भोजन की दृष्टि से, व्यापार की दृष्टि से और औद्योगिक दृष्टि से मछली का अत्यधिक महत्व है। भारतवर्ष के लिए अहिंसावादी विद्वानो[1] ने भी मछली को खाद्य पदार्थ के रूप मे अपनाने की सिफारिश की है। मछली उद्योग भारत मे लगभग 10 लाख व्यक्तियों को रोजगार देता है और राष्ट्रीय आय मे लगभग 60 करोड रुपये की प्राप्ति होती है। यह विदेशी मुद्रा कमाने का भी साधन है।

मछलियो के स्रोत

भारतवर्ष की मछलियो के स्रोतो को हम दो मुख्य भागो मे बाँट सकते हैं—(1) समुद्री मीनाशय, और (2) देश के भीतर नदियो तालाबो और नहरो मे पाये जाने वाले मीनाशय। समुद्री मीनाशयो मे मत्स्य क्षेत्रो को कई भागो मे बाँट सकते हैं—जैसे (अ) खाडियो के मत्स्य क्षेत्र, (आ) एच्युअरियो के मत्स्य क्षेत्र, (इ) समुद्र-तटीय मत्स्य क्षेत्र, और (ई) गहरे समुद्री मत्स्य क्षेत्र इत्यादि।

भारतवर्ष के मुख्य मछली क्षेत्र

महाराष्ट्र और गुजरात—इन राज्यों के समुद्र-तट मछलियाँ पकडने की दृष्टि से अत्यन्त सुविधाजनक हैं। यहाँ लगभग 7 महीने का समय मछलियाँ पकडने के लिए अच्छा समझा जाता है और वहाँ के मछुए इस समय का पूर्ण सदुपयोग करते है। यहाँ की मछलियों मे मुख्य ज्यू और पोम्फेट मछलियाँ हैं। इन मछुओ के पास सुन्दर नावे होती है और वे कच्छ के तट से खम्भात की खाड़ी तक मछलियाँ पकडते हैं।

---

[1] जैसे काका कालेलकर, दैनिक हिन्दुस्तान, 26 जनवरी, 1953, गणराज्य परिशिष्ट।

महाराष्ट्र मे तालाबो इत्यादि में ताजे पानी की मछलियो के पालने का भी उद्योग किया गया है। भूतपूर्व बम्बई राज्य मे मछली-पालन के विकास के लिए 1 अप्रैल सन् 1945 से एक विभाग की स्थापना की गई थी। यहाँ मछलियो मे मसाला लगाया जाता है और विदेशो को निर्यात भी किया जाता है। सन् 1949-50 मे करीब 183 हजार मैट्रिक टन मछलियाँ नमक लगाकर तैयार की गई थी। द्वितीय योजना के अन्त तक महाराष्ट्र और गुजरात राज्यो का कुल मछली उत्पादन 2,23,000 मैट्रिक टन वार्षिक था।

आन्ध्र प्रदेश—तेलगाना प्रदेश शामिल होने से बहुत लाभ हुआ। यहाँ करीब 100 प्रकार की मछलियाँ पकडी जाती हैं। गोदावरी, कृष्णा और
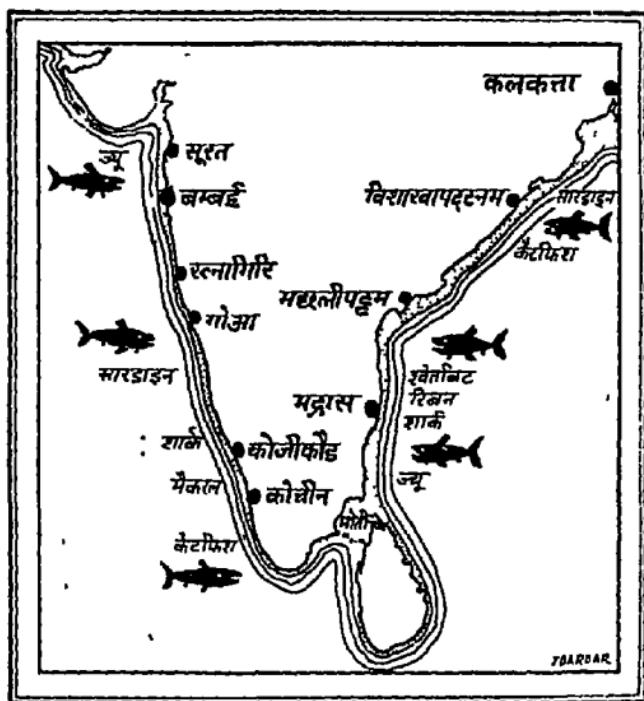
चित्र 27—भारत के समुद्र-तट की मुख्य मछलियाँ

मंजीरा नदियाँ, 35 हजार बड़े-बड़े तालाब और हजारों छोटे-छोटे तालाब मछलियो के स्रोत हैं। मरल यहाँ की मुख्य पाई जाने वाली मछली है जो

गर्मियों मे अधिक पाई जाती हैं । कलकत्ता से कई प्रकार की नई मछलियाँ भी यहाँ लाकर पाली गई हैं । तट पर पकडी जाने वाली मुख्य मछलियाँ सारडायन, मैकरल, मुलेट, रिवन और कैट फिश हैं ।

मद्रास—मद्रास राज्य का समुद्र-तट छिछला है और मछलियाँ पकडने के लिए अत्यन्त सुविधाजनक है; परन्तु यहाँ मछुओ के पास मछलियाँ पकडने के उत्तम साधन न होने के कारण वे लोग निर्धन हैं । सितम्बर से अप्रैल तक यहाँ मौसम अच्छा रहता है जिसमे मछलियाँ पकडी जाती हैं । मद्रास के पश्चिम तट के निकट जाने से मछली सम्पत्ति मे हानि हुई । पूर्वी तट पर 261 हजार क्विन्टल के लगभग मछलियाँ पकडी जाती हैं । पकड़ी जाने वाली मछलियो मे रिवन, ज्यू, श्वेतवेट, प्रोन, कैट, पोम्फ्रेट और सीयर मुख्य हैं । तिरुनेलवेली और रामनाथपुरम जिलो में मोतियो के घोंघे पाये जाते है जिन पर सरकार का अधिकार है । राज्य के भीतरी भागो मे हजारो तालाबों, कुओं, नहरों, प्राकृतिक झीलों, कृत्रिम तालावो और तलैयो मे काफी तादाद मे मछलियाँ पकडी जाती हैं । अनुमानत. मद्रास राज्य के भीतरी क्षेत्रों मे ही 6,000 हैक्टर पानी मे मछलियो के असीम स्रोत हैं । इसके अतिरिक्त मैटूर बाँध, कावेरी इत्यादि मे भी मछली-पालन का विकास करने के क्षेत्र हैं ।

मैसूर—मैसूर मे सन् 1940 मे पशु पालन और पशु-चिकित्सालय विभाग के अन्तर्गत ही मछली उद्योग के विकास का कार्य भी आरम्भ किया गया था । मैसूर के तीन मुख्य क्षेत्र हैं—शिमोगा, कृष्णराजा सागर और कोलार । सबसे पहले काटला पालमॅपॉट और गोराभी किस्मो की मछलियाँ प्रारम्भ की गई थी परन्तु अब अन्य किस्मे भी पाई जाती हैं । मछली-विभाग ने सराहनीय उन्नति की है । पश्चिमी तट शामिल हो जाने से मैसूर को मछली सम्पत्ति की दृष्टि से बहुत लाभ हुआ है ।

उड़ीसा—उड़ीसा मे मछलियो के मुख्य स्रोत पूर्वी समुद्र-तट, चिलका झील और उडीसा के तालाब और नदियो की शाखाएँ हैं ।

समुद्र-तट पर चाँदबली, चन्दीपुर, तालपड़ा, पुरी, आरिपल्ली गोपालपुर, मार्कण्डी और सोनपुर मछली, पकड़ने के मुख्य केन्द्र हैं । यहाँ पाई जाने वाली मछलियो की मुख्य किस्मे ह्वाइटवेट, सारडायन, मैकरल, सीयर, हिल्सा और पोम्फ्रेट है ।

चिल्का झील से बहुत अच्छी किस्म की मछलियाँ मिलती हैं और इससे 1,800 मैट्रिक टन मछली प्रतिवर्ष बाहर भेजी जाती है जिसमे मुलैट भेकती, पोम्फ्रेट, मैंकरल और सालमन मुख्य हैं। यह निर्यात अधिकतर कलकत्ता के बन्दरगाह से किया जाता है। उडीसा अन्तरवर्तीय क्षेत्रो की मछलियो मे हिल्सा, रोही, काटला और मृगाल हैं। बालासोर, कटक और सम्भलपुर जिले मछलियाँ जमा करने के मुख्य केन्द्र हैं। उड़ीसा के मत्स्य क्षेत्र अधिकतर प्राइवेट व्यक्तियो के अधिकार मे हैं। 'अधिक अन्न उपजाओ' योजना के अन्तर्गत यहाँ और भी अधिक विकास हुआ है।

पंजाब—पजाब मे तालावो, गड्ढो और पोखरों मे मछलियाँ पाली जा सकती हैं। अभी पंजाब में मछलियो के पालन मे काफी विकास का क्षेत्र है। यहाँ कृषि और पशु-चिकित्सा विभाग के अन्तगंत मछली विभाग भी खोला गया है। मुसलमान मछुओं के पश्चिमी पाकिस्तान मे चले जाने से मछली व्यापार को ठेस लगी है। कुछ क्षेत्रों मे मछली की सरकारी दूकानें खोली गई थी जिनसे लगभग 50 हजार रुपये प्रतिवर्ष की आय हुई। यहाँ कार्प मछली के विकास का काफी क्षेत्र है। बटाला मे सरकारी मछली फार्म महत्वपूर्ण है।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश मे मछली उद्योग की ओर सन् 1876 से विशेष रूप से ध्यान दिया गया। प्रथम युद्ध-काल से उधर विशेष प्रगति हुई। मछलियो का मुख्य स्रोत नदियाँ हैं। लखनऊ में एक गवेषणात्मक प्रयोगशाला स्थापित की गई है। मिरर कार्प मछली मे वृद्धि की जा रही है। इलाहाबाद के समीप गगा नदी मे 129 कि० मी० तक मछलियो के लिए मुख्य केन्द्र हैं। सरकारी तौर पर और कुछ निजी रूप मे 1,124 मीनाशय हैं जो उत्तर प्रदेश के 32 जिलों मे फैले हुए हैं। उत्तर प्रदेश की नदियो मे ताजे पानी की मछलियाँ विशेष महत्वपूर्ण है।

पश्चिमी बगाल—पश्चिमी बगाल में मछली खाने वाली जनसख्या अधिक होने के कारण इस ओर बहुत समय पूर्व से ही उचित प्रयत्न किये गये थे। पश्चिमी बगाल की जनसख्या 350 लाख के लगभग है जिसके लिये 1,500 मैट्रिक टन मछलियाँ प्रतिदिन की आवश्यकता है, परन्तु उत्पादन कुल 75 मैट्रिक टन प्रतिदिन के लगभग ही है: इसलिए आवश्यकता का बहुत बड़ा भाग बाहर से मँगाना पडता है। मछलियों के मुख्य स्रोत नदी, समुद्र-तट, इत्यादि पाकिस्तान मे चले गये है। पश्चिमी बंगाल में लगभग 40 कि० मी०

समुद्र-तट और बडी नदियो के अतिरिक्त 486 हजार हैक्टर पानी के क्षेत्र रह गये हैं। यहाँ पर मूर, फ्रेजरगज और सागर के द्वीप, जो हुगली नदी के समीप हैं, अधिक महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। सुन्दरवन के समीप डेल्टा मे और नहरो मे तथा नदियो की शाखाओ मे मछली पालन का विकास किया जा सकता है। मत्स्य-क्षेत्रो मे विकास करने के लिए पश्चिमी बंगाल मे कई योजनाएँ चालू की गई हैं जिनके लिए कई लाख रुपया लगाया जा रहा है।

भारतवर्ष में मछली उद्योग के पिछडे हुए होने के कारण

(1) भारतवर्ष की अधिकतर जनसख्या निरामिषभोजी है। मछली का भोजन उनके लिए धर्म-विरुद्ध है। भारतवर्ष मे प्रति व्यक्ति मछली का औसतन उपभोग 1 5 किलोग्राम वार्षिक है। विदेशो मे विशेषत: प्रगतिशील देशों मे, मछली का आहार प्रति व्यक्ति काफी अधिक है। ग्रेट ब्रिटेन मे 18 कि० ग्रा०, डेनमार्क में 11, जर्मनी मे 9, फ्रान्स मे 8, सयुक्त राज्य अमरीका मे 7, इटली मे 5 और स्विट्जरलैण्ड मे 3 किलोग्राम वार्षिक है। भारतवर्ष मे माँग कम होने के कारण मछली-उत्पादन की ओर अधिक ध्यान नही गया।

(2) भारतवर्ष की जलवायु अधिकतर गरम है; विशेषत. दक्षिणी समुद्र-तटो के समीप और दक्षिणी भारत मे अधिक गर्मी पडती है। मछलियो के रहने के लिए और पालने के लिए ठण्डी जलवायु ही उपयुक्त समझी जाती है। गरम स्थानो मे मछली शीघ्र बिगड जाती है।

(3) भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश होने के कारण यहाँ कृषि द्वारा (अब कुछ वर्षो को छोडकर) पहले पर्याप्त मात्रा मे खाद्यान्न मिलते रहे हैं और गरम जलवायु मे मासाहार अधिकतर नही किया जाता।

(4) भारतवर्ष मे मछुए का कार्य नीच काम समझा जाता रहा है और यह काम अनपढ, अशिक्षित और अयोग्य व्यक्तियो के हाथो में है जिनका जीवन स्तर भी गिरा हुआ है। इसलिए उन्हें इस काम मे अधिक लाभ नही मिल पाता। इसी कारण इस धन्धे की ओर लोग आकर्षित नही हुए।

(5) भारतवर्ष के समुद्रतट मछलियो के लिए अधिक उपयुक्त नही हैं। मछलियो के उपयुक्त स्थान उथले, ठंडे और कटे हुए सुरक्षित तट समझे जाते है। भारतवर्ष के समुद्र-तट के समीप कोई ठण्डी धारा भी नही बहती।

(6) भारतवर्ष की नदियों से समुद्र मे मछलियो के लिए भोज्य पदार्थ नही पहुंच पाते और न ही समुद्र में मछलियो का मुख्य भोजन प्लैंकटन-जीव (Plankton) पाया जाता है। नदियो के किनारो पर अथवा समुद्र के किनारों पर प्राकृतिक वन नही के बराबर हैं।

(7) नावें बनाने के उत्तम साधन भी कम हैं और मछलियां पकड़ने के जाल इत्यादि साधनो का विकास बहुत देर से हुआ। इसके अतिरिक्त मछुओं की आर्थिक स्थिति भी इतनी अच्छी नही रही कि वे इन उन्नत साधनो का प्रयोग कर सके।

(8) भारतवर्ष मे कोल्ड स्टोरेजो की सुविधाओं का अभाव ही रहा और इसके अतिरिक्त मछलियो का औद्योगिक विकास करने का बहुत कम प्रयोग किया गया है।

(9) भारतवर्ष मे पशुओ को मछलियां खिलाना अथवा मछलियो की खाद का प्रयोग करना, मछलियो से तेल और चमडा निकालना इत्यादि बातो की ओर बहुत उदासीनता रही है।

आधुनिक प्रकृति

भारतवर्ष मे पिछले कुछ वर्षों से मछली उद्योग मे काफी प्रगति हुई है।

सन् 1956 में मछलियो का उत्पादन लगभग 11 लाख टन था जब कि सन् 1951 मे 10 लाख टन था। इस प्रकार उत्पादन मे सन् 1951 से 1956 तक लगभग 10 प्रतिशत वृद्धि हुई। वर्तमान वार्षिक उत्पादन 12 लाख टन के लगभग है।

योजना-काल मे भारत को मछली उत्पादन के सम्बन्ध में टैक्नीकल सहायता (1) इन्डो-यू० एस० टैक्नीकल कोऑपरेशन प्रोग्राम, (2) इन्डो-नार्वेजियन फिशरीज कम्युनिटी डेवलपमेंट प्रोग्राम, तथा (3) एफ० ए० ओ० (F. A. O) के अन्तर्गत मिली है।

मछली उत्पादन मे प्रगति मुख्यत: निम्नलिखित दिशाओं में हुई है—

1. अन्तर्देशीय मछली क्षेत्रो का सर्वेक्षण और विकास।

2. समुद्री मछली क्षेत्रो का विकास और शोषण। इसके लिए मुख्य कदम ये उठाए गये हैं—

(क) मछली पकडने के तरीकों मे सुधार;
(ख) गहरे समुद्र की मछलियो को पकडना;
(ग) मछली पकड़ने और रखने के स्थानो (Harbours) का विकास;
(घ) मछली ले जाने के लिए परिवहन के साधनो का विकास,
(ङ) रखने अर्थात् भंडार-गृहो (Storage) की सुविधाओ का विकास;
(च) विपणन (विक्रय) और मछली का उपयोग बढाने की दिशा मे विकास।
(छ) समुद्री और अन्तर्देशीय मछली-क्षेत्रो के विकास के लिए शोध-कार्य (रिसर्च) और प्रशिक्षण।

मछली व्यवसाय के मुख्य केन्द्र पूर्वी तट पर गंजाम, गोपालपुर, विशाखापट्टनम, काकीनाडा, मछलीपट्टन, नेल्लोर, मद्रास, पांडिचेरी और नागापट्टन तथा पश्चिमी तट पर कालीकट और मगलौर है।

सरकार के खर्च मे चलने वाले सब प्रकार की सुविधाओ से पूर्ण आधुनिक मछलीमार केन्द्र बम्बई विशाखापत्तनम्, चन्दबली और कलकत्ता है।

तीसरी योजना के लिए मछली पालन की योजनाएँ बनाने का मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि उत्पादन बढाया जाय। इसक साथ ही मछियारो की आर्थिक परिस्थितियों मे सुधार करने की आवश्यकता और निर्यात-व्यापार को विकसित करने पर भी जोर दिया गया है।

समुद्र में मछली-पालन, समुद्र शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन, ऊँचाई वाले क्षेत्रो में मछली-पालन, ताजे पानी मे मछली-पालन, और समुद्र के इधर-उधर जमा जल मे मछली-पालन आदि के सम्बन्ध मे नई जाँच-पडताल की जायगी। जिला-स्तर पर मछली-पालन प्रबन्धकीय कर्मचारियो के लिए एक मछली-पालन प्रशिक्षण संस्था ने कार्य करना शुरू कर दिया है। कोचीन मे विभिन्न स्तरो पर मछली-पालन मे लगे लोगो के प्रशिक्षण के लिए एक सस्था स्थापित की जायगी।

तीसरी पंचवर्षीय योजना मे मछली-पालन के विकास की विभिन्न योजनाओ को चलाने के लिए अनुमानत 2,100 लोगो की आवश्यकता होगी। उनके प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था की गई है। तीसरी योजना का लक्ष्य है कि 1966 तक देश से निर्यात होने वाले मछली-जन्य पदार्थों का मूल्य 18 करोड रुपए वार्षिक हो जाएगा।

संक्षेप

मछलियों से पौष्टिक भोजन, पशुओं के लिए खाद्य, चमड़ा, सरेस, तेल, खाद इत्यादि अनेक पदार्थ मिलते हैं जिनसे जनसंख्या के स्वास्थ्य और क्रय शक्ति में सुधार किया जा सकता है। मछलियों के मुख्य स्रोत नदियाँ, नहरें और समुद्र हैं। भारतवर्ष के मुख्य मछली क्षेत्र महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र, मद्रास, मैसूर, उडीसा, पंजाब, पश्चिमी बंगाल और उत्तर प्रदेश में हैं। मछली उद्योग के पिछड़े होने के मुख्य कारण गर्म जलवायु, रूढ़िवादिता, भौगोलिक अनुकूलता का अभाव, उन्नत साधनों का अभाव और जानकारी की कमी है परन्तु हाल में प्रत्येक राज्य में इस उद्योग के विकास के लिए सन्तोषजनक कार्य किये गये हैं।

प्रश्न

1. मछली से कौन-कौन से महत्वपूर्ण पदार्थ मिलते हैं ? भारतवर्ष के मछली उद्योग के पिछड़े हुए होने के क्या कारण हैं ? भारतवर्ष में मछली उद्योग के विकास के लिए अब क्या किया जा रहा है ?

अध्याय 11
खनिज सम्पत्ति
(Mining, Mineral Wealth)

आधुनिक सभ्यता के युग मे उद्योगो के विकास मे खनिज सम्पत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। खनिज पदार्थों की दृष्टि से प्रकृति ने भारतवर्ष को सम्पन्न बनाया है। प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ खनिज पदार्थों से उद्योगों में विकास किया गया था परन्तु इस दिशा मे पिछले कुछ वर्षों मे अधिक उन्नति हुई है। यह समझना भ्रामक होगा कि भारतवर्ष मे खनिज पदार्थ- निःसीम हैं। भारतवर्ष मे कितनी खनिज सम्पत्ति का अनुमान है वह भारत जैसे विशाल और घनी जनसख्या वाले देश के लिए अधिक नही समझा जा सकता परन्तु यह भी कहना उचित न होगा कि भारतवर्ष मे खनिज पदार्थों की कमी है। हमारे देश मे इतने खनिज पदार्थ पाए जा सकते हैं कि इसकी औद्योगिक उन्नति अच्छे ढङ्ग पर की जा सकती है।

खनिज पदार्थों मे भारतवर्ष की वतमान स्थिति इस प्रकार है—

(1) भारत मे ऐसे खनिज पदार्थ, जो संसार के अन्य देशो के लिए निर्यात किये जाने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं, मुख्यत. कच्चा लोहा, अभ्रक, मैंगनीज, मैगनेसाइट, टिटेनियम और थोरियम इत्यादि हैं।

(2) ऐसे खनिज पदार्थ, जिनमे भारतवर्ष को हम स्वावलम्बी कह सकते हैं, मुख्यत: कोयला, बॉक्साइट, सीमेंट बनाने का सामान, इमारती पत्थर, सगमरमर, सोना, स्लेट, चूने का पत्थर, कांच, खड़िया, सुहागा, शोरा, संखिया सोडा इत्यादि हैं।

(3) ऐसे खनिज पदार्थ जो भारतवर्ष में अत्यन्त कम है और विदेशों मे मंगाने पड़ते हैं, मुख्यत. कच्चा तांबा, चांदी, गिलट, रांगा, सीसा काला सीसा, जस्ता, पारा, टग्स्टन, पैट्रोलियम, गन्धक, पोटाश, सुरमा इत्यादि है।

भारतवर्ष की खानो के विकास मे यह कठिनाई रही, कि सरकारी तौर पर इस ओर देर से ध्यान दिया गया। टैकनीकल जानकारी की हमारे यहाँ

कमी थी। इसके अतिरिक्त पूँजी लगाकर खानों का शोषण करने का भी विशेष साहस नहीं किया गया अथवा केवल सीमित क्षेत्रो में ही किया गया और वह भी केवल ऐसे खनिज पदार्थों में जो कि विदेशों मे बिक सकते थे। इस प्रकार हमारी बहुमूल्य खनिज सम्पत्ति प्राय: निर्यात होती रही और देश के औद्योगिक विकास मे उनका उपयोग कम किया गया। खानो मे से खनिज पदार्थ निकालने का ढग भी हमारा भद्दा था। बहुत सी खानें उचित-ढंग से उपयोग न की जाने के कारण नष्ट हो गई और निर्यात से हमे जो मूल्य मिला वह उन्ही खनिज पदार्थो से बने हुए माल के मूल्य की तुलना मे जो हमने आयात किया, बहुत ही कम था।

सन् 1948 से भारतीय सरकार ने खानो को इस प्रकार नष्ट होने से बचाने के लिए प्रयत्न किया है और इस सम्बन्ध में उचित सलाह देने के लिए एक ब्यूरो का निर्माण किया है। खानों को जाँच-पड़ताल तथा खोज कार्य के लिए एक सस्था 'ज्योलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया' की स्थापना की गई है।

कोयला

मात्रा, मूल्य और रोजगार सभी दृष्टियों से कोयला खनिज पदार्थो मे अत्यधिक महत्वपूर्ण है। खनिज पदार्थो में सबसे अधिक मूल्य हमें कोयले से ही प्राप्त होता है। शक्ति के साधन की दृष्टि से कोयले का महत्व अन्यत्र बताया गया है। विभाजन के पश्चात् कोयला के अधिकतर क्षेत्र भारतवर्ष में ही आ गये हैं और इस दृष्टि से भारतवर्ष को कोई हानि नही हुई है। कोयले की खानों मे लगभग 4 लाख व्यक्तियों को प्रतिदिन रोजगार मिलता है।

भारतवर्ष का कोयला दो भागो में बाँटा जा सकता है—अच्छी किस्म का और घटिया किस्म का। अच्छी क़िस्म का कोयला भारतवर्ष मे अपेक्षाकृत कम है। यूरोप और अमेरिकन प्रदेशो की अपेक्षा भारतवर्ष के कोयला की घटिया किस्म का देश औद्योगिक विकास पर प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त भारत मे कोयले के क्षेत्र दूर-दूर फैले हुए है और विशेषत: लोहे के क्षेत्रो के समीप न होने के कारण लोहा और इस्पात के उद्योगो की अच्छी उन्नति नहीं हो सकी। भारतवर्ष के अधिकतर कोयला क्षेत्र समुद्र-तट के समीप अथवा

नौकानयन के योग्य नदियो के किनारे नही हैं, इसलिए परिवहन मे अधिक व्यय होता है।

कोयला का प्रयोग शक्ति के साधन की तरह होने के पश्चात् औद्योगिक क्रान्ति हुई थी। कोयला के प्रयोग से परिवहन, व्यापार और इतना ही नही सभ्यता का भी विकास हुआ है। इसका मुख्य कारण यह था कि कोयला सबसे अधिक सस्ता शक्ति का साधन था परन्तु जल-विद्युत के विकास ने कोयले का यह महत्व कुछ कम कर दिया है तथापि कई कारणो से कोयले का महत्व अब भी बिल्कुल नही भुलाया जा सकता। समीपवर्ती क्षेत्रो मे कोयले का ईंधन अब भी महत्वपूर्ण रहेगा। इसके अतिरिक्त कोयले से कई पदार्थों का उत्पादन किया जाता है जिनको हम गौण पदार्थ कह सकते हैं। कोयले से कोलतार मिलता है जिसका प्रयोग कई कामो के लिए किया, जाता है और उससे कई पदार्थ भी मिलते हैं। कोयले मे गैस बनाई जाती है, कोयला बुझा कर मिलने वाला कोक भी अत्यन्त उपयोगी होता है। कोयले से अमोनिया सल्फेट (रासायनिक खाद) और अमोनिया द्रव भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त कोयले से तेल और कुछ अन्य पदार्थ भी बनाये जाते हैं जिनका उपयोग आधुनिक जगत मे बढता चला जा रहा है। कोयले से विद्युत का उत्पादन भी किया जाता है।

कोयले का उत्पादन 1951 मे 349 लाख मी० टन, 1956 मे 400 लाख मी० टन और 1961 मे 555 लाख मी० टन का हुआ।

तीसरी योजना में (1965-66 मे) कोयला का उत्पादन का लक्ष्य 985 56 लाख मैट्रिक टन रखा गया है और सन् 1970-71 का प्रस्ताविन लक्ष्य 17 करोड से 18 करोड मैट्रिक टन उत्पादन का है।

भारत में कोयले का भण्डार

सर साइरिल फौक्स (Sir Cyril Fox) ने सन् 1932 मे भारत के कोयले के भण्डारों का अनुमान 6,096 करोड मैट्रिक टन लगाया था। नेशनल प्लानिंग कमेटी रिपोर्ट, 1947 ने भी यही आँकडे दिये हैं और प्राय सभी लोगो ने यही अक दिए है। अनुमान है कि नमी-रहित अच्छा निकाला जा सकने योग्य कोयले का परिमाण 2 000 करोड टन ही है और कुल 500 करोड टन कोयला 2,000 फीट गहराई तक पाया जाने वाला अच्छा कोयला है। कोयले की खानो का

पता चलाया जा रहा है और नए सर्वेक्षणों के आधार पर अनुमानो मे परिवर्तन करना पड़ेगा।

कोयला उत्पादन के क्षेत्र—भारतवर्ष मे गोंडवाना चट्टानो मे सबसे अधिक और अच्छे कोयले का अधिकांश मिलता है। असम, राजस्थान तथा कुछ अन्य क्षेत्रों मे टरशियरी कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं। भारत में इस समय लगभग 832 कोयले की खानो से कोयला निकलता है।

विभिन्न राज्यों मे कोयले के मुख्य उत्पादन क्षेत्र इस प्रकार हैं—

पश्चिमी बंगाल—रानीगंज।

बिहार—झरिया, बोकारो, गिरिडीह, राजमहल की पहाड़ी, पालामिऊ, करनपुरा, (औरंगा, हुतार और डालटगंज)।

उड़ीसा—तलचर, सम्भलपुर।
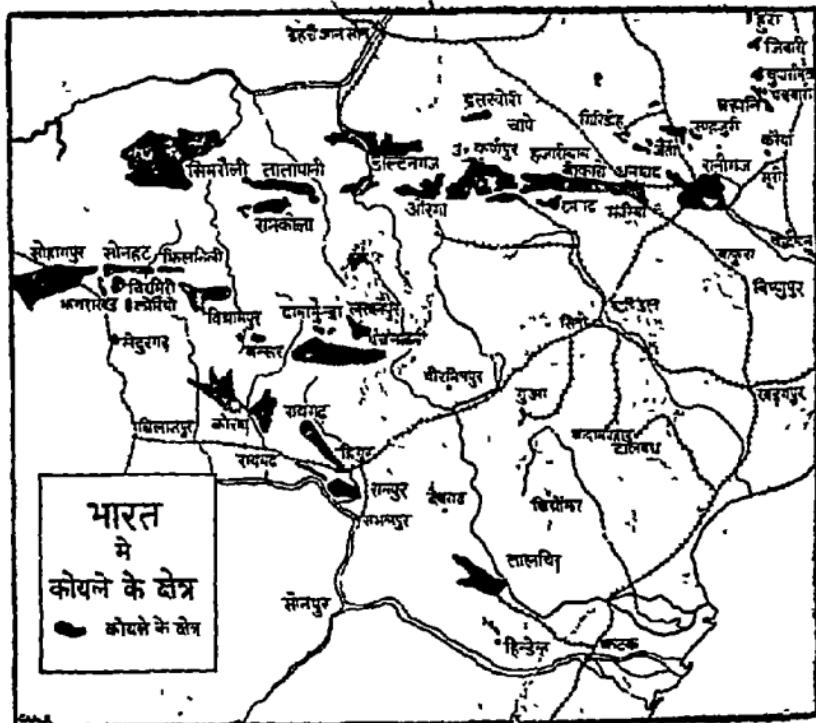
चित्र 28—भारत मे कोयले के क्षेत्र

मध्य प्रदेश—उमरिया, सोहागपुर, सिंगरोली, मोहपानी, शाहपुर, पच-घाटी, बरोरी, बल्लालपुर, रायगढ, छिंदवाडा, पथकेरा, कोपा, कोरवा।

आन्ध्र प्रदेश—सस्ती, तन्दूर, सिंगरैनी, कोठागुदम, येल्लान्दु।

मद्रास—दक्षिण आरकट (नेवेली) मे लिगनाइट कोयले का भण्डार है।

महाराष्ट्र—यवतमाल, चाँदा।

राजस्थान—बीकानेर डिवीजन मे पलाना के समीप लिगनाइट कोयले के क्षेत्र हैं।

असम—नजीरा, माकुम, गोहाटी से 64 किलोमीटर दूर उत्तरी कामरूप जिले मे भूटानघुली स्थान पर कोयले के क्षेत्र का पता चला है।

कश्मीर—रियासी और करेवा क्षेत्र।

गुजरात मे भी लिगनाइट के क्षेत्र हैं।

धातु गलाने लायक और उच्च कोटि का भाप बनाने लायक कोयला झरिया, रानीगज, बोकारो गिरिडीह, करनपुरा और कुछ मध्य प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश की खानो से प्राप्त होता है।

भारतवर्ष पाकिस्तान, श्रीलका, वर्मा, सिंगापुर और होगकोग को कोयला निर्यात करता है।

बिहारी और बगाल से 80% से भी अधिक कोयला प्राप्त होता है। उत्तर प्रदेश मे नगण्य है। भूतत्ववेत्ताओ का मत है कि असम राज्य मे बहुत अच्छी किस्म का और काफी तादाद मे कोयला विद्यमान है। लगभग 30% कोयला रानीगज से और लगभग 50% कोयला झरिया मे प्राप्त होता है।

कोयले का सबसे अधिक उपयोग (लगभग 33%) रेलगाड़ियो के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोहा और इस्पात उद्योग मे, सूती वस्त्र उद्योग मे, ईट पकाने मे, जूट की मिलो मे, स्टीमरो इत्यादि मे भी इसका उपयोग होता है। 5% से भी अधिक कोयला खानो पर ही व्यय हो जाता है।

अभ्रक (Mica)

सबसे अधिक अभ्रक भारतवर्ष मे ही मिलता है। ससार का लगभग $\frac{1}{4}$ अभ्रक भारत मे उत्पादन किया जाता है। अभ्रक का उपयोग आधुनिक युग मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिजली के उत्पादन मे अभ्रक का प्रयोग आवश्यक है। बेतार की तार बर्की, रेडियो और परिवहन के साधनो के विकास मे भी

अभ्रक का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। चश्मे बनाने और काँच को फायर-प्रूफ बनाने में भी अभ्रक का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में अभ्रक का दवाओं में प्रयोग किया जाता है और यज्ञ की वेदी इत्यादि स्थानों को सजाने के लिए और इस प्रकार कागजों और गहनों को सुन्दर बनाने के लिए अभ्रक का प्रयोग प्रचलित है। अभ्रक से कुछ अन्य पदार्थ भी बनाए जाते हैं।

अभ्रक निकालने के लिए कुशल मजदूरों की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में यह काम आदिवासियों के हाथ में है। भारतवर्ष में अभ्रक निकालने में बहुत-सा भाग टूट कर व्यर्थ हो जाता है और सस्ता बेचना पड़ता है।

बिहार के अभ्रक की किस्म बहुत अच्छी है। हजारीबाग बिहार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। गया, मुंगेर और मानभूम भी बिहार के प्रसिद्ध अभ्रक उत्पादन क्षेत्र हैं। आन्ध्र में नैलोर, मद्रास में नीलगिरी, और केरल राज्य के क्षेत्र भी महत्वपूर्ण हैं। राजस्थान में भी अभ्रक मिलता है।

अभ्रक के कुछ मुख्य क्षेत्रों का विभिन्न राज्यों में वितरण इस प्रकार है:—

बिहार— बिहार में अभ्रक की पेटी 96 से 130 किलोमीटर लम्बी और 20 से 25 किलोमीटर तक चौड़ी है। यहाँ "रूबी" अभ्रक मिलता है जिसकी माँग संसार में सर्वत्र है। भारत के कुल अभ्रक का लगभग 75% बिहार राज्य से मिलता है। बिहार में अभ्रक की पेटी हजारीबाग, मुंगेर और मानभूम जिलों में होकर टेढ़ी फैली है।

राजस्थान—अजमेर, जयपुर, भीलवाड़ा और उदयपुर जिले मुख्य हैं।

आन्ध्र प्रदेश—नैलोर जिले में अभ्रक की पेटी लगभग 64 किलोमीटर लम्बी और 8 से 16 किलोमीटर तक चौड़ी है। यहाँ का अभ्रक 'हरा' और घटिया है।

भारतवर्ष में सन् 1961 में 28,195 मैट्रिक टन अभ्रक उत्पादन किया गया था।

सन् 1961 में अभ्रक का निर्यात 26,493 मैट्रिक टन था।

भारतवर्ष का अभ्रक निर्यात के लिए अधिक निकाला जाता रहा है। अभ्रक भारतवर्ष का मुख्य निर्यात रहा है और भारत का अभ्रक खरीदने वाले, इस्पात उत्पादन करने वाले देश संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन और जर्मनी

इत्यादि हैं । अभ्रक का निर्यात अधिकतर कलकत्ता से होता है । ब्राजील अभ्रक के उत्पादन मे स्पर्धा लेने वाला प्रमुख देश है ।

सोना

मूल्य की दृष्टि से सोने का भारतवर्ष के खनिज पदार्थो मे पाँचवां स्थान है । इसका उपयोग भारतवर्ष मे आभूषणो की दृष्टि से ही अधिक है । पहले सोन के सिक्के प्रचलित थे परन्तु अब केवल कोष मे ही सोना मिलता है । कुछ औषधियो मे सोने का विशेष रूप से प्रयोग होता है । खाने के लिए सोने के वर्क भी बनाए जाते हैं ।

भारतवर्ष मे सोने का प्रमुख उत्पादक मैसूर है । मैसूर मे कोलार क्षेत्र प्रसिद्ध है । भारतवर्ष के सोने का 99% भाग कोलार के स्वर्ण-क्षेत्रो से ही मिलता है[1] जहाँ बंगलौर से 64 कि० मी० दूरी पर 6 किलोमीटर से अधिक लम्बी खान हैं, जिनमे एक-चौथाई लाख के लगभग मजदूर काम करते है । शिवसमुन्द्रम से बिजली मिलने के कारण सोना निकालने मे सहायता मिली है । भारतवर्ष मे सोने का उत्पादन निरन्तर घटता जा रहा है । स्वर्ण उत्पादक प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

मैसूर—कोलार, बेल्लारी, हट्टी, रायचूर ।

आन्ध्र प्रदेश —अनन्तपुर, चित्तूर ।

मद्रास —सलेम ।

अन्य राज्य—नदियो द्वारा लाई हुई मिट्टी मे भी थोडी मात्रा मे सोना मिलता है । उडीसा मे सिंघभूम, उत्तर प्रदेश मे बिजनौर, असम राज्य मे ब्रह्मपुत्र की घाटी मे थोडा सोना मिलता है ।

भारत मे सन् 1958 मे लगभग 5 करोड रुपये मूल्य का 5,291 किलोग्राम सोना प्राप्त किया गया था । सन् 1961 मे 591 लाख रुपए मूल्य का 4,668 किलोग्राम स्वर्ण-उत्पादन हुआ ।

---

[1] नवम्बर 1956 मे मैसूर की राज्य सरकार ने ब्रिटिश स्वामियो को 164 लाख रुपया देकर कोलार की स्वर्ण खानो का राष्ट्रीयकरण कर लिया था । इनका स्वामित्व अब केन्द्रीय सरकार ले रही है ।

नमक

नमक भोजन का आवश्यक अङ्ग है और रासायनिक पदार्थ के रूप में भी नमक का प्रयोग किया जाता है।
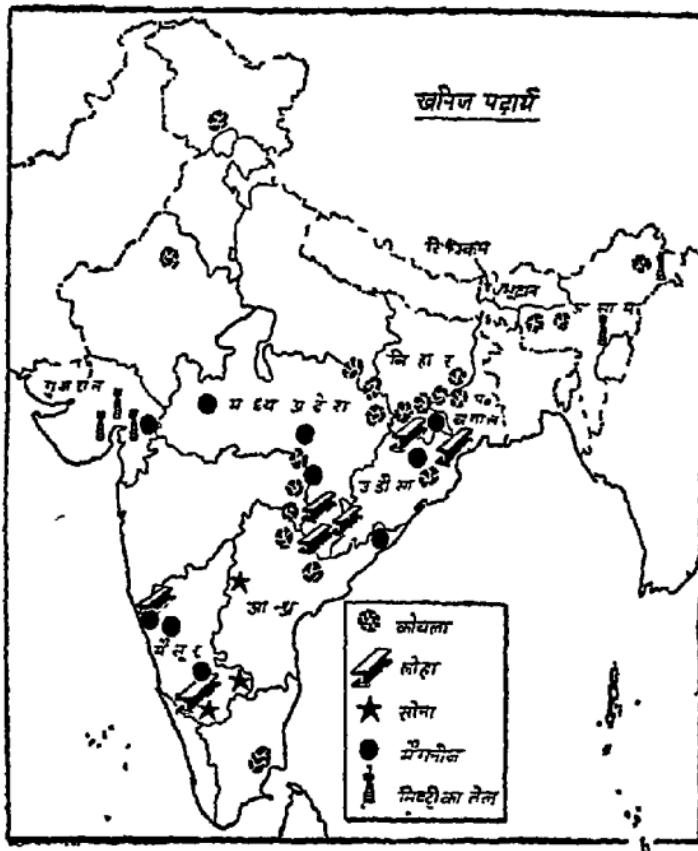
चित्र 29—भारत के खनिज सम्पत्ति के मुख्य प्रदेश

सन् 1951 से भारत नमक में स्वावलम्बी तो है ही, सन् 1957 मे देश मे लगभग 3·7 लाख मैट्रिक टन नमक आवश्यकता से अधिक (निर्यात के लिए) था। सन् 1947, 1948 मे भारत में 4·7 लाख मैट्रिक टन नमक प्रतिवर्ष आयात करना पड़ता था।

उत्पादन—प्रथम योजना मे 1955-56 वर्ष मे उत्पादन का लक्ष्य 31·24 मैट्रिक टन का था। सन् 1953 मे इस लक्ष्य से भी अधिक लगभग 32 लाख मैट्रिक टन नमक का उत्पादन हुआ।

सन् 1960-61 मे नमक के उत्पादन का लक्ष्य 10 करोड मन 37·5 लाख मैट्रिक टन) था जबकि 1958 मे ही 42 लाख मैट्रिक टन नमक उत्पादन
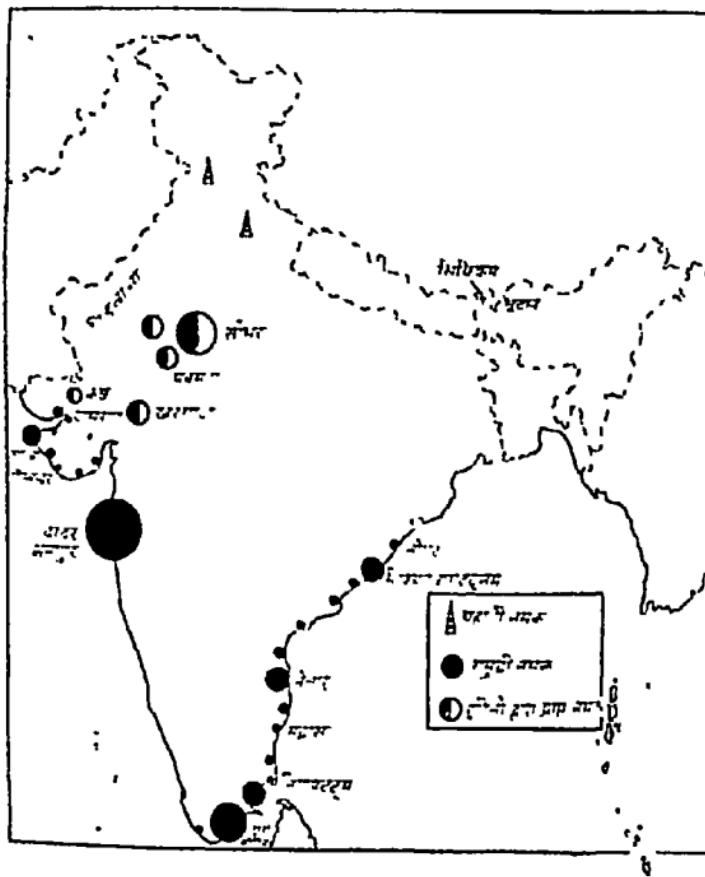
चित्र 30—भारत में नमक उत्पादन के क्षेत्र

किया गया था। 1950-51 मे 27 4 तथा 1961 मे नमक उत्पादन 44·62 लाख मैट्रिक टन था।

तीसरी योजना का लक्ष्य--सन् 1965-66 में नमक उत्पादन का लक्ष्य लगभग 55 लाख मैट्रिक टन रखा गया है।

सन् 1958 से भारतवर्ष मे 2·1 लाख मैट्रिक टन नमक निर्यात किया। नमक उत्पादन मे लगभग 31 हजार व्यक्तियो को रोजगार मिलता है।

नमक प्राप्त करने के तीन मुख्य स्रोत है :—

(1) समुद्र के पानी से, (2) झीलो से, और (3) नमक की पहाडी से। पहाड़ी नमक हिमाचल प्रदेश मे मण्डी से मिलता है। झीलो के नमक के लिए राजस्थान प्रसिद्ध है। समुद्री पानी का नमक महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, आन्ध्र प्रदेश और पश्चिमी बगाल मे बनाया जाता है।

राज्यो मे नमक उत्पादन के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

महाराष्ट्र और गुजरात—कच्छ के रन, काठियावाड़ और सूरत से दक्षिण की ओर तटवर्तीय क्षेत्रो मे। ओखा के समीप तथा खम्भात की खाडी के पूर्व मे बहुत नमक तैयार किया जाता है। नमक तैयार करने का मौसम प्रायः जनवरी से जून तक रहता है। कच्छ में खारागोडा कुडा, जस-दान दहीगाम, बजाना प्रमुख हैं।

पूर्वी तट—गजाम के लेकर तूतीकोरन तक। मुख्य केन्द्र नानपाड़ा, पेन्नू गुड्डरू, मद्रास, कुड्डालोर और तूतीकोरन हैं।

पश्चिमी बगाल—कोन्टाई तट मुख्य है।

मैसूर और केरल—तटवर्तीय क्षेत्र।

राजस्थान—साँभर झील, पचभद्रा और डीडवाना मुख्य हैं। साँभर झील नमक का मुख्य स्रोत है जिसका क्षेत्रफल 233 वर्ग किलोमीटर है।

हिमाचल प्रदेश—मण्डी जिले से पहाडी नमक मिलता है।

देश में औद्योगिक उन्नति के साथ-साथ नमक का उपभोग बढा है। खाने के नमक की कोटि के सुधार की ओर ध्यान दिया गया है। भारतीय नमक का मुख्य ग्राहक जापान है।

कच्चा लोहा

आज के युग में लोहा अत्यन्त महत्वपूर्ण धातु है। औद्योगिक विकास के लिए लोहा आवश्यक अंग है। मशीनें, पुर्जे, इमारत का सामान, परिवहन के साधन और दैनिक उपयोग मे आने वाले पदार्थों मे लोहे का अत्यधिक महत्व है। वैज्ञानिक प्रगति और इन्जीनियरिंग का विकास लोहे के ऊपर ही

निर्भर है। लोहे को एक विशेष रूप मे परिवर्तित करके औषधि की तरह भी प्रयोग किया जाता है।

ससार के कच्चे लोहे के भण्डरो का एक चौथाई भारतवर्ष मे है।

सम्भावना है कि मैगनेटाइट किस्म के कच्चे लोहे के भण्डार 164 करोड मैट्रिक टन के लगभग हैं। हैमेटाइट किस्म के कच्चे लोहे के भण्डार 540 करोड मैट्रिक टन हैं।

लाइमोनाइट किस्म और स्पेथिक कच्चे लोहे के भण्डार—बङ्गाल मे लगभग 50 करोड मैट्रिक टन और कुल भण्डार सम्भवत: 2 अरब मैट्रिक टन से अधिक हैं।

सब प्रकार के कच्चे लोहे के कुल भण्डार (Reserves) 64,210 लाख टन[1] प्रमाणित हो चुके है। सम्भावना है कि भारत मे कच्चे लोहे के भण्डार 2,12 400 लाख टन के लगभग हैं।[2]

अच्छी कोटि का कच्चा लोहा कुछ थोडे क्षेत्रो मे ही मिलता है जिनमे प्रमुख ये हैं—

(1) सिघभूम (बिहार) और उडीसा—टाटा आयरन स्टील एण्ड कम्पनी का लोहा-इस्पात का कारखाना सिंघभूम क्षेत्र मे ही स्थित है। यहाँ के कच्चे लोहे मे 60 से 65 प्रतिशत तक लोहे का अश मिलता है और ससार के सर्वश्रेष्ठ लोहे मे से है।

मयूरभज की मुख्य खानें गुरुमाहीसनी सुलेपत और बदाम पहाड हैं।

बिहार मे कच्चे लोहे की प्रमुख खाने नोआमण्डी और गुआ है। अन्य खाने पनसीरा बूरू और बुदाबूरू है।

दुर्गापुर (पश्चिमी बगाल) के इस्पात के कारखाने के लिये इन्ही क्षेत्रो से लोहा मिलता है। राउरकेला इस्पात कारखाने को लोहा बोनाई और समीवर्ती क्षेत्रो मे मिलता है। सिघभूम की पेटी के समीप मैंगनीज, चूने का पत्थर इत्यादि खनिज भी मिलते हैं और जल परिवहन तथा रेल की सुविधाएँ हैं।

(2) मैसूर—मैसूर राज्य मे हैमेटाइट और क्वार्ट्ज के वृहद् भण्डार है। मैसूर आयरन एण्ड स्टील लि० को कच्चा लोहा बाबाबूदन की पहाडियो से

---

[1] 652 करोड मैट्रिक टन से ऊपर।

[2] लगभग 2,158 करोड मैट्रिक टन।

मिलता है जो सिंघभूम क्षेत्र के लोहे के ही समान हैं। लोहे का अंश 60 प्रतिशत के लगभग है। केम्मानगुन्दी प्रसिद्ध खान है।

(3) मद्रास मे सलेम जिला मुख्य है।

(4) **मध्य प्रदेश**—वस्तर, दुर्ग और जबलपुर जिले मुख्य हैं। दाली, राजहारा, रावघाट, और वेलाडीला पहाड़ियाँ जो वस्तर और दुर्ग जिलो मे फैली हैं, कच्चे लोहे (हैमेटाइट) की मुख्य स्रोत हैं। भिलाई के स्टील कारखाने के लिये इन्ही पहाड़ियो से कच्चा लोहा मिलता है।

(5) **अन्य क्षेत्र—बैलाडीला पर्वत श्रेणी** जो मध्य प्रदेश मे फैली होने के साथ आन्ध्र प्रदेश मे भी है हैमेटाइट किस्म के कच्चे लोहे का मुख्य स्रोत है परन्तु यहाँ कोयला नही है। यहाँ से कच्चा लोहा प्राप्त करना भी कठिन पड़ता है। बङ्गाल मे भी कच्चे लोहे के भण्डार हैं परन्तु उनमे फास्फोरस की अधिकता है और लोहे का अंश कम (35 से 45 प्रतिशत तक) मिलता है। बङ्गाल मे सुगमता से प्राप्त होने वाले कच्चे लोहे का शोषण हो चुका है। गोआ मे अच्छा कच्चा लोहा मिलता है।

कच्चे लोहे का उत्पादन 1955-56 मे लगभग 48 लाख मी० टन था। 1960 मे यह 117 लाख मी० टन हो गया।

निर्यातो मे निरन्तर वृद्धि हुई है।

सन् 1960-61 मे कच्चे लोहे का उत्पादन लक्ष्य 117 लाख मैट्रिक टन था परन्तु उत्पादन 110 7 लाख मैट्रिक टन हुआ।

तीसरी योजना का लक्ष्य—सन् 1965-66 मे कच्चे लोहे का उत्पादन लक्ष्य 305 लाख मैट्रिक टन है।

प० बगाल मे बाकुरा जिले मे एक 34 वर्ग किलोमीटर के कोरला क्षेत्र मे कच्चे लोहे के भण्डारो (अनुमानत. 111 लाख मैट्रिक टन) का पता चला है।

कच्चे लोहे का निर्यात व्यापार 1 जुलाई, 1957 से पूर्णतया स्टेट ट्रेडिंग कॉरपोरेशन द्वारा किया जाता है।

मुख्य ग्राहक—हमारे कच्चे लोहे के प्रमुख ग्राहक देश महत्व के क्रम मे जापान, जेकोस्लोवेकिया, इटली, पोलैण्ड इत्यादि है।

8 मार्च, 1960 को जापान के साथ एक समझौता हुआ था जिसके अनुसार भारतवर्ष मध्य प्रदेश के वस्तर जिले की वेलाडीला आइरन ओर प्रोजेक्ट

से 15 वर्ष तक 40 लाख टन प्रति वर्ष कच्चा लोहा देगा।[1] इसके अतिरिक्त जापान को 20 लाख टन कच्चा लोहा किरीबुरू क्षेत्र (Kiriburu area) से भेजा जायगा।[2]

किरीबुरू क्षेत्र मे कच्चे लोहे के उत्पादन का विकास जापान की सहायता मे किया जा रहा है और सन् 1963 से उत्पादन होने की आशा है। किरीबुरू क्षेत्र से दुर्गापुर के इस्पात कारखाने तथा बोकारो के नए इस्पात कारखाने को भी कच्चा लोहा मिलेगा। तीसरी पचवर्षीय योजना मे बेलाडीला भडारो का विकास किया जायगा और तीसरी योजना की अवधि के अन्त की ओर एक नई खान से उत्पादन कार्य प्रारम्भ किया जायगा।

तीसरी योजना मे किरीबुरू और बेलाडीला क्षेत्रो के अतिरिक्त विकसित किए जाने वाले कच्चे लोहे के अन्य क्षेत्र ये हैं —

महाराष्ट्र रेडी

उड़ीसा—मुकिन्दा, दैतेरी,

मैसूर— बेल्लारी-होस्पेत।

मैंगनीज

इस्पात बनाने मे मैंगनीज का प्रयोग किया जाता है। इसलिए मैंगनीज अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। मैंगनीज रासायनिक उद्योगो मे भी प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त बिजली का सामान, कांच और चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने मे भी मैंगनीज का प्रयोग किया जाता है। सोवियत रूस और गोल्ड कोस्ट (घाना) के बाद ससार मे सबसे अधिक मैंगनीज भारतवर्ष से ही मिलता है। मैंगनीज की खानो मे दस हजार के लगभग मजदूरो को रोजगार मिलता है।

भारतवर्ष मे सबसे अधिक मैंगनीज मध्य प्रदेश से मिलता है।

कच्चा मैंगनीज (मैंगनीज ओर) के प्रमुख उत्पादन क्षेत्र निम्नलिखित हैं:—

मध्य प्रदेश—बालाघाट, छिन्दवाडा और जबलपुर।

---

[1] The Times of India Year Book, 1960-61

[2] See Third Five Year Plan, p. 530.

महाराष्ट्र—भण्डारा, नागपुर, पंचमहल, छोटा उदयपुर और रत्नागिरि।

मैसूर– बेल्लारी, सन्दूर, शिमोगा, चितलद्रुग, कदूर, तुमकुर।

आन्ध्र—विशाखापट्टनम् जिला।

विहार—छोटा नागपुर प्रदेश मे सिंघभूम और कल्हन प्रसिद्ध हैं। छैवासा मे भी मैंगनीज मिलता है।

उड़ीसा—गंगपुर, क्योझर, गजाम, और बोनाई।

राजस्थान – वासवाडा।

सन् 1932 के पश्चात् विशाखापट्टनम-रायपुर रेलवे बनने और विशाखा-पट्टनम बन्दरगाह खुल जाने से मैंगनीज के निर्यात मे विशेष सुविधा हो गई।

भारतवर्ष मे सन् 1961 मे मैंगनीज का उत्पादन 1,230 हजार मैट्रिक टन और निर्यात 544 हजार मैट्रिक टन था। सन् 1960 का उत्पादन 1,199 हजार मैट्रिक टन था और निर्यात 110 हजार मैट्रिक टन था।

भारत के अतिरिक्त संसार के अन्य प्रमुख उत्पादन देश सोवियत सघ, ब्राजील, घाना और दक्षिणी अफ्रीका, क्यूवा (पश्चिमी द्वीप-सवूह) और सयुक्त राज्य अमरीका हैं।

भारतवर्ष से मैंगनीज का निर्यात इङ्गलैंड, जापान, संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस, इटली और वेल्जियम आदि को किया जाता रहा है, परन्तु भारतवर्ष में मैंगनीज का उत्पादन सन् 1940 से प्राय: निरन्तर घटता चला आ रहा है और मैंगनीज उत्पादन करने वाले अन्य देशों से स्पर्धा वढती गई है।

पैट्रोलियम (खनिज तेल)

उद्योगों के लिए ईंधन की दृष्टि से खनिज तेल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जहाँ बिजली नही है वहाँ प्रकाश प्राप्त करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। पैट्रोलियम से कई प्रकार के तेल बनाए जाते हैं, जिनमें से मशीनो का तेल और परिवहन के साधनो में काम आने वाला तेल और ईंधन की तरह प्रयोग होने वाला तेल अधिक महत्वपूर्ण हैं। परिवहन की उन्नति के साथ-साथ पैट्रोलियम की माँग निरन्तर वढती जा रही है। पैट्रोलियम से कुछ वस्तुएँ भी वनाई जाती हैं जिनमें गैसोलीन मुख्य हैं।

पैट्रोलियम नवीन युगीन चट्टानो से प्राप्त होता है जो प्राय: छेददार होती हैं।

भारतवर्ष में तेल शुद्ध करने (Oil refining) का कार्य निजी क्षेत्र में निम्नलिखित विदेशी कम्पनियाँ करती है—

(1) स्टैण्डर्ड वैक्यूम कम्पनी (अमेरिका) जिसका कार्य अब ऐसो (Esso) ने ले लिया है, (2) बर्मा शैल (इङ्गलैंड), और (3) कालटेक्स (अमेरिका)। पहली दो कम्पनियो की रिफायनरीज (Refineries) बम्बई के समीप ट्रोम्बे द्वीप मे हैं। काल्टेक्स की रिफायनरी आन्ध्र में विशाखापट्टनम में है।

असम ऑइल कम्पनी अकेली कम्पनी है जो खनिज तेलो के उत्पादन और स्वदेशी उत्पादन का उपयोग करती है।

तीसरी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में चार रिफाइनरीज स्थापित की गई है—(1) असम राज्य में गोहाटी के पास नूनमटी में (रूमानिया की सहायता से), (2) बिहार मे बरौनी में (सोवियत सघ की सहायता से) एक सार्वजनिक कम्पनी इण्डियन रिफाइनरीज लिमिटेड 20 अगस्त, 1958 को स्थापित हुई थी जो उपरोक्त दोनो रिफाइनरीज का नियन्त्रण और प्रबन्ध करती है।

तीसरी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र मे एक तीसरी रिफाइनरी गुजरात राज्य में कोयली मे स्थापित की गई है और चौथी कोचीन मे स्थापित की जा रही है।

खनिज तेल की खोज—भारतवर्ष मे खनिज तेल की खोज का कार्य चार एजेन्सियो के द्वारा हो रहा है;—(1) असम ऑइल कम्पनी, (2) ऑइल इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, (3) स्टैनवैक प्रोजेक्ट और (4) ऑइल एण्ड नैचुरल गैस कमीशन। पहली दो एजेंसियाँ असम राज्य में, तीसरी प० बगाल मे और चौथी पजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और गुजरात मे अनुसन्धान कार्य करती है। भारत मे तेल क्षेत्रो के अनुसन्धान 10,36,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रो मे करने का प्रस्ताव है।

खनिज तेल के क्षेत्र—भारतवर्ष मे खनिज तेल के वर्तमान क्षेत्र और सम्भावित क्षेत्र मुख्यतया निम्नलिखित हैं :—

असम—डिगबोई, बापापग, हसापग, नहारकाट्या, रुद्र सागर, मोरन, हुगरीजन, शिवसागर।

प० बगाल—अनुसधान मे अभी तक सफलता नही मिली है।

पू० पजाब—ज्वालामुखी, जानौरी, होशियारपुर।

गुजरात—खम्भात और अंकलेश्वर तथा कालोल क्षेत्र ।

उत्तर प्रदेश—गगा की घाटी मे सम्भावनाएँ हैं । वदायूँ के निकट उभानी मे तेल मिला है ।

राजस्थान—जैसलमेर जिले मे सम्भावनाएँ हैं; कोयला, रामगढ, देवा टैनोट, किशनगढ स्थानों मे अन्वेषण कार्य किया गया है ।

मद्रास—कावेरी बेसिन मे जद्रास ।

जम्मू—मरसलगढ ।

अकलेश्वर क्षेत्र (गुजरात) से ट्रॉम्बे में स्थित वर्मा शैल रिफाइनरीज में शुद्ध करने के लिए 2 सितम्बर, 1961 से खनिज तेल भेजा जाने लगा है ।

खनिज तेल के परिवहन के लिए पाइपलाइन—ऑयल इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड ने) जो भारत सरकार और बर्मा ऑइल कम्पनी की साझेदारी से बनाई
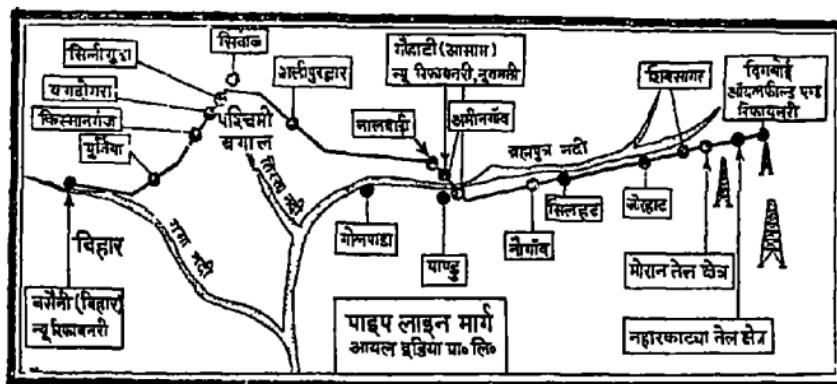
चित्र 31—पाइपलाइन मार्ग

गई है) खनिज तेल के परिवहन के लिए एक पाइपलाइन बिछाई है जो 1,158 किलोमीटर से भी अधिक लम्बी है । पहले 16 इन्च (40-64 से० मी०) व्यास की क्रूड ऑइल पाइपलाइन मोरन, शिवसागर नजीरा, जोरहट, सिलहट, नौगाँव होकर गौहाटी स्थित नूनमती की रिफाइनरी तक जाती है । यह दूरी लगभग 418 कि० मी० है । तदनन्तर 35-36 सेन्टीमीटर व्यास के पाइप द्वारा गौहाटी से पश्चिम की ओर बिहार स्थित रिफाइनरी बरौनी को जोडा गया है, यह दूरी लगभग 740 किलोमीटर है खनिज तेल-उत्पादनो के परिवहन

के लिए वाद में बरौनी से पश्चिम की ओर तथा बरौनी से कलकत्ता तक पाइप लाइन बिछाने का प्रस्ताव भी (तीसरी योजना में) है।

जिन देशों से हम पैट्रोलियम मँगाते हैं उनमें ईरान सर्वप्रमुख है। संयुक्त राज्य अमेरिका, वर्मा, रूस और बोर्नियो से भी पैट्रोलियम मँगाते हैं।

तांबा

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही तांबे का महत्व सिक्के और वर्तन बनाने की दृष्टि से रहा है। प्राय: पवित्र कार्यों में तांबे के वर्तनों को भारतवर्ष में अधिक महत्व मिलता है। आधुनिक काल में बिजली के सामान में तांबे का प्रयोग होने के कारण तांबे की माँग अधिक बढ़ गई है।

भारतवर्ष में तांबा, चांदी, सोना और लोहा इत्यादि धातुओं के साथ ही मिलता है। कच्चे तांबे के लिए घाटशिला बिहार का क्षेत्र महत्वपूर्ण है जहाँ से 10 किलोमीटर दूर पर इण्डियन कॉपर कॉरपोरेशन का स्मेल्टिंग प्लान्ट है। वास्तव में यही एक क्षेत्र है जहाँ से तांबा मिलता है।

अन्य क्षेत्र जहाँ से कच्चा तांबा प्राप्त किया जा सकता है, ये हैं :—

बिहार– सिंघभूम (रोम सिद्धेश्वर क्षेत्र में भन्डार 207 लाख टन)

पश्चिमी बंगाल—जलपाइगुड़ी और दार्जिलिंग

राजस्थान—खेतड़ी और दरवो (खेतड़ी के भन्डार 980 लाख टन)

सिक्किम—रंगपो क्षेत्र

उत्तर प्रदेश—टेहरी गढ़वाल

आन्ध्र प्रदेश— अग्निगुंटल, अनन्तपुर—

राजस्थान, उत्तर प्रदेश, सिक्किम और आन्ध्र प्रदेश में तांबे के अन्वेषण का काम जारी है।

सन् 1961 में भारत में कच्चे तांबे का उत्पादन 4 23,000 मैट्रिक टन था और तांबे का आयात लगभग 62 061 मैट्रिक टन (धातु) था।

चांदी

चांदी का महत्व भारतवर्ष में आभूषणों और सिक्कों की दृष्टि से विशेष रहा है, परन्तु चांदी के वर्तन, गुलदस्ते और वर्क इत्यादि भी बनाये जाते हैं और इसका औषधियों में भी प्रयोग किया जाता है।

भारतवर्ष में अधिकतर चांदी वर्मा में पाई जाती थी, परन्तु सन् 1937 में वर्मा के अलग हो जाने से चांदी के क्षेत्र नहीं के बराबर रह गये हैं।

मैसूर में कोलार के क्षेत्रो से चाँदी मिलती है। मद्रास और मैसूर मे भी थोड़ी-सी चाँदी मिलती है परन्तु इससे हमारी आवश्यकताएँ पूरी नही होती और हमे चाँदी प्रतिवर्ष आयात करनी पडती है। सन् 1961 मे भारत मे चाँदी का उत्पादन 5,941 किलोग्राम था।

क्रोमाइट

क्रोमाइट का प्रयोग क्रोम बनाने, फौलाद बनाने, और चमडा बनाने तथा रँगने इत्यादि मे किया जाता है। सबसे अधिक क्रोमाइट उड़ीसा मे मिलता है और बिहार एव मैसूर, इत्यादि मे भी प्राप्त किया जाता है। अधिकतर क्रोमाइट इगलैंड, अमेरिका, जर्मनी और नार्वे-स्वीडन को निर्यात कर दिया जाता है।

क्रोमाइट के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

बिहार—सिंघभूम जिला।

मैसूर—मैसूर और हसन जिले।

महाराष्ट्र—रत्नागिरि, सावंतवाडी।

आन्ध्र प्रदेश—कृष्ण जिला।

मद्रास—सलेम जिला।

उड़ीसा—क्योझर जिला।

सन् 1961 मे 46 हजार मैट्रिक टन क्रोमाइट उत्पादन हुआ था और 41 हजार मैट्रिक टन निर्यात हुआ था। 1960 मे उत्पादन 100 हजार मैट्रिक टन था और निर्यात 41,000 मैट्रिक टन था।

बॉक्साइट

बॉक्साइट से अल्युमिनियम बनाया जाता है। बॉक्साइट मे भारतवर्ष धनी कहा जा सकता है। इसके क्षेत्र मुख्यत: असम, मध्य प्रदेश, मद्रास और महाराष्ट्र के कुछ भाग है। सन् 1955 मे उत्पादन का मूल्य लगभग 8 लाख रुपये और मात्रा लगभग 82 हजार मैट्रिक टन थी। सन् 1961 मे लगभग 47 लाख रु० का 476 हजार मैट्रिक टन बॉक्साइट प्राप्त हुआ।

टगस्टन

इसका प्रयोग बिजली के बल्ब बनाने और अच्छी प्रकार का इस्पात बनाने इत्यादि मे किया जाता है। इसके क्षेत्र मुख्यत: सिंघभूम, राजस्थान और मध्य प्रदेश मे है।

खड़िया (Gypsum)

खड़िया का उपयोग कागज उद्योग, सीमेंट उद्योग तथा उर्वरक बनाने में किया जाता है। भारत में खड़िया के भण्डार कई भागों में हैं जिनमें से मुख्य ये हैं—

राजस्थान—जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर;

मद्रास—तिरुचिरापल्ली जिला और

उत्तर प्रदेश—टेहरी-गढ़वाल।

हिमालय प्रदेश तथा पश्चिमी भारत के अन्य भागों में भी खड़िया के भण्डार विद्यमान होने की सम्भावनाएँ हैं। देश में खड़िया के कुल भंडार 9,976 लाख मैट्रिक टन के लगभग हैं जिसके 90 प्रतिशत से अधिक भंडार राजस्थान में हैं।

सन् 1961 में भारत में खड़िया का उत्पादन 53-56 लाख रुपये मूल्य का लगभग 8,66,000 मैट्रिक टन था।

मैग्नेसाइट

मैग्नेसाइट का उपयोग मैग्नेशियम साल्ट, धात्विक मैग्नेशियम, तथा रिफ्रेक्टरी ईंटें बनाने में किया जाता है। मैग्नेसाइट के प्रमुख उत्पादन क्षेत्र मद्रास से सलेम और मैसूर में हसन (Hassan) और मैसूर हैं।

मैग्नेसाइट के भंडार निम्नलिखित क्षेत्रों में हैं—

मद्रास—सलेम।

मैसूर—हसन, कुर्ग और मैसूर।

उत्तर प्रदेश—अल्मोड़ा।

गुजरात—इडर।

राजस्थान—डूँगरपुर।

बिहार—सिंघभूम।

भारत में सन् 1961 में लगभग 35 लाख रु० मूल्य का 210 हजार मैट्रिक टन मैग्नेसाइट का उत्पादन हुआ था।

अन्य खनिज पदार्थ

चीनी मिट्टी, भट्टी बनाने की मिट्टी, चूने का पत्थर, इमारती पत्थर और रांगा इत्यादि अन्य महत्वपूर्ण धातुएँ भी भारतवर्ष में मिलती हैं।

संक्षेप

यद्यपि कुछ खनिज पदार्थों की भारत में कमी है परन्तु कुल मिला कर खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से भारत को सम्पन्न कहा जा सकता है। कच्चा लोहा, अभ्रक और मैंगनीज के उत्पादन की दृष्टि से तो भारत की गणना संसार के प्रमुख देशों मे की जाती है। कच्चा तांबा, पेट्रोलियम आदि का आयात करना पड़ता है परन्तु इन खनिज पदार्थों की देश मे खोज जारी है और ऐसे क्षेत्र मिले हैं जहां इनके भण्डार हैं। कच्ची धातु के रूप में देश मे खनिज पदार्थों का निर्यात कम किया गया है और उन पर आधारित उद्योगों का देश में विकास किया जा रहा है।

प्रश्न

1. निम्नलिखित के (अ उत्पादन क्षेत्र, (आ) उपयोग, (इ) विक्रय क्षेत्र पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए—
   मैंगनीज, कोयला, पेट्रोलियम, अभ्रक और लोहा।
2. लोहा उद्योग से सम्बन्धित खनिज पदार्थ भारत मे कहां मिलते हैं, एक चित्र मे दिखाइए। इनके वितरण का लोहा-इस्पात उद्योग के केन्द्रीयकरण पर क्या प्रभाव पडा है ?

अध्याय 12

शक्ति-संसाधन

(Sources of Power)

उत्पादन के लिए शक्ति संसाधनों की आवश्यकता होती है। मनुष्य स्वयं शक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है, परन्तु औद्योगिक उन्नति के लिए मनुष्य को अन्य शक्ति के साधनों का भी प्रयोग करना पड़ता है। आरम्भ में मनुष्य ने पशुओं से सहायता ली, परन्तु अब मशीनों का अधिक प्रयोग होने लगा है जिनमें ईंधन, तेल और पानी की शक्ति का प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष में शक्ति के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं—(1) मनुष्य, (2 पशु (3) हवा, (4; कोयला, (5) तेल, (6) लकड़ी का ईंधन, (7) पानी, और (8) अणु शक्ति।

मनुष्य-शक्ति - मनुष्य-शक्ति की अत्यधिक आवश्यकता होती है। मनुष्य उत्पादन के लिए दूसरी शक्तियों का भी सहारा लेता है परन्तु वह स्वयं भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतवर्ष में जनसंख्या तो अधिक है परन्तु कुशलता की कमी है। मनुष्य-शक्ति का उचित उपयोग करने के लिए उसकी कुशलता बढ़ाना आवश्यक है, जिसके लिए शिक्षा, पौष्टिक भोजन इत्यादि की आवश्यकता है।

पशु-शक्ति—पशुओं का भी शक्ति के साधनों में प्रमुख स्थान है। भारतवर्ष की पशु-शक्ति के सम्बन्ध में अलग अध्याय में बताया जा चुका है और सुधार की आवश्यकता भी बताई गई है।

वायु-शक्ति—हवा हमें प्रकृति के द्वारा बिना मूल्य मिलती है और इससे बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं। हवा के द्वारा आटे की चक्कियाँ बहुत पुराने समय से चलाई जाती हैं। भारतवर्ष में इस शक्ति को प्रयोग में लाने की अधिक सम्भावना नहीं है।

कोयला-शक्ति—भारतवर्ष के अधिकतर उद्योग धन्धों में कोयला-शक्ति

का प्रयोग किया जाता है। सस्ता मिलने के कारण कोयले का प्रयोग बहुत बढ गया है और वस्तुत: कोयले ने औद्योगिक क्षेत्र मे भारतवर्ष में अत्यधिक विकास ला दिया है। कोयले से रेलें और जहाज चलाये जाते हैं। घरेलू कामों मे कोयले का प्रयोग किया जाता है और कारखानो मे भी कोयले से इस्पात बनाया जाता है, काँच गलाया जाता है और अनेक उद्योग-धन्धों में कोयले का प्रयोग किया जाता है। कोयले को ढोने मे परिवहन-व्यय अधिक पडता है इसलिए कोयले के उत्पादन का अधिक लाभ स्थानीय उद्योगों के लिए ही किया जा सकता है। कोयले मे बिजली, गैस, तथा अन्य कई पदार्थ भी प्राप्त किये जाते हैं। विस्तार के लिये पृथक अध्याय देखिए।

तेल-शक्ति—तेल तिलहनो से भी निकाला जाता है परन्तु खनिज तेल का अधिक महत्व है। तेल का प्रयोग घरेलू कामो मे अतिरिक्त जहाजो, रेलो, मोटरों, अनेक प्रकार की मशीनों और इन्जनो में किया जाता है। तेल नवीन-युगीन चट्टानों से प्राप्त होता है। भारतवर्ष मे तेल के स्रोत कम हैं और हमे विदेशो का मुँह ताकना पडता है। तेल के स्थानापन्न पदार्थ खोजने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। देश मे खनिज तेल के क्षेत्र अलग अध्याय में बताए गए हैं।

लकड़ी से मिलने वाली ईंधन शक्ति—जहाँ लकड़ी सस्ती मिलती है अथवा जहाँ कोयला सुविधा से प्राप्त नही होता वहाँ उद्योग-धन्धों मे भट्टियो में लकडी के ईंधन का प्रयोग किया जाता है। ईंधन की इस माँग की पूर्ति के लिए कई स्थानो में पेड़ो को काट लिया गया है और इसका जलवायु पर गम्भीर प्रभाव पडा है। यदि भारतवर्ष के वनों का पूर्णतया उचित ढग से प्रयोग किया जाय तो लकड़ी से बहुमूल्य शक्ति प्राप्त की जा सकती है और उसके दुष्परिणाम से भी बचा जा सकता है।

जल-शक्ति—उपर्युक्त विवरण मे ज्ञात होगा कि भारतवर्ष मे कोयला, तेल, लकड़ी इत्यादि की शक्ति सीमित रूप मे ही मिल सकती है। परन्तु भारत-वर्ष मे जल शक्ति बहुत अधिक प्राप्तव्य है। पानी से आटे की चक्कियाँ बहुत पुराने समय से चलाई जाती हैं; परन्तु जल विद्युत के उत्पादन और प्रयोग द्वारा जल-शक्ति का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। जलविद्युत का प्रयोग उद्योग-धन्धो के लिए ही महत्व नही रखता वरन् इसके द्वारा सिंचाई और परिवहन के साधनो मे भी बहुत उन्नति हो जायगी। लागत की दृष्टि

से भी कोयला, तेल और लकडी की अपेक्षा विजली सस्ती पडती है। विशेषत विजली को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का खर्चा बहुत कम होता है। इस प्रकार उद्योगो को विकेन्द्रित और सुयोजित किया जा सकता है। इसमे सन्देह नही कि जल-विद्युत के उत्पादन के लिये आरम्भ मे, अधिक पूँजी की आवश्यकता है, परन्तु यदि जल शक्ति का पूर्ण सदुपयोग कर लिया जाय तो देश की आर्थिक उन्नति बहुत शीघ्र की जा सकती है। इसका महत्व इसलिए और भी अधिक है कि यदि जल विद्युत का उत्पादन नहीं करते तो नदियो का वह पानी, जिसे महान् शक्ति उत्पन्न करने के काम मे लाया जा सकता है समुद्र मे व्यर्थ ही चला जाता है, यही नही, बाढो के द्वारा प्रति वर्ष आपत्तियाँ और आर्थिक क्षति सहनी पडती है। कोयले का प्रयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है, परन्तु जल-विद्युत स्वास्थ्य के लिए सहायक हो सकती है। जल-विद्युत ग्राम्य उद्योग-धन्धो मे और गाँवो की आर्थिक और सामाजिक दशा मे महान् उन्नति ला सकेगी।

अणु-शक्ति (Atomic Energy)—भारत मे हाल ही मे अणु-शक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। यदि इसमे सफलता मिली, जैसी कि आशा है, तो देश के भावी आर्थिक विकास मे बहुत सहायता मिलेगी। महाराष्ट्र मे, महाराष्ट्र और गुजरात की सीमा के निकट तारापुर मे अणुयन्त्र स्थापित हो चुका है और सन् 1968 तक राजस्थान मे तापसागर मे (कोटा के निकट) दूसरा अणु सयन्त्र पूरा होने की आशा है। तीसरा अणु-शक्ति केन्द्र मद्रास राज्य मे महाबलीपुरम् के निकट बनाया जाएगा।

भारतवर्ष मे बिजली का विकास

बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक के मध्य तक बिजली-उत्पादन की प्रगति बडी धीमी थी। सन् 1925 मे इसकी कुल स्थापित क्षमता केवल 1,62,341 किलोवाट थी। इसके बाद हुई प्रगति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि सार्वजनिक उपयोग के बिजलीघरो की स्थापित क्षमता जो 1945 मे नौ लाख किलोवाट के लगभग थी, मार्च 1962 मे 50, 16,883 किलोवाट तक जा पहुँची।

सन् 1925 तक बिजली-विकास का कार्य मुख्यत: निजी क्षेत्र की कम्पनियो के ही हाथ मे था। 1925-30 के बीच जाकर कुछ राज्यो ने बिजली विकास की योजनाएँ आरम्भ की। मार्च, 1960 मे प्राइवेट कम्पनियो के अधिकार मे

79 8 प्रतिशत सार्वजनिक विजली घर तथा 33 6 प्रतिशत कुल स्थापित क्षमता थी।

ग्राम्य क्षेत्रो मे विजली लगाने के क्षेत्र मे अभी तक केवल आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, केरल, पजाब, प० बंगाल, विहार, मद्राम महाराष्ट्र तथा मैसूर मे कुछ प्रगति हुई है।
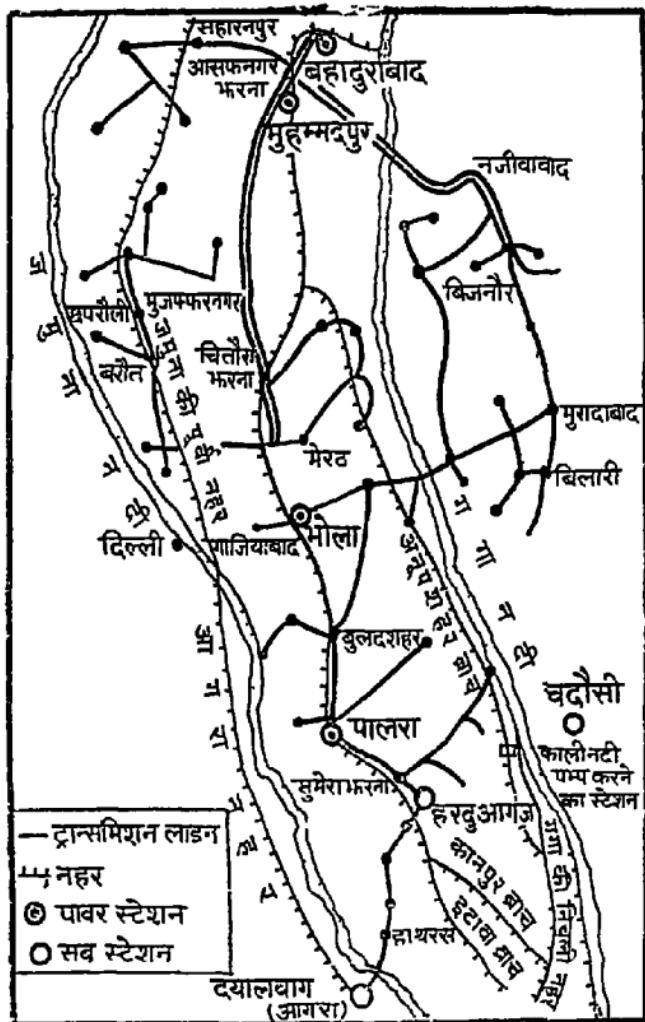
चित्र 32—उत्तर प्रदेश के शक्ति केन्द्र

भारत के विभिन्न राज्यो मे जल-विद्युत का विकास निम्न प्रकार हुआ है—

पूर्वी बगाल—पूर्वी पजाब मे ऊहल नदी से 50 हजार किलोवाट जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है। ऊहल नदी मण्डी राज्य की छोटी-सी नदी है। इस योजना के द्वारा शिमला, अम्बाला, पटियाला, गुजरानवाला, अमृतसर तथा लुधियाना को जल विद्युत पहुंचाई जाती है। दिल्ली, मेरठ और सहारनपुर इत्यादि को भी बिजली पहुंचाई जा सकेगी। इस योजना मे पजाब मे कृषि और व्यवसाय की उन्नति होगी। भाकरा नगल मगल्ना और शन योजनाएँ भी पजाब की प्रसिद्ध योजनाएँ हैं।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश मे ग्रिड योजना द्वारा सात जल-प्रतापो पर जल-विद्युत उत्पादन किया जाता है। उत्तर प्रदेश मे प्रकाश और उद्योगो मे शक्ति देने के अतिरिक्त जल-विद्युत से नलकूपो के द्वारा सिचाई भी की जाती है। यह योजना सन् 1926 मे बनी थी। बहादुराबाद, भोला, सुमेरा, मुहम्मदपुर, चित्तौरा, परला और पथरी जल-शक्ति के स्टेशन हैं। शारदा नहर जल-विद्युत योजना और पथरी शक्ति योजना भी क्रियान्वित की गई है।

पूर्वी क्षेत्रो के लिए शक्ति केन्द्र द्वितीय योजना मे पूरा हुआ था। अन्य जल-विद्युत योजनाएँ रिहान्ड, माताटीला, यमुना और रामगगा है। तीसरी योजना की अवधि मे आरम्भ की जाने वाली नई जल-विद्युत योजना ओब्रा है। शारदा जल-विद्युत योजना प्रथम योजना काल मे पूरी हुई थी। (देखिये चित्र 32)

बिहार और पश्चिमी बंगाल—दामोदर घाटी योजना पश्चिमी बगाल और बिहार की सबसे महत्वपूर्ण योजना है। कोसी योजना बिहार की सबसे अधिक महत्वपूर्ण योजना है। ये दोनो बहुउद्देशीय योजनाएँ हैं। बिहार मे गण्डक योजना तथा प० बंगाल मे जलढाका योजना अन्य जल-विद्युत योजनाएं हैं।

असम—असम मे विद्युत के विकास की सुविधाएँ हैं। यहाँ पर 11 स्थानो पर जल विद्युत का उत्पादन किया जा सकता है। डिहाग और मनास योजनाएँ कार्यान्वित की गई थी, परन्तु भूचाल के कारण डिहाग योजना कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई। कुछ अन्य छोटी-छोटी योजनाएँ भी हैं। उमत्रू और उमयिम योजनाएं महत्वपूर्ण है।

उड़ीसा—महानदी मे उडीसा मे जल-विद्युत का विकास किये जाने की

योजना है। योजनाएँ बहुउद्देशीय हैं। हीराकुंड बाँध योजना, टीकरपाड़ा बाँध योजना और नराज बाँध योजनाएँ मुख्य हैं।

राजस्थान—पंजाब की भाकरा नगल योजना से द्वितीय योजना काल से बिजली मिलने लगी थी। गाधी सागर बाँध शक्ति योजना और राणा प्रताप सागर बाँध शक्ति-गृह (चम्बल योजना) मध्य प्रदेश और राजस्थान की सम्मिलित योजनाएँ हैं। कोटा जल-विद्युत योजना भी सम्मिलित है। अणुशक्ति उत्पादन की योजना भी है।

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र मे टाटा सघ के द्वारा जल-विद्युत योजना का विकास आरम्भ हुआ, जिसका प्रबन्ध सन् 1929 से टाटा जल-विद्युत एजेंसीज लिमिटेड के हाथ मे है। उनकी तीन महत्वपूर्ण कम्पनियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) **टाटा हाइड्रो-इलेक्ट्रिक पावर सप्लाई कम्पनी लिमिटेड**—इससे जल-विद्युत का उत्पादन 1915 से आरम्भ किया। यह कम्पनी भोर घाट के ऊपर
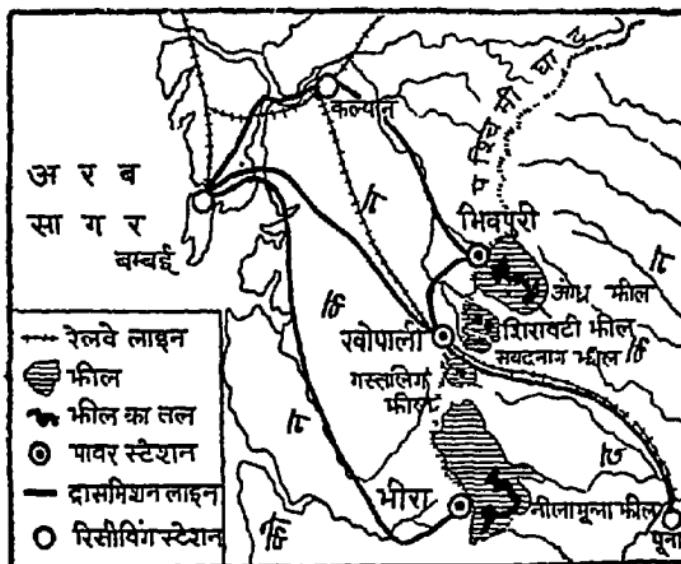
चित्र 33—महाराष्ट्र के कुछ शक्ति केन्द्र

लोनवाला स्थान मे स्थित है। बरसात का पानी लोनवाला, शिरावती और वलवान नामक झीलो मे इकट्ठा करके नहरो द्वारा खंदला तक और वहाँ से लोहे के पाइपो द्वारा खोपोली तक पहुँचाया जाता है और जल-विद्युत का

उत्पादन होता है। इसकी शक्ति 65 हजार किलोवाट बिजली उत्पादन करने की है।

(2) आन्ध्र वैली पावर सप्लाई कम्पनी लिमिटेड—इस कम्पनी से सन् 1922 से जल-विद्युत का उत्पादन आरम्भ किया। पहली कम्पनी के उत्तर में आन्ध्र नदी पर 58 मीटर ऊँचा एक बाँध बनाया गया है जिससे सुरंगों और लोहे के पाइपों द्वारा भिवपुरी नामक स्थान तक पानी ले जाया जाता है और उसे 530 मीटर की ऊँचाई से गिराकर बिजली पैदा की जाती है। इस कम्पनी की वर्तमान शक्ति 69 हजार किलोवाट बिजली उत्पादन करने की है।

(3) टाटा पावर कम्पनी लिमिटेड—जिसका कार्य सन् 1927 से आरम्भ हुआ। महाराष्ट्र के दक्षिण पूर्व में यह योजना नीलामूला नदी के ऊपर आन्ध्र वैली स्कीम के अनुसार ही आरम्भ की गई, जिसकी वर्तमान शक्ति 110 हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न करने की है। यह विद्युत-उत्पादन भीरा (Bhira) स्थान पर किया जाता है। यहां से 117 कि० मी० लम्बे तारों द्वारा बम्बई को बिजली भेजी जाती है।

उपर्युक्त तीनों कम्पनियाँ महाराष्ट्र के 1,600 किलोमीटर में अधिक भाग को जल-विद्युत प्रदान करती हैं। यह देश में शक्ति की सबसे बड़ी योजना है। और इसमें 16 करोड़ से भी अधिक रुपये की अचल पूँजी लगी हुई है। इनके द्वारा कपड़ों की मिलों अन्य उद्योगों, रेल इत्यादि को महाराष्ट्र राज्य में बिजली मिलती है। देश की कुल जल-विद्युत का चौथाई से भी अधिक भाग इन कम्पनियों के द्वारा उत्पादन किया जाता है। इससे उद्योग-धन्धों, व्यापार और जहाजरानी की अत्यन्त उन्नति हुई है।

महाराष्ट्र की चोना और भीरा जल-विद्युत योजनाएँ प्रथम योजनाकाल में पूरी हुई थी। कोयण, पूर्णा और वैतरना अन्य प्रमुख योजनाएँ हैं। महाराष्ट्र में न्यूक्लियर (अणु) शक्ति का उत्पादन भी किया जा रहा है।

मध्य प्रदेश—मध्य प्रदेश में बिजली तापीय (Thermal) योजनाओं से प्राप्त होती है। चम्बल योजना राजस्थान और मध्य प्रदेश की सम्मिलित है जिसके गांधीसागर बाँध, राणा प्रताप सागर बाँध और कोटा शक्ति-गृह से बिजली प्राप्त होगी। तीसरी योजना में नई प्रारम्भ होने वाली योजनाएँ मध्य

प्रदेश मे तांवा और पुनासा जल-विद्युत योजनाएँ हैं। पुनासा से गुजरात को भी लाभ होगा।

आन्ध्र प्रदेश—मंजीरा नदी पर निजामसागर मे पानी इकट्ठा किया जाता है, जो अब सिंचाई के काम मे आता है। इसी के ऊपर 'निजामसागर शक्ति-गृह' पर जल-विद्युत का उत्पादन किया जाता है। इस समय इसकी शक्ति 15 हजार किलोवाट जल-विद्युत उत्पादन की है, जिसको निकट भविष्य मे बढाने की योजना है। दूसरी योजना देवनूर योजना है जिसके द्वारा 40 हजार किलोवाट जल-विद्युत का उत्पादन हो सकेगा। इसके द्वारा सिंचाई भी होगी और निजाम सागर शक्ति-योजना का कार्य बढाया जा सकेगा। इस प्रकार यह योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तुंगभद्रा योजना से जो सिंचाई की योजना भी है 172 हजार किलोवाट जल-विद्युत का उत्पादन हो सकेगा। इसके द्वारा रायचूर, यादगिरि, गुलवर्गा और नारायणपद को बिजली पहुंचाई जा सकेगी। तुंगभद्रा योजना आन्ध्र प्रदेश और मैसूर की सम्मिलित योजना है। मचकुण्ड जल विद्युत योजना आन्ध्र प्रदेश और उडीसा की सम्मिलित योजना है। मचकुंड और तुंगभद्रा (प्रथम चरण) योजनाएं दूसरी योजना की अवधि में पूरी हो गई हैं। तुंगभद्रा (द्वितीय चरण) और सिलेरू जल-विद्युत योजनाएँ चालू हैं तथा नागार्जुनसागर और श्री शैलम नई योजनाएँ हैं।

मैसूर—मैसूर राज्य मे कावेरी नदी पर जल-विद्युत का विकास सन् 1902 मे सबसे पहले हुआ था। यह योजना शिवसमुद्रम मे आरम्भ हुई जिसका मुख्य उद्देश्य इस स्थान से 148 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कोलार के सुवर्ण क्षेत्रो को विद्युत पहुँचाना था। यहाँ से बगलौर और मैसूर शहरो के अतिरिक्त 236 कस्बो और गाँवो को बिजली पहुंचाई जाती है। इस योजना की शक्ति अब बढ़कर 45 हजार किलोवाट हो गई है। शिमशापुर स्टेशन के द्वारा जिसका कार्य 1940 मे आरम्भ हुआ 17 हजार किलोवाट की और वृद्धि हो गई है। मैसूर की जोग योजना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसके द्वारा शरावती नदी से जोग प्रपात के स्थान पर जल-विद्युत का उत्पादन होता है। मैसूर मे तुंगभद्रा के बायें तट पर एक शक्ति-गृह दूसरी योजना की अवधि मे पूरा हुआ था। भद्रा और शारावथी अन्य योजनाएँ हैं।

मद्रास—मद्रास मे जल-विद्युत के प्रमुख स्टेशन तीन हैं—पायकरा, मैट्टूर और पापनासम। (1) पायकरा योजना के अन्तर्गत नीलगिरि से वहने वाली पायकरा नदी के पानी का उपयोग किया गया है। इसका कार्य सन् 1929 मे आरम्भ हुआ था और 1932 मे पूर्ण हो गया, जिसमे पीछे और भी विकास हुआ है। यहाँ से कोयम्बटूर को शक्ति पहुँचाई जाती है। इस लाइन का विस्तार तिरुप्पर ईरोड, उदुमलपट, मम्बारी और मदुराइ तक हो गया है। ईरोड और मदुराइ मैट्टूर और पापनासम योजनाओ से भी मिले हुए है। पकरा से अब कालीकट और कनानोर को भी बिजली पहुँचाई जाती है। (2) मैट्टूर बाँध से जिसकी गिनती दुनिया के सबसे बड़े बाँधो मे की जाती है और जिसके निर्माण का मुख्य उद्देश्य सिंचाई था, जल-विद्युत का भी उत्पादन किया जाता है। इसका कार्य 1935 मे आरम्भ हुआ था और जून 1937 मे पूर्ण हो गया था। यह शक्ति-गृह मैट्टूर बाँध के बिल्कुल नीचे स्थित है। यहाँ से सिंगारान और ईरोड को शक्ति पहुँचाई जाती है। अब वेलोर, तिरुवन्नामलाइ, विल्लूपुरम को उत्तरी भाग मे और दक्षिणी भाग मे तिरुचानापल्ली, तंजोर और नागापट्टम तक लाइनें बढा दी गई हैं। (3) मद्रास की तीसरी योजना, जिसका कार्य सन् 1938 मे आरम्भ हुआ था, जुलाई सन् 1944 मे पूर्ण होकर जल-विद्युत उत्पन्न करने लगी। यह योजना ताम्रपरणी नदी के ऊपर पापनासम् प्रपात के ऊपर पश्चिमी घाट की तलहटी मे तिनेवेली जिला मे कार्यान्वित की गई है। शक्ति-गृह अगस्त्य मन्दिर के समीप स्थित है। यहाँ से तूतीकोरन कोयलपट्टी और मदुराइ को बिजली पहुँचाई जाती है। यहाँ से त्रावनकोर को भी बिजली दी जाती है। इसके अतिरिक्त मद्रास की सरकार ने मचकुण्ड, मोयर, नेलोर और मदुराइ मे नई योजनाएँ बनाई और पायकरा, पापनासम् और मद्रास के शक्ति-गृहो को बढाने की भी योजना है। इसके अतिरिक्त और विकास किया जा रहा है। इससे मद्रास के लगभग प्रत्येक नगर मे और उद्योगो मे काफी उन्नति हुई है। मोयर शक्ति-गृह और पायरा शक्ति-गृह प्रथम योजना काल मे पूरे हुए। पेरियार और कुण्डा जल-विद्युत योजनाएँ दूसरी योजना की अवधि मे पूरी हुई। कुण्डा योजना की स्थापित क्षमता बढाई जा रही है और पेरियार योजना का भी विस्तार किया जाएगा। पेराम्बिकुलम नई योजना है।

केरल—केरल मे बिजली का उत्पादन सन् 1905 मे कन्ननदेवन हिल्स प्रोड्यूस कम्पनी के द्वारा प्रारम्भ हुआ। मार्च 1929 मे सरकार ने त्रिवेन्द्रम् स्टेशन बनाया जिसके विकास से बड़ा प्रोत्साहन मिला और गैर-सरकारी प्रयत्नों के द्वारा भी बिजली का उत्पादन आरम्भ हुआ। जल-विद्युत का विकास होने से कुछ शक्ति-गृह बन्द हो गये। जल-विद्युत की महत्वपूर्ण योजना, जो

चित्र 34—दक्षिणी भारत के कुछ शक्ति केन्द्र

सरकार के द्वारा सन् 1921 में स्वीकृत हुई और शीघ्र ही कार्यान्वित की गई, पल्लीवसल जल-विद्युत योजना थी। इस योजना के अन्तर्गत मुदिरापजा नदी को मनार पर एक सुरग के द्वारा मोड़कर उसके पानी का उपयोग किया गया है। इस योजना के द्वारा केरल का अत्यधिक विकास हुआ है। सेंगुलुम योजना प्रथम योजनाकाल मे और पोरिंगल्कुठु तथा नेरियमगलम् योजनाएं दूसरी योजना की अवधि मे पूरी हुई थी पन्नियर, शोलायर, सबारिगिरि (पम्बा), इडीक्की तथा कुट्टियाडी अन्य जल विद्युत योजनाएं हैं।

जम्मू-कश्मीर—कश्मीर मे बारामूला से 32 किलोमीटर दूर बुनियर के समीप झेलम नदी के पानी का उपयोग किया गया है। यह स्थान मोहारा के शक्तिगृह से 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है और यहाँ से बारामूला और श्रीनगर को बिजली पहुचाई जाती है। पहल गाँव मे जल विद्युत का

छोटा-सा स्टेशन है। जम्मू शक्ति-गृह से बिजली मिलती है। चेनाई, झेलम और सलाल जम्मू-कश्मीर की नई योजनाएँ हैं।

बिजली प्राप्त करने के अन्य साधन

यह पहले ही बताया जा चुका है कि अन्य साधनो की अपेक्षा जल-विद्युत का विशेष महत्व यह है कि प्रारम्भिक पूँजी लग चुकने पर बाद मे उसके यातायात या व्यय नाममात्र का रह जाता है; इसके अतिरिक्त, जबकि कोयला, खनिज तेल इत्यादि के सीमित साधन हैं, बहते हुए जल से शक्ति प्राप्त करने के लिए साधन असीम हैं। परन्तु ऐसे स्थानो से जहाँ कोयला और खनिज तेल का स्थानीय उपयोग कम लाभदायक है और वहाँ से दूरवर्ती स्थानो तक ले जाने का परिवहन व्यय अधिक आता है यह अधिक उपयुक्त समझा गया है कि कोयला और तेल, इत्यादि से वाष्प द्वारा शक्ति प्राप्त की जाए। डीजल से शक्ति प्राप्त करने की लागत अधिक आती है और डीजल तेल के यातायात में कमी करने की दृष्टि से डीजल से बिजली प्राप्त करने के प्रयत्न सीमित रखे जायेंगे।

संक्षेप

मनुष्य, पशु, हवा, कोयला, तेल, लकड़ी, ईंधन और पानी शक्ति के प्रमुख साधन हैं। यद्यपि ये सभी महत्वपूर्ण है तथापि आधुनिक समय मे जल-शक्ति का महत्व अत्यधिक हो गया है। भारतवर्ष जल-विद्युत उत्पादक देशो मे प्रमुख है। यहाँ जल-विद्युत का विकास निरन्तर हुआ है। नवीन योजनाओ से देश के सभी राज्यों मे विकास किया जा रहा है। देश में अणुशक्ति का भी विकास किया जा रहा है।

प्रश्न

1. भारतवर्ष मे शक्ति के प्रमुख साधन कौन-कौन से है ? उनका कहाँ तक उपयोग किया गया है ?
2. भारतवर्ष मे उपलब्ध शक्ति के साधनो का वर्णन कीजिए और देश के विकास पर उनके प्रभाव का विवेचन कीजिए।
3. उत्तरी भारत मे जल-विद्युत शक्ति के विकास का वर्णन कीजिए। कृषि के लिए इसका क्या महत्व है ? प्रत्येक योजना के द्वारा उन क्षेत्रो के उद्योगो को जो लाभ हुआ है, उसको स्पष्ट कीजिए।
4. भारतवर्ष मे जल-विद्युत के विकास पर अच्छा प्रभाव डालने वाले अंग कौन-कौन से है ? आपकी राय मे नदी-घाटी योजनाओ के विकास का देश के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

अध्याय 13

कुटीर उद्योग, उनका महत्त्व तथा समस्याएँ

(Cottage Industries-Their Importance and Problems)

गौरवमय अतीत

भारतवर्ष का प्राचीन काल उद्योगों की दृष्टि से अत्यन्त गौरवमय था। उद्योग और वाणिज्य की दृष्टि से ससार के अन्य देशों में भारतवर्ष का बहुत ऊँचा स्थान था। जब ससार मे सभ्यता का प्रवेश भी नही हुआ था, भारत मे कला-कौशल की आश्चर्यजनक उन्नति हुई थी। रानाडे ने अपने अर्थशास्त्र मे लिखा है कि 2,000 ई० पू० की मसाला लगाकर रक्खी हुई लाशो के साथ लिपटी हुई भारतवर्ष की अत्यधिक सुन्दर किस्म की मलमल मिली है। अन्य खोजो और प्रमाणो से भी यही सिद्ध हुआ है कि भारतवर्ष का बना हुआ माल लगभग सभी देशो मे निर्यात किया जाता था।

प्राचीन उद्योगों का पतन

परन्तु कई कारणो से हमारे प्राचीन उद्योग नष्ट होते गए।

पहला मुख्य कारण यह था कि प्राचीन राजाओ और बादशाहो से जो प्रोत्साहन मिलता था वह उनके पतन के साथ ही समाप्त हो गया।

दूसरा कारण यह था कि पश्चिमी देशो मे औद्योगिक क्रान्ति हुई और बड़े पैमाने पर सस्ता माल बनाया जाने लगा। इधर भारतवर्ष मे कुछ ऐसा रग आया कि यहाँ के निवासी प्रत्येक वस्तु विदेशी पसन्द करने लगे, उनके लिये विदेशियत ही किसी वस्तु की अच्छाई का पर्याप्त प्रमाण था।

तीसरा कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार की नीति इस प्रकार की थी कि हमारे यहाँ का कच्चा माल इङ्गलैण्ड को निर्यात किया जाय और इङ्गलैण्ड का बना हुआ माल भारतवर्ष मे आयात किया जाय। विदेशी स्पर्द्धा और सस्ते माल के मुकाबले मे हमारे यहाँ के उद्योग न ठहर सके।

चौथा कारण यह भी था कि भारतवर्ष मे मशीनो का प्रयोग नही होता

था, जबकि विदेशो मे आविष्कारो के द्वारा नई-नई मशीनो से सस्ता माल बनना सम्भव हो गया था। इस प्रकार के पुराने उद्योग नष्ट होते गए।

कुटीर उद्योग और रोजगार

भारतवर्ष मे कुटीर उद्योग का महत्व अत्यधिक है। कुटीर उद्योग-धन्धो मे देश के दो करोड व्यक्तियो से भी अधिक परिवारो को रोजगार मिलता है। अन्य देशो मे भी उद्योगो मे रोजगार पाने वाली जनसख्या के एक भाग को कुटीर उद्योगो मे रोजगार मिलता है। जर्मनी मे कुल जनसख्या का लगभग 8 वां भाग (12·6%) कुटीर उद्योगो मे लगा हुआ है, जापान मे औद्योगिक जनसख्या का आधे से भी अधिक भाग कुटीर उद्योग-धन्धो अथवा छोटे पैमाने के उद्योगो मे लगा हुआ है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका और कई यूरोपीय देशो मे छोटे पैमाने पर चलने वाले उद्योग और हाथ के उद्योग-धन्धे अत्यन्त महत्व रखते हैं।

भारत मे मशीनो के इस युग मे भी कुटीर उद्योग पूर्णतया नष्ट नही हो गये हैं, बल्कि रोजगार देने की दृष्टि से इनका महत्व किसी प्रकार भी कम नही है।

मुख्य कुटीर उद्योग

वर्तमान कुटीर उद्योग धन्धो मे नीचे लिखे कुटीर उद्योग धन्धे अधिक महत्वपूर्ण हैं जिनका विकास हो रहा है—

(1) हाथ की बुनाई या खादी व्यवस्था, (2) तेल व्यवसाय, (3) हाथ का कागज, (4) ताड, गुड और गन्ने से गुड बनाना, (5) साबुन और नीम का तेल, (6) ऊनी कम्बल और रेशम का काम, (7) चमडे का काम, (8) मधु मक्खी पालना, (9) धान से चावल निकालना, (10) दरी और गलीचो का काम, (11) चूडी और कांच का काम, (12) पीतल की घटियां वगैरह बनाने का काम, (13) लकडीका काम, (14) पत्थर का काम, (15) दियासलाई बनाना, और (16) नारियल के रेशे से रस्सी बनाना इत्यादि।

कुटीर-उद्योगो की मुख्य समस्याएँ

कुटीर उद्योगो के विकास के मार्ग मे कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिन्हे समझे बिना उनका विकास नही किया जा सकता। मुख्य कठिनाइयाँ ये है :—

(1) हाथ की बनी हुई चीजें मशीन की बनी हुई चीजो की अपेक्षा महँगी पड़ती हैं इसलिए कम आय वाले व्यक्ति तो खरीद ही नही सकते। धनी लोग और देश की सरकार तथा राज्य सरकारें तक खादी और अन्य हाथ का सामान नही खरीदते। अत: कुटीर उद्योगो के सामान की माँग बहुत कम है।

(2) दूसरी कठिनाई यह है कि कुटीर उद्योगों को चलाने के लिए थोड़ी-बहुत पूँजी की आवश्यकता तो होती ही है परन्तु उन निर्धन व्यक्तियो पर, जो इनमे लगे हुए हैं, पूँजी नही होती है। उन्हे पूँजी उधार लेने के लिए बहुत ब्याज देनी पड़ती है।

(3) कुटीर उद्योगो के कारीगरो के निर्धन और ऋणी होने से उनकी सौदा करने की शक्ति भी कम है। उन्हें अपना माल कम मूल्यो पर और प्राय घाटे पर बेचना पड़ता है। उनके पास माल बेचने का कोई श्रेष्ठ साधन नही है जो कारीगर माल बनाता है प्राय: वही गली-गली घूमकर और हाट-बाजार मे बैठ कर माल बेचता है। इस प्रकार उसका प्राय: आधा समय व्यर्थ ही चला जाता है।

(4) कुटीर उद्योगो में लगे हुए हमारे कारीगर प्राय: अशिक्षित, अज्ञानी और रूढ़िवादी होते हैं। वे व्यापार के नये तरीको, माल तैयार करने के आधुनिक ढंगो और सरकारी तौर पर दी जाने वाली सुविधाओ और रहन-सहन के तरीको से अनभिज्ञ होते हैं। इससे उन्हे प्रत्येक क्षेत्र में पीछे रहना पड़ता है।

(5) उनके माल की माँग कम होने का मुख्य कारण यह भी है कि वे अपने माल को आकर्षक नही बना पाते और मूल्य तो प्राय: अधिक होता ही है। मूल्य अधिक होने का एक कारण यह है कि उनके माल बनाने के तरीके पिछड़े हुए हैं।

भारत में कुटीर उद्योगो का महत्त्व

भारतवर्ष की परिस्थितियों को देखने से भी कुटीर उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहन देना आवश्यक है। ये परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैं :—

(1) भारतवर्ष मे पूँजी की कमी है और मिल उद्योगो के विकास मे कुटीर उद्योगो की अपेक्षा काफी अधिक पूँजी की आवश्यकता है।

(2) भारतवर्ष मे श्रमिको की सख्या अधिक है और मिलो मे श्रम की बचत के साधन काम मे लाये जाते है जिनसे बेरोजगारी फैलती है।

(3, भारतवर्ष मे कृषि छोटे पैमाने पर और छोटी-छोटी इकाइयो मे होती है इसलिए हमारे किसान आधे मे अधिक समय बेकार रहते है। उनकी आय बढाने के लिए भी कुटीर उद्योगो का विकास करना हितकर है।

सरकारी प्रयत्न

हाल ही मे कुटीर उद्योग विकास के लिए सरकारी तौर पर कुछ महत्वपूर्ण प्रयत्न किए गए है। सन् 1948 मे एक कुटीर उद्योग बोर्ड की स्थापना हुई थी जिसका जुलाई 1950 मे पुनर्गठन हुआ। योजना आयोग ने भी प्रथम पचवर्षीय योजना मे ग्रामोद्योग के विकास का महत्व समझा और खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना की सिफारिश की। खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना सन् 1953 मे हुई। इन बोर्डो ने कुटीर उद्योगो के विकास मे महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

इस बात को भी समझा गया है कि मिल उद्योगो मे बेरोजगारी और घरो की समस्याएँ खड़ी होती है तथा ग्रामोद्योगो मे उनका केवल हल ही नहीं होता बल्कि अधिकतर जनता के जीवन-स्तर को उठाने का एक यही मार्ग है। इसलिए मिल के कपड़े पर कर (Cess) लगाकर खादी को सहायता (Subsidy) देने का निश्चय किया गया। इसी प्रकार कुटीर उद्योगों के रूप मे तेल पेरने के उद्योग को भी प्रोत्साहन दिया गया। इस प्रकार की सहायता का प्रयोग अन्य क्षेत्रो मे किया जा सकता है।

कानूनगो कमेटी (1954) और कर्वे कमेटी (1955) की रिपोर्टो के प्रकाशित होने के पश्चात् हैण्डलूम उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला है। अम्बर चरखा के प्रयोग को स्वीकार कर लेने के पश्चात कताई व्यवसाय मे नई क्रांति आ गई है।

फरवरी, 1955 मे छोटे पैमाने के उद्योगो की सहायतार्थ एक निगम (Small Industries Corporation) की सरकार ने प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के रूप मे स्थापना की। यह निगम सरकार ने 10 लाख रुपये की अधिकृत पूँजी से प्रारम्भ किया है।

कुटीर उद्योगो के विकास के लिए केन्द्रीय सरकार ने गवेषणात्मक कार्यो और ट्रेनिंग के लिए प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओ में पर्याप्त आर्थिक

सहायता दी है । विभिन्न राज्यो में भी कुटीर उद्योगो के विकास के लिए योजनाएँ बनाई गई हैं । कई कुटीर उद्योगो के विकास के लिए विस्तृत प्रोग्राम बनाया गया है जिसके लिए खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड राज्य सरकारों के साथ विचार विमर्श करके उचित व्यवस्था करेगा ।

सन 1952 में आल इण्डिया हैन्डीक्राफ्ट्स बोर्ड की स्थापना हुई थी और इसी वर्ष के अन्त मे आल इण्डिया हैण्डलूम बोर्ड का निर्माण हुआ था । सन् 1957 मे खादी ग्रामोद्योग आयोग' की स्थापना हुई और सन् 1953 मे स्थापित खादी ग्रामोद्योग बोर्ड' को आयोग की सलाहकारी सस्था बना दिया गया ।

ग्रामोद्योगों तथा छोटे पैमाने के उद्योगों की प्रगति तथा तीसरी योजना मे कार्यक्रम

ग्रामोद्योगो तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास के लिए तिहरा संगठन है—केन्द्रीय वाणिज्य-उद्योग मन्त्रालय; अखिल भारतीय मण्डल, तथा राज्य उद्योग विभाग एवं राज्य मण्डल । सामुदायिक योजनाओ के अन्तर्गत विकास कार्यक्रम पर जोर दिया जाता है और कार्यक्रमो के सामजस्य का महत्व समझा गया है । इसके लिए छोटे पैमाने के उद्योगो के लिए एक सामंजस्य कमेटी Central co-ordination committee for small industries) की स्थापना की गई । औद्योगिक सहकारी समितियो मे बहुत वृद्धि हुई है ।

सन् 1950-51 मे हैण्डलूम (हथकरघो द्वारा) वस्त्र का उत्पादन 67·84 करोड मीटर था, सन् 1960-61 मे 1/4 करोड मीटर हो गया । खादी का उत्पादन सन् 1950 51 मे 64 लाख मीटर (ऊनी, रेशमी और सूती कुल खादी) था, सन् 1960 61 मे 439 लाख मीटर हो गया । अम्बर खादी का उत्पादन 1956-57 मे 17 लाख मीटर थी, 1960-61 मे लगभग 238 लाख मीटर हो गया । ग्रामोद्योगो ने भी बहुत प्रगति की है परन्तु विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नही हैं ।

नारियल-जटा उद्योग—मख्यत एक कुटीर-उद्योग है । भारत मे नारियल जटा से बनने वाली वस्तुओ को लोकप्रिय बनाने तथा उनको प्रोत्साहन देने का कार्य नारियल-जटा-मण्डल को सौपा गया है । नारियल-जटा से बनी वस्तुएँ विदेशी मुद्रा के अर्जन का महत्वपूर्ण साधन हैं । औसतन 50 8 हजार मैट्रिक टन नारियल जटा और उमसे बनी 21 हजार मैट्रिक टन वस्तुओं का

प्रति वर्ष निर्यात किया जाता है। इस उद्योग मे लगभग 8 लाख व्यक्तियो को रोजगार मिलता है।

कच्चे रेशम-उद्योग मे बहुत विकास हुआ है। 1943 मे बरहमपुर (प० बगाल) मे एक केन्द्रीय रेशम-कीडा पालन अनुसधान केन्द्र स्थापित किया गया था जिसकी एक शाखा कलिम्पोग मे है। दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि मे केन्द्र का विस्तार किया गया और मैसूर मे एक 'अखिल भारतीय रेशम-कीडा पालन-प्रशिक्षण सस्थान' तथा श्रीनगर मे एक 'केन्द्रीय विदेशी रेशम-कीडा पालन-केन्द्र' स्थापित किए। कच्चे रेशम का उत्पादन सन् 1950-51 मे 11 3 लाख किलोग्राम था, सन् 1960 मे 16·3 लाख किलोग्राम हो गया। कच्चे रेशम के धन्धे मे 27 लाख व्यक्तियो को आशिक रोजगार तथा 35 हजार व्यक्तियो को पूर्ण रोजगार मिलता है। कच्चे रेशम उद्योग की मुख्य समस्या उत्पादन की ऊँची लागत है।

छोटे पैमाने के उद्योगो (जिनमे प्रत्येक इकाई मे अधिकृत पूँजी 5 लाख रुपये से कम हो) मे विस्तार हुआ है। सन् 1960-61 तक 60 औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित हो चुकी थी। छोटे पैमाने के उद्योगो मे पूरे समय रोजगार लगभग 3 लाख व्यक्तियो को मिलता है।

तीसरी योजना मे ग्रामोद्योगो तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास के सम्बन्ध मे निम्नलिखित मुख्य बातो पर जोर दिया गया है—

(1) श्रमिक की उत्पादकता बढाई जाए और उत्पादन की लागत कम की जाये, इसके लिए कुशलता बढाने, तकनीकी सलाह देने, यन्त्र और साख, इत्यादि प्रदान करने के रूप मे सहायता दी जाए,

(2) आर्थिक सहायता (Subsidies), बिक्री-मूल्य मे छूट (Rebate) इत्यादि मे धीरे-धीरे कमी की जाए,

(3) गाँवो मे और छोटे कस्बो मे उद्योगो का विकास किया जाए,

(4) बडे पैमाने के उद्योगो के सहायक उद्योगो के रूप मे छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास किया जाए,

(5) कारीगरो और शिल्पियो को सहकारी ढग पर सगठित किया जाए।

संक्षेप

प्राचीन काल में भारत के अनेक उद्योग उन्नति के शिखर पर थे। परन्तु विदेशी शासन काल मे उनमे से अधिकांश नष्टप्राय

हो गए। पतन के मुख्य कारण ये थे : (1) देशी राजाओ और नवाबो तथा उनके दरबारो का पतन, (2) ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति तथा विदेशी नीति का प्रभाव, (3) विदेशियत का रंग, तथा (4) सस्ते मशीनी म ल से स्पर्द्धा।

भारत में कुटीर उद्योगों का महत्व मुख्यतया रोजगार की दृष्टि से है। परन्तु उनके विकास का महत्व इन दृष्टियों से भी है कि भारत मे पूँजी की अपेक्षाकृत कमी है, कुटीर उद्योगो मे कम पूंजी लगानी पड़ती है, तथा कृषि में लगी जनसख्या को सहायक धन्धे प्रदान करने के लिए गाँव न छोड़ना पड़े इस दृष्टि से कुटीर उद्योगो का अत्यधिक महत्व है।

भारत मे कुटीर उद्योगों की अनेक कठिनाइयाँ है परन्तु स्वतन्त्रता के उपरान्त उनकी उन्नति के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किए गए है।

कुटीर उद्योगो का विकास देश के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

प्रश्न

1. भारत के प्राचीन उद्योगो के पतन के मुख्य कारण क्या थे ? वर्तमान काल मे कुटीर उद्योगो की उन्नति के लिए क्या प्रयत्न किए गए हैं ?
2. कुटीर उद्योगो का भारत मे क्या महत्व है ? भारत के प्रमुख कुटीर उद्योगों का उल्लेख करते हुए उनकी कठिनाइयाँ बताइए।

अध्याय 14

बड़े-बड़े संगठित उद्योग—स्वतन्त्रता के उपरान्त औद्योगिक विकास तथा समस्य एँ

(Major Industries, Industrial Development Since Independence and Problems)

कृषि और उद्योग एक दूसरे के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। उद्योगो मे कृषि के द्वारा उगाये हुए कच्चे माल का प्रयोग किया जाता है और जब तक यह कच्चा माल उचित परिमाण मे उचित मूल्य पर न मिल सके तब तक उद्योगो का विकास होना सम्भव नही। इसी प्रकार यदि देश मे उद्योगो का विकास नही हुआ, जहाँ कृषि के द्वारा उगाये हुए कच्चे माल की खपत की जा सके, तो देश की कृषि अत्यन्त पिछड़ी हुई दशा मे ही रहेगी क्योकि कृषि का उत्पादन ठीक मूल्य पर नही बिक सकेगा।

वर्तमान समय से कुछ पूर्व भारतवर्ष मे कृषि और उद्योग दोनो का साथ-साथ विकास नही हुआ जिसका मुख्य कारण विदेशी सरकार की नीति थी।

आधुनिक उद्योगो का विकास

यद्यपि विदेशो से सम्पर्क मे आने पर हमारे प्राचीन उद्योगो पर अवश्य बुरा प्रभाव पडा परन्तु प्राचीन उद्योगो के नष्ट हो जाने से और पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से ग्राम्य क्षेत्रो की जनसख्या नगरो और कस्बो की ओर आकर्षित हुई और इस प्रकार नए नगर और कस्बो का विकास हुआ। जन-संख्या के इस भाग के पास जीविका का कोई विशेष साधन नही था। जीवन का स्तर भी ऊँचा उठता जा रहा था और बनी हुई वस्तुओ (Manufactured articles) की माँग बढ़ती जा रही थी। कच्चा माल और मजदूर सस्ते मिल जाते थे। इस प्रकार नए उद्योगो के आधुनिक ढग पर विकास के लिए प्रोत्साहन मिला।

देश में उद्योग का वितरण

आधुनिक ढंग पर उद्योगो का विकास होने के पूर्व भारतवर्ष के उद्योग घरेलू रूप मे और छोटे पैमाने पर, गाँव-गाँव मे फैले हुए थे। दूसरे शब्दो मे उस समय विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति थी और जनसख्या की प्रत्येक इकाई
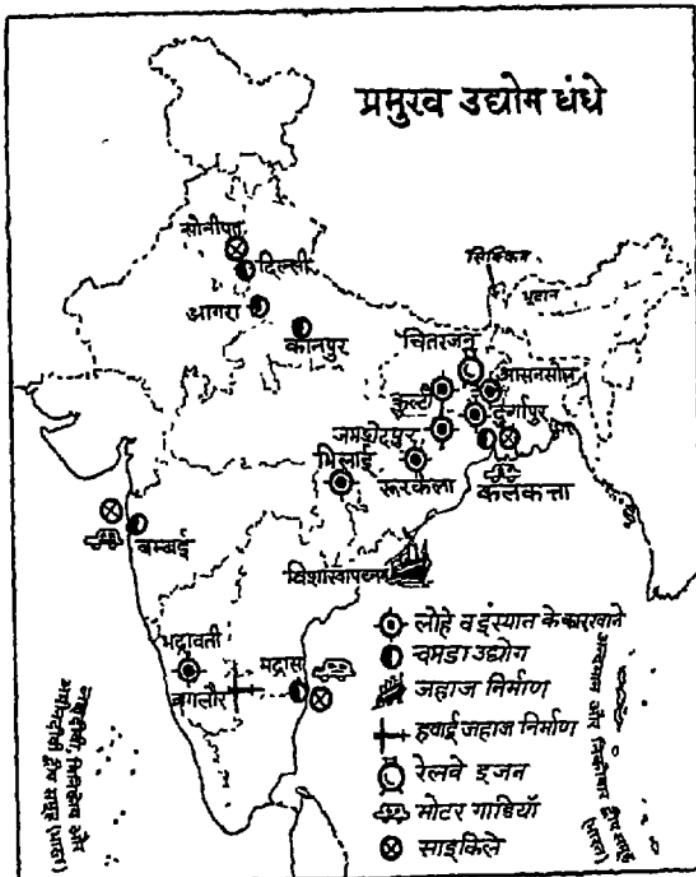
चित्र 35—भारत के मुख्य उद्योगों के क्षेत्र

अर्थात् गाँव और कस्बे इत्यादि प्राय: स्वावलम्बी थे, परन्तु 'मिल उद्योगो के आरम्भ होने पर उद्योगो के विकास मे केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पाई जाने लगी। अधिकतर उद्योग महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल और मद्रास राज्यो मे विकसित हुए। भारत सरकार पुनः विकेन्द्रीकरण की ओर ध्यान दे रही है।

सूती वस्त्र उद्योग

स्थापना और विकास—सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना का सर्वप्रथम प्रयास सन् 1820 मे कलकत्ता मे किया गया था, परन्तु वास्तव मे उद्योग की स्थापना सन् 1854 मे हुई जब कि कावसजी नानाभाई डावर के द्वारा मिल खोला गया। अमेरिका मे गृह-युद्ध छिड जाने से उद्योग को एक दम प्रोत्साहन मिला और सन् 1861 तक बम्बई मे 9 मिलें हो गयी। अधिक लाभ होने के कारण नई मिले खुलती गईं और सन् 1900 ई० तक मिलो की सख्या 193 हो गई। प्रथम महायुद्ध (1914) के समय यह सख्या बढकर 271 हो गई जिनमे लगभग 20 करोड रुपये की पूँजी लगी हुई थी।

अवनति और सरक्षण—युद्ध-काल मे उन्नति हो गई और सन् 9122 तक 84 नई मिले और चालू की गईं परन्तु 1929 मे मन्दी आ जाने के कारण भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को धक्का लगा। दशा सन् 1925 से ही गिरने लगी थी जिनके मुख्य कारण देश मे बढती हुई स्पर्द्धा जापान से स्पर्द्धा, मजदूरी मे वृद्धि और बढते हुए कर थे। स्थिति को संभालने के लिए सूत्री वस्त्र उद्योग को उत्पादन-कर से मुक्त कर दिया गया और सन् 1926 मे सूती कपड़े के आयात पर ड्यूटी लगा कर देश के सूती वस्त्र उद्योग की रक्षा करने का कदम उठाया। परन्तु इस ड्यूटी से देश की अपेक्षा ब्रिटेन को ही अधिक लाभ हुआ क्योकि ब्रिटिश माल पर कम ड्यूटी लगाई गई।

प्रगति—सन् 1939 तक जब कि दूसरा विश्व-युद्ध आरम्भ हुआ, मिलो की सख्या 389 हो गई और तकुओ (Spindles) की संख्या 67 लाख से बढकर एक करोड हो गई। इसी प्रकार करघो की सख्या भी बढ़ी और 202 हजार तक पहुँच गई। सूत का उत्पादन दुगने से भी अधिक हो गया और कपड़े का उत्पादन तिगुने से भी अधिक हो गया और आयात चौथाई से भी कम रह गया। इसी बीच मे टैक्नीकल दृष्टि से भी उन्नति हुई। आधुनिक नई मशीनो का प्रयोग किया गया और साफ करने, रगने, छापने और आकर्षक बनाने के तरीको मे महत्वपूर्ण विकास हुआ। इसके अतिरिक्त जन-सख्या की विभिन्न रुचियो के अनुसार कई किस्मो का और नई-नई डिजाइनो का कपडा बनाया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रभाव—द्वितीय विश्व-युद्ध (1939) से इस उद्योग को इसलिए अधिक लाभ हुआ कि जापान और इङ्गलैंड, जो सूती वस्त्र के प्रमुख उत्पादक थे, युद्ध मे लग गए और इस प्रकार भारतवर्ष का लगभग एकाधिकार-हो गया। बढ़ती हुई माँग के लिए उत्पादन मे भी वृद्धि की गई। कपड़े का और सूत का उत्पादन बढा। व्यापार की दृष्टि से जहाँ पहले आयात किया जाता था 1942-43 मे लगभग 39 करोड़ रुपए का 7,480 लाख मीटर कपडा निर्यात किया गया।

युद्ध-काल मे आयात बन्द हो जाने के कारण और माँग एकदम बढती चले जाने के कारण कीमतें भी बहुत बढ गईं इसलिए भारत सरकार ने जून 1943 मे सूती कपड़ा और सूत पर नियन्त्रण लगा दिया। इस नियन्त्रण के द्वारा सरकार ने थोक और फुटकर मूल्य निर्धारित किए। मिलो और व्यापारियो के लिए बेचने के लिए स्टॉक निश्चित किए, स्थानान्तर पर भी नियन्त्रण लगाया गया, इत्यादि। मई, 1945 ई० मे नियन्त्रण पर कुछ और भी सख्ती कर दी गई और राशनिंग प्रारम्भ कर दिया गया। इस प्रकार कीमतो को गिराने मे तो सफलता प्राप्त हुई परन्तु उद्योग के विकास मे बाधा हुई।

सन् 1947 और 1948 मे उद्योग की हानि के कई कारण थे—(1) कोयले की कमी, (2) सरकार की नीति, (3) कच्चे माल की कमी, (4) कच्चे माल और कोयले की कमी मुख्यत परिवहन की तगी के कारण थी क्योकि परिवहन के साधनो का प्रयोग युद्ध कार्यों के लिए होने लगा, (5) मजदूरियाँ बढ़ने और मजदूरो के झगडो (हड़तालो इत्यादि) का भी बुरा प्रभाव पड़ा, और (6) माँग की वृद्धि के अनुसार मशीनो में वृद्धि न की जा सकी और पुरानी मशीनो की मरम्मत भी नही हो पाई। इस प्रकार उत्पादन गिरा और 1947-48 मे निर्यात 7.480 लाख मीटर कपड़े से घटकर 1,755 लाख मीटर रह गया। इसका कारण यह भी था कि निर्यात् के ऊपर ड्यूटी लगा दी गई थी। (7) काम के घंटे 9 से घटाकर 8 घंटे कर दिए गए थे।

सन् 1947 ई० में विभाजन होने के पश्चात् भारतवर्ष मे 408 मिल रह गए थे और 14 मिल पाकिस्तान मे चले गए थे। सन् 1949 मे भारत मे 8 मिल और खुले और 1950 तक भारतवर्ष मे 425 मिलें हो गईं और उत्पादन भी बढा।

विभिन्न दशाओ मे गुजरते हुए भी भारतवर्ष मे सूती वस्त्र मिल उद्योग का विकास होता गया है। लगी हुई पूँजी, रोजगार पाने वालो की सख्या और उत्पादन-मूल्य की दृष्टि से सूती वस्त्र उद्योग भारतवर्ष के मिल उद्योगो मे सबसे बडा है।

यद्यपि महाराष्ट्र मे मिलो की सख्या जलवायु इत्यादि कारणो से अन्य राज्यो की अपेक्षा सबमे अधिक है तथापि वहाँ मजदूरियाँ बढने और कुछ अन्य कारणो से यह देखने मे आता है कि यह उद्योग उत्तरी भारत मे अधिक उन्नति कर रहा है।

वर्तमान स्थिति—सूती वस्त्र उद्योग की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण निम्न शीर्षको के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1 **मिलो की सख्या**—भारत मे सन् 1964 मे 510 सूती मिले थी जिनमे लगभग 141 2 लाख तकुए और दो लाख से ऊपर करघे हैं। सबसे अधिक मिले महाराष्ट्र राज्य मे हैं। 1963 के आरम्भ मे सूती मिलो की सख्या 486 हो गई।

वितरण—महाराष्ट्र और गुजरात दोनो मे मिलाकर देश के सूती उद्योग के कुल लगभग 2 लाख करघो मे से 138 हजार करघे थे और सूती मिलो की सख्या 480 मे से 199 थी। सूती उद्योग की दृष्टि से मद्रास का स्थान महाराष्ट्र गुजरात के बाद आता है। महत्व के क्रम मे सूती वस्त्र का उत्पादन करने वाले अन्य प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बगाल, मैसूर, केरल, आन्ध्रप्रदेश और राजस्थान हैं। पजाब, बिहार, उडीसा, देहली और पाडिचेरी मे भी सूती मिले हैं।

2 **रोजगार**—भारत मे सूती मिलो मे नौ लाख के लगभग व्यक्तियो को रोजगार मिलता है। इसके अतिरिक्त लगभग 50 हजार व्यक्तियो को पावरलूम मे और लगभग पन्द्रह लाख व्यक्तियो को हैण्डलूम में रोजगार मिलता है।

3. **पूँजी**—1961 मे सूती वस्त्र मिल उद्योग मे लगभग 122 करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई थी।

4. **उत्पादन** – कपड़े और सूत के उत्पादन मे सन्तोषजनक वृद्धि हुई है। 1963 मे लगभग 744 करोड मीटर कपड़े का कुल उत्पादन था जिसमे से

एक तिहाई से कुछ अधिक हैण्डलूम और पावरलूम द्वारा तैयार किया था। सन् 1693 मे सूत का उत्पादन लगभग 89 करोड किलोग्राम था।

5. निर्यात—भारतवर्ष कपडे का प्रमुख निर्यातक है। सन् 1957 मे कपडे का निर्यात लगभग 95 करोड मीटर था जिसका मूल्य लगभग 59 करोड रुपया था। सन् 1960 मे निर्यात लगभग 19 करोड मीटर होने का अनुमान था।

6. उपभोग—योजना-काल के पूर्व भारतवर्ष मे कपड़े का प्रति व्यक्ति उपभोग लगभग 9 मीटर था। प्रथम योजना का लक्ष्य कपडे का उपभोग प्रति व्यक्ति 13·7 मीटर कर देने का था। यह लक्ष्य सन् 1963 मे ही प्राप्त कर लिया गया था और सन् 1955 में प्रति व्यक्ति उपभोग 14 4 मीटर था।

यह स्मरणीय है कि सन् 1938-39 मे (युद्ध से पूर्व) भारत मे कपडे का उपभोग 14·6 मीटर प्रति व्यक्ति था। तीसरी योजना के अन्त में प्रति व्यक्ति उपभोग का लक्ष्य 15 7 मीटर रखा गया है।

तीसरी योजना में सूती वस्त्र उद्योग का विकास कार्यक्रम

सन् 1960-61 मे सूती वस्त्र का उत्पादन लगभग 684 करोड मीटर था। तीसरी योजना के अन्त (1965-66) मे सूती वस्त्र का उत्पादन बढाकर 850 करोड मीटर करने का लक्ष्य रखा गया है। यह वृद्धि 24 प्रतिशत होगी परन्तु मिल के कपडे के उत्पादन मे 13 प्रतिशत वृद्धि होगी जबकि हैण्डलूम-पावरलूम और खादी के कपड़े के उत्पादन मे वृद्धि का लक्ष्य 49 प्रतिशत का है।

कपडे के अतिरिक्त बुनाई के अन्य कार्यों के लिए (होजरी निवाड इत्यादि के लिए) सूत के उत्पादन का लक्ष्य 102 करोड़ किलोग्राम निर्धारित किया गया है। इसके लिए मिलो के तकुओ की सख्या बढाकर 1965-66 मे 165 लाख की जाएगी जबकि सन् 1960-61 मे सक्रिय तकुओं की सख्या 127 लाख थी।

सूती वस्त्र उद्योग के विकास के मार्ग में कठिनाइयाँ और समस्याएँ

भारत मे सूती वस्त्र उद्योग का विकास सन्तोषजनक रूप मे हुआ है परन्तु भावी विकास मे कुछ कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं—

(1) आयोजकों ने ऐसी धारणा बना ली प्रतीत होती है कि मिल क्षेत्र मे सूती उद्योग का उत्पादन बढने देना नही चाहिए। सितम्बर, 1954 ई० मे कानूनगो कमेटी ने यह सिफारिश की थी कि सूती मिलो का उत्पादन उसकी वर्तमान सतह पर रोक देना चाहिए। उनकी इस सिफारिश का मुख्य उद्देश्य मिल क्षेत्र के बाहर (Non-mill sector) उत्पादन बढाने का है। कर्वे कमेटी की सिफारिशें भी कुटीर और छोटे उद्योग के रूप मे ही विकास पर जोर देती हैं। रोजगार की दृष्टि से ये सिफारिशें महत्वपूर्ण हैं परन्तु उत्पादन मे वृद्धि के दृष्टिकोण से हथकरघा उद्योग की अनेक सीमाएँ हैं।

(2) विदेशी मुद्रा की कठिनाइयो के कारण मशीनें और यन्त्र आयात करने मे कठिनाइयां रही हैं और भारत मे हथकरघा उद्योग में ही नही, मिल उद्योग मे भी बहुत घिसे-पिटे करघे और यन्त्र दीख पडते हैं। जब तक देश मे ही ये आवश्यकताएँ पूरी नही होने लगतीं तब तक सुधार कठिन प्रतीत होता है।

(3) भारत मे सूती वस्त्र उद्योग में तकनीकी प्रगति हुई है, इस तथ्य को मानते हुए भी यह कहा जा सकता है कि अन्य देशो की तुलना मे हमारे देश का उद्योग अब भी कई कारणो से पीछे है। यह स्मरणीय है कि बम्बई और अहमदाबाद इत्यादि कुछ केन्द्रो मे टैक्सटाइल गवेषण का महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है।

(4) कोयला और शक्ति भी पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त नही हैं।

(5) उपर्युक्त कठिनाइयो का एक कारण यह भी है कि परिवहन का सम्यक 'वकास नही हुआ है। यह कठिनाई अनेक रूप से बाधक है।

(6) भारत मे लम्बे रेशे की कपास अभी तक आवश्यकता से कम पैदा होती है और यद्यपि हम छोटे रेशे की कपास निर्यात करते हैं, बडे रेशे की कपास हमे आयात करनी पडती है। बडे रेशे की कपास का उत्पादन देश में और भी अधिक बढाने की आवश्यकता है।

(7) सरकारी नीति की अस्थिरता भी अनेक बार बाधक होती है। विशेष रूप से इन दिशाओ मे सरकारी नीति स्थिर और स्पष्ट होनी चाहिए— (क) उत्पादन-कर, (ख) व्यापारिक नीति, (ग) मूल्यो का स्तर, (घ) हैण्डलूम बनाम मिल-क्षेत्र, (ड) नियन्त्रण और प्रतिबन्धो की नीति इत्यादि।

(8) इसके अतिरिक्त अभिनवीकरण, लाभ-वितरण नीति, वित्त इत्यादि

दिशाओ मे भी स्वस्थ नीति का पालन होना चाहिए ताकि पूँजीपति और श्रमिको मे सघर्ष न हो और उद्योग की उन्नति मे रुकावट न पड़े ।

चीनी उद्योग (Sugar Industry)

चीनी उद्योग भारतवर्ष मे दूसरा सबसे बड़ा उद्योग है । सूती वस्त्र के बाद दूसरा नम्बर चीनी उद्योग का है ।

भारतवर्ष मे पहले जब कि गन्ने का उत्पादन काफी अधिक होता था विदेशो की सफेद चीनी, मिल उद्योग की कम लागत और भारत मे लागत से भी कम मूल्य पर बिकने के कारण भारतवर्ष मे गन्ने के उत्पादन को धक्का लगा ।

प्रथम महायुद्ध के समय भारतवर्ष में गन्ना और चीनी का उत्पादन प्रारम्भ किया गया परन्तु यह उत्पादन सन्तोषजनक नही था । सन् 1931 के लगभग $5\frac{1}{2}$ लाख मैट्रिक टन चीनी का आयात करना पड़ा । सन् 1932 मे चीनी उद्योग को 14 वर्ष के लिए सरक्षण दिया गया जो बाद मे एक साल के लिए और बढ़ा दिया गया । 31 मार्च, 1947 को फिर जाँच की गई और पहले दो साल के लिए और बाद मे एक साल के लिए अर्थात् 31 मार्च, 1950 तक संरक्षण दिया गया ।

सन् 1931-32 में देश मे कुल 32 कारखाने थे । यह प्रसन्नता की बात है की सरक्षण प्राप्त होते ही भारत मे चीनी का उत्पादन एकदम बढने लगा । 1932-33 मे जब कि केवल 295 हजार मैट्रिक टन चीनी का उत्पादन किया गया था 1939-40 मे वह उत्पादन बढकर 1,261 हजार मैट्रिक टन हो गया अर्थात् $4\frac{1}{2}$ गुने के लगभग उत्पादन बढा ।

सन् 1937-38 मे जबकि 1,333 हजार हैक्टर मे गन्ना बोया गया था, 1940-41 मे 1,617 हजार हैक्टर भूमि मे गन्ना बोया गया । गन्ने की किस्म मे सुधार हुआ । (सन् 1931-32 मे 473 हजार हैक्टर भूमि मे गन्ना बोया गया था) ।

सन् 1942 मे चीनी के मूल्य पर नियन्त्रण (कन्ट्रोल) लगा दिया गया और गुड के उत्पादन पर भी नियन्त्रण रक्खा गया । परिणाम यह हुआ कि यद्यपि चीनी के बढते हुए मूल्य को रोक दिया गया तथापि उसका उत्पादन गिर गया । परन्तु सरकार ने चीनी के उत्पादन के ऊपर इस प्रभाव को देख कर नियन्त्रण

मूल्य को बढा दिया और 16·41 रु० प्रति 50 किलोग्राम से सन् 1944 में 20 59 रु०, सन् 1945 मे 21 09 रु० और 1946-47 मे बढ़ाकर 27 96 रु० प्रति 50 किलोग्राम कर दिया। इस प्रकार हम चीनी के उत्पादन मे पुनः वृद्धि देखते है। दिसम्बर, 1947 मे चीनी पर से नियन्त्रण हटा दिया गया परन्तु गन्ने का मूल्य 1 67 रु० से 2 68 रु० प्रति 50 किलोग्राम कर दिया, इसलिए मिलो को गन्ना अधिक मात्रा मे मिल सका और उत्पादन एक दम बढ गया। चीनी के उत्पादन की स्थिति सन्तोषजनक होने के कारण 31 मार्च, 1950 को सरक्षण हटा लिया। सन् 1952 मे नियन्त्रण हटा लिया गया।

वर्तमान दशा—

सन् 1955-56 मे भारत मे चीनी की कुल फैक्टिूयो की सख्या 160 थी जिसमे से 73 उत्तर प्रदेश मे, 30 बिहार मे, 16 महाराष्ट्र मे, 10 आन्ध्र प्रदेश मे और 6 मद्रास मे थी।

योजना-काल मे चीनी उद्योग के विकास की एक विशेषता यह रही है कि गन्ना उत्पादको की सहकारी मिले स्थापित की गई है। 1961-62 मे चीनी मिलो की सख्या 179 थी जिनमे से 25 सहकारी मिले थी।

उपभोग — सन् 1951-52 मे भारतवर्ष मे चीनी का उपभोग लगभग 12 लाख मैट्रिक टन था सन् 1661 62 मे लगभग 25 लाख मैट्रिक टन हो गया। भारतवर्ष मे चीनी का प्रति व्यक्ति उपयोग सन् 1950-51 में 3 1 7 कि० ग्रा० था, सन् 1961 62 मे 5 4 किलोग्राम हो गया। खण्डसारी और गुड का प्रति व्यक्ति उपभोग 9·5 किलोग्राम इसके अतिरिक्त है।

पूंजी—चीनी उद्योग (Sugar industry) मे 1,8·30 करोड रुपये की पूंजी लगी हुई थी[1] जिसमे से 50-55 करोड रु० अचल पूंजी थी।

रोजगार—सन् 1962 मे लगभग 192 हजार श्रमिक और 3,600 विश्व-विद्यालयो मे शिक्षित व्यक्ति चीनी उद्योग मे लगे हुए थे।

योजना काल मे चीनी उद्योग का विकास और तीसरी योजना का लक्ष्य—

सन् 1950-51 मे (प्रथम योजना के आरम्भ मे) भारत मे चीनी का उत्पादन 1,124 हजार मैट्रिक टन था। प्रथम योजना की अवधि के अन्त मे 1,890 हजार मैट्रिक टन हो गया। 1960-61 मे 30·29 लाख मैट्रिक टन

---

[1] The Times of India Year Book, 1963-64.

था । 1963 मे चीनी का निर्यात 4 79 लाख टन था ।

तीसरी योजना के लक्ष्य के अनुसार सन् 1965 66 मे चीनी का उत्पादन 35 6 लाख टन होगा ।

चीनी उद्योग की मुख्य समस्याएँ—

(1) **उत्पादन की अधिक लागत**—अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे चीनी की उत्पादन-लागत अधिक है । इसका निहरा प्रभाव पडता है । उत्पादको को लाभ लेने का अवसर कम मिलता है, इस प्रकार उत्पादन मे वृद्धि के लिए प्रोत्साहन नही रहता । विदेशी व्यापार की दृष्टि मे हानि रहती है और देश मे सामान्य व्यक्ति का उपभोग नही बढ पाता ।

चीनी की उत्पादन की लागत अधिक होने के मुख्य कारण निम्नलिखित है—

(क) फैक्ट्रियों का आकार आर्थिक दृष्टि मे लाभदायक नही है ।

(ख) चीनी उद्योग मौसमी है ।

(ग; गन्ने मे रस निकालने की रीतियाँ दोषपूर्ण है ।

(घ) रस साफ करने मे बहुत क्षति होती है ।

(ङ) हमारे गन्नो मे रस व मिठास प्राय: कम है ।

(च) चीनी मिलें गन्ने के खेतो से दूर हैं । इस कारण परिवहन मे अधिक व्यय होता है बैलगाडियाँ ही परिवहन का मुख्य साधन हैं । इससे असुविधा भी बहुत होती है ।

(छ) गौण पदार्थों का उपयोग नही हो पाता । शीरे का उपयोग अलकोहल, खाद इत्यादि के लिए किया जा सकता है । गन्ने के छिलके का उपयोग कागज और दीवारें (Sound-Proof walls) बनाने मे किया जा सकता है । इस प्रकार कुल लागत गिराई जा सकती है ।

(2) **गन्ने का मूल्य** पहले मिल मालिक गन्ने का बहुत कम मूल्य दिया करते थे और इससे गन्ना उत्पादको को बहुत हानि रहती थी । इस स्थिति (Buyer's monopoly) को रोकने के लिए केन्द्रीय सरकार गन्ने का मूल्य निर्धारित करती है । परन्तु गन्ने के मूल्यो मे परिवर्तनो का उद्योग पर बहुत प्रभाव पड़ता है ।

मूल्य-परिवर्तनों के मुख्य प्रभाव ये हैं—(क) खेत मे गन्ना उगाया जाय या कोई दूसरी फसल, (ख) गन्ना फैक्ट्री को बेचा जाय या गुड बना लिया जाय,

(ग) यदि चीनी के मूल्य पर नियन्त्रण है तो फैक्ट्री मालिक सोचता है कि निर्धारित मूल्य पर गन्ना खरीदा जाय या गन्ना फैक्ट्री बन्द कर दी जाय।

(3) **तौल के आधार पर गन्ने का मूल्य**—अच्छे-बुरे सभी प्रकार के गन्ने का मूल्य तौल के आधार पर निर्धारित होता है। इससे गन्ना-उत्पादको को अच्छी किस्म का गन्ना उगाने के लिये प्रोत्साहन नही रहता। इनका चीनी की लागत पर बुरा प्रभाव पडता है। मूल्य-निर्धारण का आधार गन्ने मे चीनी का अश होना चाहिए। गन्ने की खेती और किस्म के सुधार के लिए अन्य उपाय भी काम मे लेने चाहिए। अब गन्ने का मूल्य निर्धारित करने मे उसके चीनी-अश (Sugar content) पर ध्यान दिया गया है।

(4) **कारखाने का आधार**— फैक्ट्री का आकार आर्थिक होना चाहिए। वर्तमान दशाओ मे वे फैक्ट्रियाँ आर्थिक कही जा सकती हैं जिनमे 700 से 800 मैट्रिक टन गन्ना प्रतिदिन काम मे आता हो। भारत मे कई कारखाने अनार्थिक आकार के हैं, अत: चीनी उत्पादन की लागत अधिक है।

(5) **गधक की कमी**—भारत मे गधक की कमी है। गधक की आवश्यकता चीनी शुद्ध करने के लिए पडती है। इस कमी को पूरा करने के लिए चीनी शुद्ध करने की दूसरी रीति जिसमे चूना काम मे लिया जाता है, अपना ली गई है।

(6) **सरकारी नीति**—उत्पादन कर, व्यापारिक नीति, गन्ने के मूल्य और नियत्रण इत्यादि के विषय मे सरकारी नीति की अस्पष्टता तथा अस्थिरता प्राय बाधक रही है।

जूट उद्योग

जूट उद्योग मिल उद्योग के रूप मे सन् 1855 के पश्चात् आरम्भ हुआ। सबसे पहला मिल जार्ज ऑकलैंड और कैर के प्रयत्नो से रिशरा मे स्थापित किया गया। इसका काम 4 वर्ष पश्चात् ठीक प्रकार आरम्भ हुआ, जब कि इसका उत्पादन कुल 8 टन प्रतिदिन था। सन् 1859 मे बोर्नियो जूट कम्पनी की स्थापना हुई। सन् 1864 तक कम्पनी का काम बहुत बढ गया और 8 साल पश्चात् एक लिमिटेड कम्पनी के रूप मे कम्पनी का नाम बर्नागोर जूट फैक्ट्री कम्पनी लिमिटेड हो गया। शीघ्र ही चार अन्य मिलो की स्थापना हुई।

प्रथम महायुद्ध के समय (1914) जूट उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला परन्तु सन् 1930 में विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी Depression) हो जाने के कारण इस उद्योग को भी धक्का लगा, परन्तु फिर भी थोड़ा-बहुत विकास होता रहा जिसका विशेष कारण यही था कि बोरों के लिए जूट से सस्ता और कोई रेशा उपलब्ध नहीं था और जूट का उत्पादन प्रायः भारतवर्ष (विभाजन से पूर्व) तक ही था।

सन् 1936 के पश्चात् जूट की कृषि और तत्सम्बन्धित गवेषणा का विकास इण्डियन सेंट्रल जूट कमेटी की स्थापना के बाद हुआ। मार्केटिंग और परिवहन के साधनों में भी विकास हुआ।

सन् 1939 से युद्ध आरम्भ होने के कारण जूट मिल उद्योग को अधिक प्रोत्साहन मिला यद्यपि परिवहन की पर्याप्त सुविधाओं के न मिलने के कारण अधिक उन्नति न हो सकी।

सन् 1947 में विभाजन के पश्चात् 76% जूट का क्षेत्रफल पाकिस्तान में चला गया, परन्तु जूट की समस्त मिलें भारतवर्ष में पश्चिमी बंगाल में आ गईं। इस प्रकार भारतवर्ष की जूट की मिलों के लिए कच्चा जूट मिलना अनिश्चित हो गया। नवम्बर, 1947 ई० में पाकिस्तान की सरकार ने कच्चे जूट के उत्पादन और जूट के निर्यात पर भारी कर लगा दिया। अतः कच्चे जूट के लिए भारतवर्ष की स्थिति बहुत बिगड़ गई और उद्योग की प्रगति रुक गई। सन् 1948 में भारत और पाकिस्तान के बीच समझौता हुआ परन्तु वह ठीक प्रकार से न चल सका। जो कुछ जूट मिलता भी था वह सितम्बर, 1949 ई० में भारतवर्ष में रुपये के अवमूल्यन के निश्चय पर पाकिस्तान ने देना बन्द कर दिया। पाकिस्तान में रुपये का मूल्य ज्यों का त्यों रक्खा गया। जब वहाँ से जूट मिला तो अवमूल्यन के कारण महँगा पड़ा। इधर खाद्य समस्या के कारण खाद्यान्नों के उगाने की ओर अधिक ध्यान दिया गया था: परन्तु इससे जूट उद्योग के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ने के कारण भी उत्पादन की ओर ध्यान दिया गया। कच्चे जूट के मूल्य को भी यथासम्भव बढ़ने से रोकने का प्रयत्न किया गया।

जूट मिलो का राज्यवार वितरण 1962 मे इस प्रकार था —

पश्चिमी बगाल	98	उत्तर प्रदेश	3
आन्ध्रा प्रदेश	4	मध्य प्रदेश	1
बिहार	3		
		कुल	109

जूट उद्योग का केन्द्रीकरण

जूट उद्योग के पश्चिमी बगाल मे और वहाँ भी अधिकतर हुगली के किनारे केन्द्रीयकरण के मुख्य कारण ये है :—

(1) जूट की खेती के लिए उपजाऊ और नई मिट्टी की आवश्यकता होती है। साथ ही काफी वर्षा और निरन्तर गर्मी होनी चाहिए। ये दशाएँ गगा की निचली घाटी (डेल्टा प्रदेश) उपलब्ध है और वहाँ जूट की खेती सबसे अधिक होती है।

(2) हुगली नदी और स्थान-स्थान पर पाए जाने वाले गर्तो मे जूट पकाने और धोने के लिए पानी मिल जाता है।

(3) बगाल की घनी जनसख्या मे मजदूर सस्ते मिल जाते है और सैकड़ो वर्षो से चले आते हुए उद्योग के लिए कुशल श्रमिको की भी पर्याप्त मात्रा मे पूर्ति हो जाती है।

(4) जल परिवहन और रेल परिवहन की सम्यक् सुविधाएँ प्राप्त है।

(5) रानीगज और झरिया के कोयला क्षेत्र समीप है।

(6) कलकत्ता का बन्दरगाह समीप है जहाँ से जूट का माल निर्यात करना सरल है।

कठिनाइयाँ

जूट की उन्नति पर कुप्रभाव डालने वाले कई कारण थे, जैसे मजदूरो की हड़ताले, बढ़ती हुई कीमत और कच्चे जूट की अनिश्चितता। इसके अतिरिक्त व्यवस्था की कार्यक्षमता मे कमी और मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी बाधक सिद्ध हुए। युद्ध-काल मे हमारे यहाँ मशीनो का बदलना भी सम्भव न हो सका जब कि विदेशो मे नये प्रकार की मशीनो का प्रयोग आरम्भ हुआ और उन्हे

पाकिस्तान से भारत की अपेक्षा सस्ता जूट मिल सका। यह स्पष्ट है कि जब तक कच्चे जूट का मिलना अनिश्चित रहेगा, भारतवर्ष का जूट उद्योग अनिश्चित दशा मे रहेगा। इसलिए देश मे जूट का उत्पादन बढाना अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त नई मशीनो का प्रयोग, व्यवस्था मे सुधार और लाभ वितरण नीति मे सुधार आवश्यक है विदेशो मे जूट के स्थानापन्न पदार्थ की खोज का सफल प्रयत्न किया जा रहा है।

यद्यपि जूट के माल के उत्पादन मे भारत का एकाधिकार नही है तथापि जूट के माल के उत्पादन मे भारत अब भी अग्रणी है। संसार की कुल जूट मिलो के आधे से अधिक करघे भारतवर्ष मे है।

पंचवर्षीय योजनाओं मे प्रगति तथा वर्तमान दशा

कच्चे जूट की कमी के कारण प्रथम योजना मे मिलो की संख्या में वृद्धि अथवा मिलो मे विस्तार की ओर ध्यान देने की अपेक्षा शक्ति (Idle capacity) का पूर्ण उपयोग करके उत्पादन मे वृद्धि करने की ओर ध्यान दिया।

प्रगति अनेक कठिनाइयो के कारण (जिनका उल्लेख अन्यत्र किया गया है) जूट उद्योग की प्रगति सतोषजनक नही रही है। जूट के माल का उत्पादन और तीसरी योजना मे उत्पादन के लक्ष्य इस प्रकार हैं—

वर्ष	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66
उत्पादन (हजार मैट्रिक टनो मे)	906	1,159	1,082	1,300

सन् 1960-61 मे जूट के माल के उत्पादन का लक्ष्य 12 करोड़ मैट्रिक टन से अधिक था, वह पूरा न हो सका। जूट के माल के उत्पादन मे घटा-बढी होती रही है।

वर्तमान दशा, मिलें और करघे—भारत मे 15 जूट मिलें है। करघो की सख्या 72 हजार से अधिक है। भौगोलिक तथा अन्य कारणो के परिणामस्वरूप जूट की अधिकतर मिलें कलकत्ता के इर्द-गिर्द 65 किलोमीटर के घेरे मे स्थित हैं जिनमे अधिकतर हुगली नदी के किनारे पर हैं।

पूँजी—जूट उद्योग मे लगभग 68 करोड रुपये की पूँजी लगी

थी जिसमे लगभग 38 करोड रुपये अचल पूँजी और 30 करोड रुपये कार्यशील पूँजी थी।

रोजगार—जूट उद्योग मे प्रत्यक्ष रूप मे 2 लाख से अधिक श्रमिकों को रोजगार मिलता है।

उत्पादन और निर्यात—सन् 1960-61 मे भारतवर्ष मे जूट के माल का कुल उत्पादन 10 82 लाख मैट्रिक टन था, निर्यात लगभग 9 लाख मैट्रिक टन था। 1963 मे जूट के माल का उत्पादन लगभग 13 लाख मैट्रिक टन था। निर्यात 9 लाख टन से कुछ अधिक और निर्यात मूल्य 160 करोड रु० था।

तीसरी योजना मे (1965-66 मे) कच्चे जूट का उत्पादन लक्ष्य 62 लाख गाँठ रखा गया है और जूट के माल के उत्पादन का 13 लाख टन।

समस्याएँ

जूट उद्योग के विकास मार्ग मे मुख्य कठिनाइयाँ* निम्नलिखित हैं :—

(1) स्थानापन्न पदार्थों से स्पर्द्धा—विदेशो मे जूट के माल उत्पादन मे वृद्धि हुई है और साथ ही साथ नये पदर्थों का प्रयोग आरम्भ किया गया है। इस प्रकार भारत के बने माल की माँग कम होने का निरन्तर भय है।
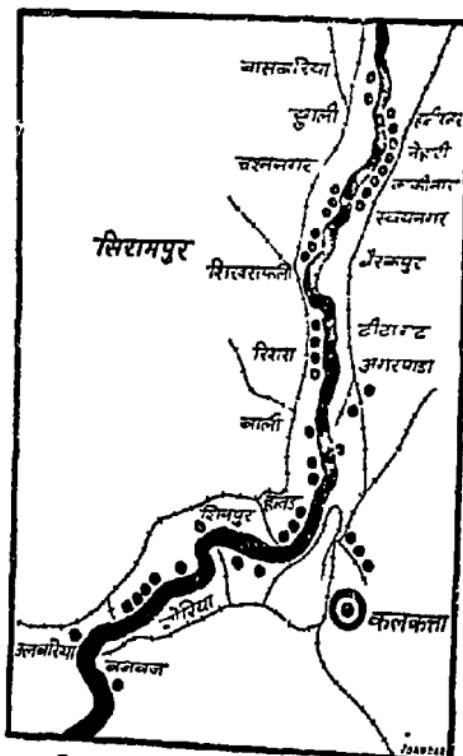
चित्र 36—हुगली के किनारे जूट मिलें

* कुछ कठिनाइयाँ इस अध्याय मे पहले बताई जा चुकी है।

(2) कच्चे माल की कठिनाई—विभाजन (1947) के पश्चात् कच्चे माल की अनिश्चितता और कमी के कारण भारत के जूट उद्योग को भारी हानि पहुँची। इस कठिनाई पर विजय पाने के लिए भारत सरकार ने तीन मुख्य उपाय अपनाए—(क) पाकिस्तान के साथ समझौते किए परन्तु इस दिशा मे अधिक सन्तोष नहीं रहा; (ख) देश मे कच्चे जूट के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए प्रयत्न किए गये हैं; (ग) विमली, मेस्ता इत्यादि अन्य रेशो के पदार्थों का उत्पादन करके जूट उद्योग में काम लिया गया है।

(3) जूट की मशीनें विदेशो से आती थीं और युद्ध-काल में यों भी मशीनो का बदलना सम्भव नहीं हो सका। अब देश मे जूट उद्योग के लिए यन्त्रो का निर्माण प्रारम्भ हुआ है और नये प्रकार के करघे लगाये जा रहे हैं।

(4) निर्यात—जूट का माल देश के लिए विदेशी मुद्रा कमाने मे चाय के अतिरिक्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जूट के निर्यात पर पहले कर था। अगस्त, 1959 ई० मे यह हटा दिया गया है। निर्यात में वृद्धि करने की दृष्टि से अन्य देशों के साथ व्यापारिक समझौते किये गये हैं। भारतीय जूट उद्योग सघ (I. J. M. A.) की ओर से भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण प्रयत्न किये गये हैं जिनमें दूसरे देशो को मिशन भेजना, उत्पादन की किस्म-सुधार की ओर ध्यान देना, इत्यादि प्रमुख हैं।

लोहा-इस्पात उद्योग

लोहा और इस्पात उद्योग आधारभूत उद्योग (Key industry) है क्योंकि अन्य उद्योगो के लिए आवश्यक मशीनरी इत्यादि मिलती हैं। देश की रक्षा की दृष्टि से भी इस उद्योग का महत्व अधिक है।

भारत मे लोहा और लोहे की अन्य चीजें बनाने का काम बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है और विदेशों से व्यापार होता रहा है। देहली मे लौह स्तम्भ, जो लगभग दो हजार वर्ष पुराना है, इस बात का पर्याप्त प्रमाण है। भारतवर्ष में ढाल, तलवारें इत्यादि बहुत पुराने समय से बनती आ रही हैं। कुछ आदिवासी जिन्हे भूभड़िया या गाड़िया लोहार कहते हैं, आज तक भी अपने पुराने ढंग से ही लोहे की चीजें बनाते हैं यद्यपि आधुनिक ढग पर लोहा-इस्पात उद्योग का विकास होने के कारण उनका धन्धा नष्ट-प्राय हो गया है।
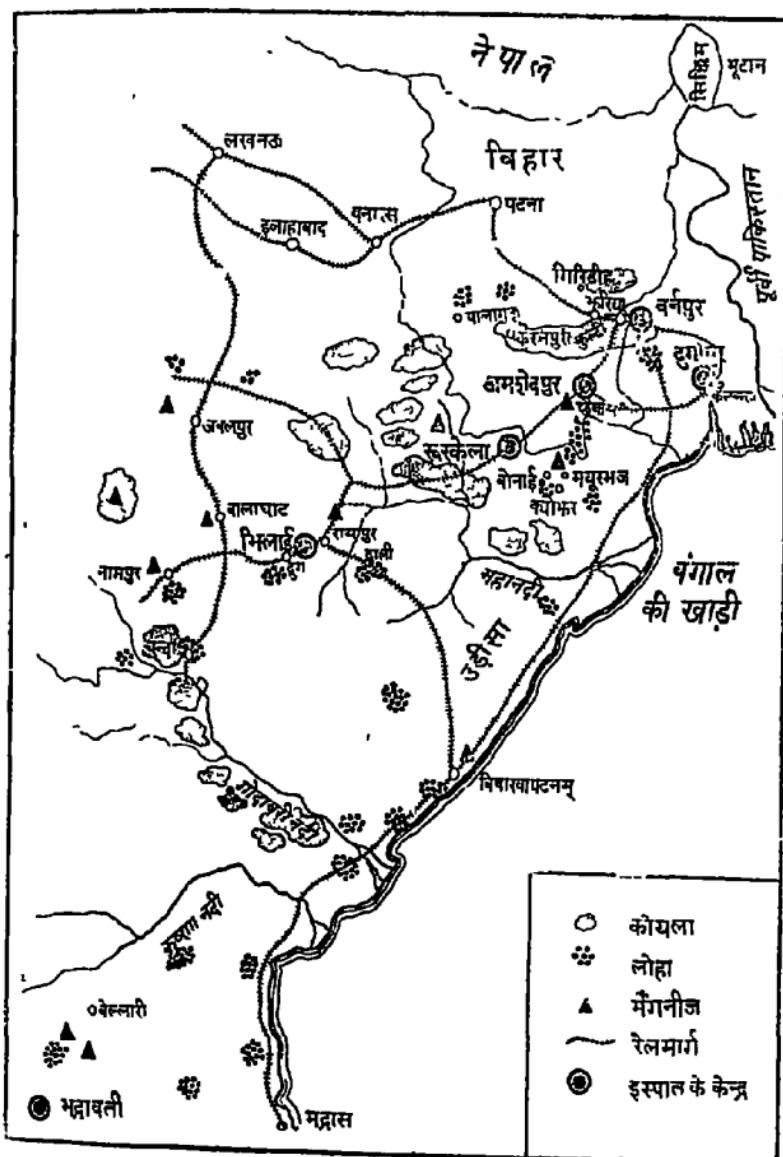
चित्र 37—भारत मे कोयला, लोहा, मैंगनीज तथा इस्पात के केन्द्र

लोहा और इस्पात उद्योग की आधुनिक ढग पर स्थापना करने का प्रयत्न सन् 1779 और उससे पहले भी किया गया, परन्तु उचित जानकारी के प्रभाव मे तथा कुछ कठिनाइयो के कारण सफलता न मिल सकी। सन् 1887 मे कुल्टी मे बाराकर आइरन फाउण्ड्री (जो बाद मे बाराकर आयरन एण्ड स्टील कम्पनी के हाथो मे चली गई) की स्थापना हुई, जिसका नाम दो वर्ष पश्चात् बङ्गाल आयरन कम्पनी पडा। सबसे पहले इसी कम्पनी ने आधुनिक ढग पर कच्चा लोहा बनाया था।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण इस्पात निर्माण का सफल प्रयत्न टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी के द्वारा हुआ जिसकी स्थापना जमशेद जी टाटा के प्रयत्नो के फलस्परूप हुई। टाटा सन्स ने अमेरिक: विशेषज्ञो की सहायता से सन् 1908 मे साक्ची मे स्टील का कारखाना खोला। सबसे पहली बार सन् 1911 मे ढाला हुआ लोहा बनाया गया और एक वर्ष पश्चात् इस्पात भी बनाया गया। यह स्थान अब जमशेदपुर के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रथम महायुद्ध से इस व्यवसाय को प्रोत्साहन मिला। सन् 1918 में आसनसोल जंकशन से लगभग 6 किलोमीटर दूर हीरापुर मे दी इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना हुई जिसमे सन् 1936 मे कुल्टी में स्थित बगाल आयरन कम्पनी लिमिटेड को मिला दिया गया। सन् 1937 में बंगाल स्टील कार्पोरेशन का निर्माण किया गया।

इससे पहले ही सन् 1921 मे मैसूर राज्य मे भद्रावती मे मैसूर आयरन एण्ड स्टील क० लि० प्रारम्भ किया गया जिसमे सन् 1934 मे और भी अधिक वृद्धि हुई। भद्रावती का यह कारखाना भद्रा नदी के किनारे बिरूर-शिमोगा रेलवे लाइन पर स्थित है। इस कारखाने को दक्षिण की ओर निकटवर्ती बाबा बूदन पहाड़ियो से कच्चा लोहा मिलता है। चूने का पत्थर भी निकट ही भाण्डी-गुड्डा से मिल जाता है। इस कारखाने की मुख्य कठिनाई यह है कि यहाँ उपयुक्त परिवहन के साधनो का अभाव है इसलिए माल बाहर भेजने मे कठिनाई होती है। पत्थर का कोयला नहीं मिलता, परन्तु निकटवर्ती वनो मे लकडी का कोयला पर्याप्त मात्रा मे मिल जाता है। इस कारखाने को मिलने वाला कच्चा लोहा कुछ घटिया किस्म का है।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् विदेशो से स्पर्द्धा का देश के लोहा-इस्पात उद्योग पर कुप्रभाव पडा। इसलिए 1924 ई० मे इस उद्योग को सरक्षण देने के

लिए विचार किया गया और पहले-पहल तीन साल के लिए संरक्षण दिया गया। सन् 1926 और सन् 1934 मे इसकी पुन. जाँच हुई। इस प्रकार सन् 1941 तक और फिर द्वितीय युद्ध छिड जाने से मार्च, 1947 तक सरक्षण दिया गया। सरक्षण से लोहा और इस्पात उद्योग मे पूर्ण लाभ हुआ। द्वितीय महा-युद्ध में लोहा और इस्पात का आयात गिर गया और आयात का मूल्य बढ जाने से विदेशो से स्पर्धा प्रायः समाप्त हो गई।

सन् 1939 से सन् 1944 तक युद्ध के लिए लोहा और इस्पात की आवश्यकता होने के कारण युद्ध के आवश्यक सामान के मूल्य पर नियन्त्रण लगा दिया गया था और जुलाई, 1944 से लोहे के प्रत्येक पदार्थ के मूल्य पर नियन्त्रण लगा दिया गया था परन्तु सन् 1946 से नियन्त्रण मे कुछ अन्तर कर दिया गया। यह स्पष्ट था कि द्वितीय महायुद्ध से लोहा और इस्पात उद्योग की उन्नति पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी मे इस समय लगभग 42 करोड रुपए की पूँजी लगी हुई है और द्वितीय महायुद्ध से इस कम्पनी ने बहुत ही अच्छे किस्म का इस्पात बनाना शुरू किया है जो कि विदेशो के मुकाबले का है। कई प्रकार का युद्ध का सामान भी बना और बहुत बढिया किस्म के पेच, छडे, स्टेनलैस स्टील (जिन पर धब्बा नही लगता), सर्जरी के औजार इत्यादि अनेक प्रकार के सामान बनाये जाने लगे। युद्ध-काल मे रेलवे और देश के अन्य उद्योगो के लिए सीमेण्ट और तेल उद्योग के लिए इस्पात का सामान बनाया और कुछ विशेष प्रकार के स्टील भी बनाए गए।

इसके अतिरिक्त देश मे विभिन्न प्रकार का सामान बनाने की लगभग 92 मिलें और कुछ महत्वपूर्ण रेलवे वर्कशाप्स हैं।

टाटा स्टील कम्पनी की विशेषता यह है कि यह कम्पनी कोयला के क्षेत्रो के समीप है और इस कम्पनी का कोयला, कच्चा लोहा, चूने का पत्थर और कच्चा मैंगनीज के क्षेत्रो पर अधिकार है जहाँ से इसे आवश्यकतानुसार ठीक समय पर कच्चा माल मिलता रहता है और लोहा ढालने की लागत दुनिया मे प्राय सबसे कम है। वह कम्पनी देश की प्राय. तीन चौथाई आवश्यकता की पूर्ति करती है और लगभग 9 लाख व्यक्तियो को रोजगार देती है।

देश मे अन्य सहायक उद्योगो का भी विकास हुआ है, विशेषत: टीन

बनाने का, मशीन बनाने का, तार बनाने का, चोत्रा और कीले बनाने का, बाल्टियाँ और ट्रङ्क बनाने का, रेल के पहिये इत्यादि बनाने का और इन्जीनियरिंग उद्योग का काफी विकास हुआ है।

सन् 1953 मे एक जर्मन फर्म क्रप्स एण्ड डीमाग के साथ सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात का कारखाना खोलने के सम्बन्ध मे एक समझौता हुआ और तदुपरान्त उडीसा राज्य मे राउरकेला मे हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड की नीव डाली गई। यह सरकारी इस्पात कारखाना दलडीह के कच्चे लाहे के क्षेत्र तथा वीरमित्रपुर के समीप हाथीवारी क्षेत्र के चूने के पत्थर के क्षेत्रों के निकट है। इस क्षेत्र मे आवश्यक खनिज और अन्य सुविधाएँ भी प्राप्त हैं।

सन् 1955 मे सोवियत रूस के साथ टैकनीकल और आर्थिक सहायता के लिए एक समझौता करके भिलाई (मध्य प्रदेश) मे सरकारी इस्पात कारखाना स्थापित करने का निश्चय हुआ। भिलाई दुर्ग जिले में स्थित है। दुर्ग और चन्दा में कच्चे लोहे (Iron ore) के पर्याप्त भण्डार हैं। यहाँ का कच्चा लोहा बहुत अच्छी कोटि का है। भिलाई से दक्षिण की ओर बीस मील दूरी पर राजहारा की पहाड़ियों में लोहा मिलता है और समीप ही अन्य कई महत्वपूर्ण लोह-क्षेत्र हैं। कोयले की दृष्टि मे भी भिलाई की स्थिति महत्वपूर्ण है। भिलाई से पश्चिम की ओर लगभग 24 कि० मी० की दूरी पर बहुत अच्छी प्रकार का कोयला मिलता है। विशेषकर कोरवा के नये कोयला-क्षेत्रों से भिलाई की स्थिति का महत्व बढ गया है। पूर्व की ओर रायपुर जिले मे अच्छी किस्म का डोलोमाइट मिलता है। उत्तर की ओर बिलासपुर जिले में भी डोलोमाइट पाया जाता है। दुर्ग जिले में चूने का पत्थर भी मिलता है और समीप ही छत्तीसगढ में चूने के पत्थर के विस्तृत क्षेत्र हैं। भिलाई मे सरकारी लोहा और इस्पात का कारखाना खोलने का अन्तिम निर्णय मार्च 1955 ई० में हुआ था।

सितम्बर, 1955 ई० में पश्चिमी बंगाल स्थित दुर्गापुर मे एक तीसरा इस्पात का सरकारी कारखाना खोलने का निश्चय हुआ।

इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी ने पहले ही (आइरन एण्ड स्टील कम्पनीज एमलगामेशन एक्ट) 1952 के आधार पर स्टील कॉरपोरेशन ऑव बङ्गाल को मिला दिया गया था।

कुछ मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रथम पचवर्षीय योजना-काल मे लोहा इस्पात उद्योग के विकास की आधारशिला रख दी गई थी।

पहली दो योजनाओ की अवधि मे लोहा-इस्पात उद्योग का विकास तथा तीसरी योजना का लक्ष्य

दूसरी योजना मे लोहा-इस्पात उद्योग के विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया और तीसरी योजना मे भी दिया गया है।

दूसरी योजना की अवधि मे सार्वजनिक क्षेत्र के स्टील प्लान्टो का विकास क्रम जारी रहा और निजी क्षेत्र मे पर्याप्त प्रगति हुई।

भारत मे लोहा इस्पात का उत्पादन
(लाख मैट्रिक टनो में)

वर्ष	ढला लोहा (पिग आयरन)	तैयार स्पात (Finished Steel)
1950	15 87	10·20
1955	17 81	12 80
1961	49·60	28 51

दूसरी योजना की अवधि मे टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (TISCO) का उत्पादन लगभग 8 लाख मैट्रिक टन इस्पात से बढ़ाकर 15 लाख मैट्रिक टन तथा इण्डियन आयरन स्टील कम्पनी (IISCO) का उत्पादन 3 लाख मैट्रिक टन से बढाकर 8 लाख मैट्रिक टन करने का कार्य पूरा किया गया।

मैसूर आयरन एण्ड स्टील क० लि० मे सन् 1960-61 मे 1 लाख टन इस्पात तैयार करने की व्यवस्था रखी गई थी। राउरकेला, भिलाई और दुर्गापुर के इस्पात-सयन्त्रो की उत्पादन क्षमता 1960-61 मे प्रत्येक की 10 लाख टन करने की व्यवस्था थी।

नये कारखानों का कार्यारम्भ—राउरकेला मे पहली धमन भट्टी का उद्‌घाटन और इस्पात उत्पादन का प्रारम्भ फरवरी, 1959 मे हुआ। दूसरी भट्टी का कार्य जनवरी, 1960 मे आरम्भ हुआ। भिलाई स्टील वर्क्स की कोयला-भट्टियो, उपोत्पाद सयन्त्रो तथा तीन धमन-भट्टियो का उत्पादन कार्य फरवरी, 1959 तथा दिसम्बर, 1960 के बीच आरम्भ हुआ। दुर्गापुर सयन्त्र का उत्पादन कार्य दिसम्बर, 1959 मे आरम्भ हुआ।

दूसरी योजना के अन्त मे (1960-61) मे तैयार इस्पात का उत्पादन 22 4 लाख मैट्रिक टन था जबकि लक्ष्य 43 7 लाख मैट्रिक टन उत्पादन का था।[1]

तीसरी योजना के अन्त में (1965-66) मे इस्पात के ढोकों (Steel ingots) के उत्पादन का लक्ष्य 93·5 लाख मैट्रिक टन निर्धारित किया गया है। इस्पात के ढोको की उत्पादन क्षमता 104 लाख मैट्रिक टन और विक्रय योग्य ढला लोहा लगभग 15 लाख मैट्रिक टन करने का लक्ष्य है।

इस्पात के ढोको के लक्ष्य मे निजी क्षेत्र का भाग (Share) 32 5 लाख मैट्रिक टन रखा है।

निजी क्षेत्र द्वारा बिक्री योग्य ढले लोहे का उत्पादन का लक्ष्य 3 (तीन) लाख टन निर्धारित किया गया है।[2]

सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात उत्पादन के विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत, भिलाई, दुर्गापुर और राउरकेला के इस्पात संयन्त्र का विस्तार किया जाएगा। मैसूर आयरन एण्ड स्टील क० लि० में भी विस्तार होगा और बोकारो मे एक नए संयन्त्र (Plant) की स्थापना की जायगी। इनके अतिरिक्त नेवेली लिगनाइट से कोक प्राप्त करके उसका उपयोग ढले लोहे (पिग आयरन) के सयन्त्र मे किया जायगा। चौथी योजना मे गोआ तथा कुछ अन्य क्षेत्रों मे इस्पात के कारखाने स्थापित करने का विचार है।

बोकारो के नये कारखाने की क्षमता 20 लाख टन इस्पात के ढोको की होगी परन्तु प्रथम चरण में दस लाख टन इस्पात के उत्पादन की सुविधाओं की व्यवस्था की जायगी। अनुमान है, बोकारो के कारखाने से इस्पात का उत्पादन चौथी योजना में आरम्भ हो पाएगा।

भारत मे इस्पात उद्योग के विकास की सम्भावनाएँ और समस्याएँ

भारतवर्ष मे इस्पात उद्योग का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। सार्वजनिक क्षेत्र मे जहाँ-जहाँ बड़े कारखाने खुले हैं वहाँ उद्योग के विकास के लिए

---

1 1 टन=1·016 मैट्रिक टन।

2 निजी क्षेत्र में 'टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' (TISCO) और इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० (IISCO) हैं।

पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं । इसी प्रकार कुछ अन्य क्षेत्रों में भी प्राप्त हैं और इन सुविधाओं के आधार पर इस्पात के वर्तमान कारखानों मे विकास हो सकेगा एवं नये कारखाने खोले जा सकते है । उदाहरण के लिए मद्रास मे सलेम और त्रिचनापल्ली जिलो मे लोहा और इस्पात उद्योग प्रारम्भ करने के लिए अच्छी कोटि का लोहा, चूने का पत्थर और डालमाइट इत्यादि मिलते हैं । भारतवर्ष मे इस्पात उद्योग के विकास के लिए समय जो सुविधाएँ प्राप्त हैं उनमें मुख्य अधोलिखित हैं—

(1) योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये और बढ़ते हुए अन्य उद्योगों के लिए भारतवर्ष मे इस्पात और इस्पात की वस्तुओं की मांग निरन्तर बढ़ रही है ।

(2) हमारे देश मे जो कच्चा लोहा मिलता है उसमे धातु का अंश प्रायः 60 प्रतिशत से अधिक रहता है । यूरोप और अमेरिका के इस्पात के मुख्य उत्पादक देशों मे मिलने वाले कच्चे लोहे मे धातु का अंश प्राय. 50 प्रतिशत से कम रहता है ।

(3) भारतवर्ष के कुछ दक्षिणी क्षेत्रों मे जहाँ कोयले की, विशेषकर अच्छे कोयले की कमी है वहाँ विद्युत शक्ति से काम लिया जा सकता है । दक्षिणी भारत मे जल-विद्युत का विकास तीव्र गति से हो रहा है ।

(4) भारतवर्ष मे चूने का पत्थर, डोलोमाइट, मैंगनीज और अभ्रक इत्यादि इस्पात उद्योग के लिए आवश्यक पदार्थों के साधन भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं ।

(5) भारतवर्ष मे इस्पात के उत्पादन की लागत विश्व भर मे सबसे कम है । इसके प्रमुख कारण ये हैं—(क) सस्ता श्रम, (ख) लोहे को शुद्ध करने की कम लागत क्योंकि भारतीय कच्चे लोहे मे विदेशों की अपेक्षा धातु का अंश अधिक और फासफोरस का अंश बहुत कम होता है, (ग) भारत का कोयला यद्यपि बहुत अच्छी कोटि का नहीं है तथापि उसमे प्रायः गन्धक नही पाया जाता । विदेशों मे कोयले मे जहाँ गन्धक पाया जाता है उसे दूर करने मे व्यय लगता है ।

(6) भारतवर्ष का इस्पात और इस्पात का बना माल सुदूरपूर्वीय, मध्य-पूर्वीय और अफ्रीकी देशों मे सरलता से बेचा जा सकता है । ये देश जल-मार्गों

द्वारा भारतवर्ष के अत्यन्त निकट पड़ते हैं; इनके साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्ध भी अच्छे हैं और इन देशो मे इस्पात की माँग दिनो दिन बढ रही है।

समस्याएँ

भारतवर्ष में इस्पात उद्योग के विकास के मार्ग मे कुछ गम्भीर कठिनाइयाँ भी हैं जिनमे प्रमुख ये हैं—

(1) **पूँजी**—उद्योग के विकास के लिए बहुत भारी राशियो की आवश्यकता है और हमे देश के ही नही, विदेशी पूँजी बाजार भी टटोलने पड रहे है। विशेपकर, मशीनरी और अन्य आवश्यक सामान खरीदने के लिए हमे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है जिसके अभाव मे हमारी महत्वाकाक्षाएँ पूरी होने मे कठिनाई होगी।

(2) **टैक्नीकल व्यक्तियों और कुशल श्रमिकों का अभाव**--हमारे यहाँ इस्पात उद्योग सम्बन्धी आधुनिक टैकनीक जानने वाले अनुभवी इन्जीनियरों और कुशल श्रमिकों की कमी एक भारी समस्या है।

(3) **परिवहन की कठिनाई**—परिवहन की सम्यक सुविधाओं के अभाव मे कच्चा लोहा, कोयला एव अन्य आवश्यक पदार्थों का कभी-कभी कृत्रिम अभाव हो जाता है एव बने हुए माल को मण्डी तक पहुँचाने की कठिनाई रहती है।

(4) हमारे यहाँ का कोयला विदेशों की अपेक्षा सामान्यतया घटिया किस्म का है। कोयले की अपेक्षाकृत कमी भी है और कोयले के दाम बढ़े गये है। हमारे कोयले के क्षेत्र कच्चे लोहे के क्षेत्रो से अधिकतर दूर हैं।

(5) कुछ वर्षों मे मजदूरो की हडतालो से बहुत हानि हुई है।

कागज उद्योग

कागज उद्योग कुटीर उद्योग के रूप मे 10 वी शताब्दी मे ही प्रारम्भ हो गया था और हाथ के बने हुए कागज के कुटीर उद्योग को स्वदेशी आन्दोलन मे महात्मा गाँधी ने पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया। आधुनिक ढङ्ग पर कागज उद्योग का श्रीगणेश सन् 1860 के लगभग विलियम कैरे के द्वारा हुआ। दूसरा मिल सन् 1867 मे कलकत्ता के पास हुगली नदी के किनारे स्थापित हुआ। प्रारम्भ मे सफलता न मिल सकी।

सन् 1924 मे इस उद्योग को सरकार का संरक्षण प्राप्त हुआ जिससे उद्योग की और उन्नति हुई। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व देश का उपभोग 2 लाख मैट्रिक टन से कुछ अधिक था जिसका लगभग $1\frac{1}{2}$ लाख मैट्रिक टन आयात होता था।

द्वितीय महायुद्ध के समय आयात की असुविधाओ के कारण देश के कागज उद्योग को विकास का अवसर प्राप्त हुआ। सन् 1944 मे मिलो की संख्या 19 हो गई और कागज का उत्पादन बढकर 1 लाख मैट्रिक टन से अधिक हो गया जब कि 1937-38 मे कुल उत्पादन 55 हजार मैट्रिक टन से भी कम था। विभाजन के पश्चात् भारतवर्ष मे सन् 1949 मे 15 मिल थे। सन् 1950 मे कागज का उत्पादन 111 हजार मैट्रिक टन के लगभग था और प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से लगभग 60 हजार व्यक्तियो को रोजगार मिलता था।

कच्चे माल की दृष्टि मे कागज उद्योग की दशा सन्तोषजनक है। भारतवर्ष मे अभी तक न्यूज-प्रिन्ट (अखबारी कागज) बाहर से मँगाना पडता है जो लगभग 46 हजार मैट्रिक टन प्रति वर्ष है। अभी व्यवस्था मे और मशीनो के प्रयोग मे विकास होने की आवश्यकता है। देहरादून मे गवेषणात्मक कार्य सन्तोषजनक रूप मे हो रहा है। साक्षरता-प्रसार के लिए कागज के उत्पादन मे अभी काफी वृद्धि की आवश्यकता है।

भारतवर्ष मे सबसे अधिक कागज की मिले पश्चिमी बंगाल मे (6) हैं। देश मे 1960-61 मे कागज मिलो की कुल संख्या 24 थी।

मुख्य केन्द्र—उत्तर प्रदेश मे कागज की मिलें लखनऊ और सहारनपुर मे है। पश्चिमी बगाल मे कागज की मिले टीटागढ, रानीगज, काकीनारा और नैहाटी मे हैं। बिहार मे डालमियानगर, उड़ीसा मे ब्रजराजनगर (सभलपुर जिला), पूर्वी पजाब मे जगाधरी (अम्बाला जिला), महाराष्ट्र मे बम्बई और पूना, गुजरात मे अहमदाबाद, आन्ध्र राज्य मे राजमुन्द्री और कागज नगर (सिरपुर); मैसूर मे भद्रावती और केरल मे पुन्लूर, और मध्य प्रदेश मे नेपा नगर कागज उद्योग के केन्द्र हैं।

कागज उद्योग की स्थापना के लिए ये बातें अधिक महत्वपूर्ण हैं— (1) जल की समीपता, (2) आवश्यक रासायनिक पदार्थों की उपलब्धि, (3)

ईंधन का मिलना, (4) विक्रय क्षेत्रो की समीपता, और (5) परिवहन की सुविधाएँ ।

योजना काल में प्रगति—1950-51 मे भारत मे सब प्रकार के कागजो का कुल मिलाकर उत्पादन लगभग 116 हजार मैट्रिक टन था । प्रथम योजना-काल मे नेपानगर (मध्य प्रदेश) मे न्यूज प्रिन्ट (अखबारी कागज) का उत्पादन प्रारम्भ हुआ और सन् 1955-56 मे सब प्रकार के कागजो का कुल उत्पादन बढकर लगभग 2 लाख टन और 1961 मे 377 हजार मैट्रिक टन कागज का उत्पादन हुआ ।

कागज उद्योग मे भारत मे लगभग 11 करोड रुपये की पूँजी लगी हुई है और लगभग 88 हजार व्यक्तियो को रोजगार मिलता है ।

तीसरी योजना के लक्ष्य—सन् 1960-61 मे कागज उद्योग की उत्पादन क्षमता 417 हजार मैट्रिक टन थी, 1965-66 मे 8,33,000 मैट्रिक टन किए जाने का प्रस्ताव है । होशगाबाद (म० प्र०) मे 1,500 मैट्रिक टन की वार्षिक उत्पादन क्षमता का एक कारखाना खुलेगा जिसमे विशेष प्रकार का कागज बनाया जाएगा जिसके आयात पर काफी विदेशी मुद्रा खर्च करनी पडती रही है ।

अखबारी कागज (Newsprint) के उत्पादन मे पचगुना विस्तार किया जायगा । सन् 1960-61 मे उत्पादन $30\frac{1}{2}$ हजार मैट्रिक टन से 1965-66 मे 152 हजार मैट्रिक टन किया जायगा । नेपा मिल्स की उत्पादन क्षमता दूनी की जायगी और कुछ नई फैक्ट्रियाँ खोली जा रही हैं ।

चमडा उद्योग

चमडे के उद्योग का ग्रामोद्योग रूप के अतिरिक्त आधुनिक ढग पर भी विकास हुआ है । चमडा कमाने के ढग मे भी काफी उन्नति हुई है । भारतवर्ष मे औसत रूप से 162 लाख गाय-बैलो की खालें, 55 लाख भैसो की खालें, 232 लाख बकरो की और 151 लाख भेडो की खालें मिलती हैं जिनमे से लगभग 20% कसाईघरो से मिलती हैं । अकालो और पशुओ की बीमारियो मे खालो का उत्पादन अधिक हो जाता है । सन् 1939 से पहले इस उत्पादन का बहुत बड़ा भाग निर्यात किया जाता था परन्तु देश मे चमडा उद्योग का विकास होने के साथ-साथ अब निर्यात कम हो गया है । इस समय देश के

चमडा उद्योग मे लगभग 20 करोड़ रुपया लगा हुआ है। सन् 1958 मे चमडे के 12 बडे-बडे कारखाने थे, जिनमे 35 हजार व्यक्तियो को काम मिलता था और चमडा कमाने के कारखाने 250 थे। सबसे अधिक कारखाने उत्तर प्रदेश मे हैं।

सन् 1961 मे 12 कारखानो की पश्चिमी प्रकार के फुटवियर की उत्पादन क्षमता लगभग 70 लाख जोडे फुटवियर (जूते, चप्पल सैंडिल, इत्यादि) की थी और देशी प्रकार के जूतो इत्यादि की 44 लाख। कुटीर और छोटे पैमाने पर फुटवियर का उत्पादन लगभग 1,020 लाख जोडे था।

सन् 1952 मे चमडा कमाने की 94 फैक्ट्रियाँ थी जिनमे 8,180 मजदूर लगे हुए थे और 83 लाख रुपए अचल तथा 285 लाख रुपया की चल पूँजी लगी हुई थी।

चमडा और चमड़े का सामान बनाने के बडे पैमाने के उद्योग मे लगभग 10 करोड रुपये की पूँजी लगी हुई और 10 हजार व्यक्तियो को रोजगार मिल रहा था। छोटे पैमाने पर चमडा उद्योग मे[1] 7,63,000 व्यक्तियो को रोजगार मिल रहा था।

चमडा कमाने के दो ढग है। पुराना ढग भारतवर्ष के चमारो इत्यादि मे पाया जाता है। आधुनिक ढग पर चमडा कमाने का विकास हुए अभी अधिक दिन नही हुए हैं। सेना इत्यादि की आवश्यकताओ के लिए पाश्चात्य ढग पर चमडा कमाने का काम कानपुर मे स्थानीय बबूल इत्यादि की छालो से आरम्भ हुआ था। प्रथम महायुद्ध के पश्चात कानपुर, आगरा, कलकत्ता, मद्रास और बम्बई मे भैंसो की खालो से अच्छी प्रकार के बूट, चप्पलें आदि और सोल लैदर भी बनने लगे हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद इसका उत्पादन और भी बढ गया है।

क्रोम बनाने का विकास प्रथम महायुद्ध के पश्चात विशेष रूप से महत्व-पूर्ण है। कानपुर, कलकत्ता और मद्रास मे इसका उत्पादन अधिक होता है और देश मे उपभोग होने के अतिरिक्त यह चमडा ब्रिटेन को भी भेजा जाता है।

---

[1] According to the National Income Committee Report, 1954. The Times of India Year Book, 1963-64

यद्यपि विभाजन के पश्चात् इस दिशा मे कुछ हानि हुई है जिसका एक कारण यह भी है कि कसाईघरो के ऊपर कुछ राज्यो से नियन्त्रण लगा दिया गया है।

भारतवर्ष मे बकरो की खालो तथा कुछ अन्य खालो को कमाने का समुचित विकास नही हुआ है और इसलिए उनको निर्यात करना पडता है। चमड़ा कमाने की शिक्षा के लिए कई केन्द्र खोले गए हैं जिनमे कलकत्ता, जालन्धर, बम्बई और मद्रास की समस्याएँ मुख्य हैं। मद्रास मे एक केन्द्रीय अनुसन्धानशाला भी खुली है। उत्तरी भारत के कुछ राज्यो मे भी विकास हुआ है और कानपुर मे स्थापित टैनर्स फैडरेशन महत्वपूर्ण है।

चमडा उद्योग के ऊपर विभाजन का बुरा प्रभाव पडा। कच्चे माल की अनुपयुक्तता और चमडा कमाने के साधनो की कमी तथा परिवहन की अपर्याप्त सुविधाओ के कारण उद्योग का अधिक विकास नही हो सका है। अफ्रीका से चमडा कमाने के सामान का आयात बन्द हो जाने से भी हानि हुई है, परन्तु उद्योग के विकास के लिए अभी काफी क्षेत्र है। जीवन का स्तर ऊँचा उठते जाने मे बूट, चप्पलो इत्यादि की माँग बढ रही है। अनुसन्धान कार्यो मे काफी उन्नति की आशा है। चमडे की अन्य वस्तुएँ भी बनने लगी हैं। व्यवस्था मे भी सुधार हो रहा है। अभी चमड़े की वस्तुएँ बनाने के लिए देश मे मशीनो के प्रयोग की आवश्यकता है। कुशल मजदूरो और विशेषज्ञो का भी अभाव है। इस ओर आरम्भ मे अपने देश से योग्य छात्रो को शिक्षा पाने के लिए विदेशो मे भेजा जाना चाहिए। कच्चे चमड़े का निर्यात उचित नही है और उस पर रोक लगा देनी चाहिए। इस उद्योग का भविष्य आशापूर्ण है।

काँच उद्योग

काँच उद्योग भारतवर्ष मे कई हजार वर्ष पुराना है। कई सदी ईसा पूर्व भी यह उद्योग भारत मे विद्यमान था। फीरोजाबाद के शीशघरो मे यह उद्योग पीढी दर पीढी चला आ रहा है। आधुनिक ढग पर बोतलें बनाने की सबसे पहली फैक्टरी सन् 1892 मे एक जर्मन विशेषज्ञ की सहायता से झेलम नदी के किनारे स्थापित हुई। दूसरी फैक्टरी एक आस्ट्रियन विशेषज्ञ की सहायता से टीटागढ मे खुली, परन्तु ये दोनो फैक्ट्रियाँ विशेषज्ञो के अभाव मे अधिक दिन न चल सकी। जापानी विशेषज्ञो की सहायता से भी

कुछ फैक्ट्रियाँ खोली गईं । उद्योग के आरम्भ होने के लिए दो बातों का अच्छा असर पड़ा—प्रथम महायुद्ध और स्वदेशी आन्दोलन । सन् 1914 में तीन फैक्ट्रियाँ थी । विकास होते-होते सन् 1918 में फैक्ट्रियों की संख्या 14 हो गई ।

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् विदेशी स्पर्धा में उद्योग को क्षति पहुची । सन् 1927 में संरक्षण के लिए प्रार्थना की गई और टैरिफ बोर्ड ने भी सिफारिश की परन्तु उद्योग का मुख्य कच्चा माल—सोडा ऐश—देश में प्राप्त न होने के कारण संरक्षण नही दिया गया ।

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने से उद्योग में एक बार फिर जान आ गई क्योंकि आयात बन्द हो गया और फौज के लिए कांच के सामान की आवश्यकता पड़ी । कई प्रकार की नई-नई वस्तुएं बनाई जाने लगी ।

मार्च, सन् 1961 में भारत में कांच की फैक्ट्रियों की संख्या 148 थी परन्तु उनमें से 51 फैक्ट्रियाँ काम नही कर रही है, शेष 97 का राज्यवार विवरण इस प्रकार है—

उत्तर प्रदेश	28	गुजरात	2	केरल	1
प० बंगाल	24	उड़ीसा	2	आन्ध्र प्रदेश	1
महाराष्ट्र	22	पंजाब	2	मध्य प्रदेश	1
मद्रास	6	दिल्ली	2	मैसूर	1
बिहार	4	राजस्थान	2	कुल	97

इन फैक्ट्रियों की वार्षिक उत्पादन क्षमता लगभग 3 8 लाख टन है । सन् 1960 में संगठित उद्योग में सब प्रकार के कांच के सामान का उत्पादन 225 हजार टन के लगभग था ।

चूड़ियों के कारखाने अधिकतर फीरोजाबाद (उ० प्र०) में हैं । कुटीर उद्योग धन्धों के रूप में ही यह काम अधिक फैला हुआ है। चूड़ियों के अतिरिक्त चिमनियाँ, गुलदस्ते, बोतलें, बिजली के बल्ब, गोला, शीशे वैज्ञानिक यन्त्र, शीटें, थर्मस फ्लास्क, अस्पताल का सामान, तश्तरियाँ और गिलास इत्यादि बनाये जाते हैं । कलकत्ता में केन्द्रीय कांच अनुसन्धानशाला भी प्रगतिशील कदम है, भट्टियों की किस्म में विकास हुआ है, बिजली का प्रयोग होने लगा है, कुशल मजदूर प्राप्य हैं और सोडा ऐश को छोड़कर कच्चा माल भी लगभग

सब यहाँ मिल जाता है, इसलिए विकास का क्षेत्र खुल गया है, परन्तु सुव्यवस्था, फिनिशिंग (Finishing) और उत्पादन की किस्म की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। उत्पादन को सुयोजित करने की आवश्यकता है। विदेशी विशेषज्ञो और सरकार की उचित सहायता की आवश्यकता है।

कांच उद्योग मे सगठित क्षेत्र में रोजगार 30 हजार व्यक्तियो से ऊपर होने का अनुमान था, जबकि 1955-56 मे 18,700 व्यक्तियो को ही रोजगार मिल रहा था।

तीसरी योजना की अवधि मे भारतवर्ष मे आप्टीकल तथा आप्थेल्मिक काँच (चश्मे इत्यादि) का निर्याण किया जाने लगेगा। इसके लिए दुर्गापुर (प० बंगाल) मे सोवियत सघ की सहायता से कारखाना खुल रहा है।

तीसरी पचवर्षीय योजना मे कांच उद्योग के विकास के लक्ष्य इस प्रकार है—

	1960-61	1965-66
उत्पादन क्षमता (हजार टन)	383	615
उत्पादन (हजार टन)	225	440

सीमेंट उद्योग

सबसे पहले सीमेंट की फैक्टरी मद्रास मे खुली जिसका कार्य सन् 1904 से आरम्भ हुआ। कार्यक्षमता के अभाव मे यह फैक्टरी पीछे वन्द हो गई। सन् 1912-13 मे तीन फैक्टरियाँ और खुली। तत्पश्चात् ही प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने से फैक्टरियो की उन्नति हुई और अन्य फैक्टरियाँ खुली और उत्पादन मे दुगुने से भी अधिक वृद्धि हुई।

सन् 1924 मे सीमेंट उद्योग को सरक्षण देने के लिए सरकार से प्रार्थना की गई परन्तु संरक्षण नही दिया गया। सन् 1927 और 1930 मे सीमेंट की बिक्री बढाने के लिए कन्करीट ऐसोशियेशन और सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी की स्थापना के द्वारा महत्वपूर्ण कदम उठाये गए। सन् 1936 मे कुछ कम्पनियो को मिलाकर एसोशिएटेड सीमेंट कम्पनी (A. C. C) की स्थापना हुई जिससे सीमेंट उद्योग की दशा काफी मजबूत हो गई।

सीमेंट उद्योग मुख्यत: बिहार, मध्य प्रदेश और मद्रास राज्यो मे केन्द्रीभूत है। कुछ फैक्टरियाँ कोयले के क्षेत्रो से दूर होने के कारण अच्छी स्थिति मे

नहीं है। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय मांग और मूल्य बढ़ने के कारण सीमेंट का उत्पादन बढ़ गया था, परन्तु युद्ध समाप्त होने के पश्चात् राजनीतिक कारणों मजदूरों की हड़तालों और कोयला तथा परिवहन के साधनों की अपर्याप्त सुविधाओं से सीमेंट का उत्पादन गिर गया।

सीमेंट का उत्पादन इस प्रकार था—

वर्ष	1948	1951	1956	1961
उत्पादन	15 78	32 42	50·88	82 31

1963 में सीमेंट का उत्पादन लगभग 04 लाख मैट्रिक टन था।

सीमेंट की नई फैक्टरियों में उत्तर प्रदेश सरकार की चुर्क (जिला मिर्जापुर) में स्थापित सीमेंट फैक्टरी जिसने सन् 1954 में उत्पादन प्रारम्भ किया और ए० सी० सी० (A C. C.) की सिन्दरी की फैक्टरी जिसने सन् 1955 में उत्पादन प्रारम्भ किया, विशेष उल्लेखनीय हैं।

मार्च, 1957 में 28 सीमेंट फैक्टरियाँ थी जिनमें एक उत्तर प्रदेश सरकार की और एक मैसूर सरकार की थी। शेष में से सात बिहार में, चार महाराष्ट्र-गुजरात में, तीन मद्रास में; मैसूर, आन्ध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश और पंजाब में दो-दो तथा उड़ीसा और केरल में एक-एक थी। सन् 1957 में इन 28 फैक्टरियों की उत्पादन-शक्ति 61 लाख मैट्रिक टन वार्षिक और उत्पादन 50 8 लाख मैट्रिक टन था। सन् 1959 में फैक्टरियों की संख्या 32 थी। सन् 1960-61 में फैक्टरियों की संख्या 41 थी। 1960-61 में सीमेंट का उत्पादन 86 4 लाख मैट्रिक टन था।

तीसरी योजना के लक्ष्य—सन् 1965-66 में सीमेंट उत्पादन की क्षमता का लक्ष्य 154·5 लाख मैट्रिक टन और उत्पादन लक्ष्य 134 लाख मैट्रिक टन निर्धारित किया गया है।

अन्य उद्योग

स्वाधीनता के उपरान्त और विशेषकर योजनाओं के अन्तर्गत भारत में अनेक अन्य उद्योगों का विकास किया गया है, जैसे, इन्जीनियरिंग उद्योग, रेलवे इन्जिन तथा सवारी डिब्बे, वायुयान, रासायनिक पदार्थ तथा औषधियाँ

उर्वरक (Fertilisers), अल्युमिनियम, मोटर गाड़ियाँ, पेण्ट तथा वार्निश, जहाज निर्माण (Ship building) इत्यादि ।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का उल्लेख अगले अध्याय मे किया गया है ।

संक्षेप

कृषि और उद्योग दोनों का विकास एक दूसरे की उन्नति के लिए परमावश्यक है ।

भारत के बड़े-बड़े संगठित चार प्रमुख उद्योग सूती वस्त्र, चीनी, जूट तथा लोहा इस्पात उद्योग हैं । स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत में आश्चर्यजनक उन्नति हुई है । औद्योगिक प्रगति की मुख्य उल्लेखनीय बात यह है कि देश मे आधारभूत उद्योगों की स्थापना और प्रगति हुई है तथा देश के प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग तथा सतुलित विकास की दिशा में ध्यान दिया गया है ।

प्रश्न

1. भारतवर्ष के निम्नलिखित उद्योगों मे से किसी एक की वर्तमान दशा और समस्याओं का विश्लेषण कीजिए—

   (अ) सूती वस्त्र उद्योग,

   (आ) लोहा और इस्पात उद्योग ।

2. भारतवर्ष के निम्नलिखित उद्योगों मे से किसी एक की वर्तमान दशा और समस्याओं का वर्णन कीजिए—

   (अ) जूट उद्योग,

   (आ) चीनी उद्योग ।

3. भारत मे सीमेंट और कांच उद्योगों मे से किसी एक का वर्णन कीजिए ।

4. भारत मे लोहा इस्पात के बड़े-बड़े कारखाने कहाँ-कहाँ स्थित है ? वहाँ उनके लिए क्या सुविधाएँ प्राप्त है ?

अध्याय 15

उद्योगों का स्थानीयकरण तथा राजकीय क्षेत्र के उद्योग

(Localisation of Industries and Industries in Public Sector)

उद्योगो के स्थानीयकरण का अर्थ किन्ही उद्योगो की इस प्रवृत्ति से है कि वे देश के विभिन्न भागो मे स्थापित हो जाते है। जब किसी वस्तु का उत्पादन किसी स्थान विशेष मे करना सुविधाजनक होता है और वहाँ उसका उत्पादन करने वालो की सख्या बढती चली जाती है तो उस वस्तु का उद्योग उस स्थान मे स्थानीयकरण हुआ माना जाता है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष मे जूट उद्योग कलकत्ते के आस-पास ही स्थापित है और सूती वस्त्र उद्योग बम्बई और अहमदाबाद के आस-पास हैं। इसी प्रकार कांच (चूडियाँ) उद्योग का स्थानीयकरण फीरोजाबाद मे, ताले के उद्योग का स्थानीकरण अलीगढ मे देखा जाता है।

स्थानीयकरण के कारण

स्थानीयकरण के कई कारण हैं जिनमे से मुख्य प्राकृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक इत्यादि हैं।

प्राकृतिक कारण—प्राकृतिक कारणो मे मुख्य ये हैं —

(1) **कच्चे माल की समीपता**—जलवायु या भूमि की विशेषताओ के कारण विभिन्न उद्योगो का कच्चा माल किन्ही विभिन्न क्षेत्रो मे उगाया जाता है। परिणामत: तत्सम्बन्धित उद्योग वहाँ विकास पाने लगते हैं। उदाहरण के लिए जूट उद्योग जूट-उत्पादन क्षेत्र के समीप ही बगाल मे विकसित हुआ है, चीनी उद्योग उत्तर प्रदेश और बिहार के गन्ना उत्पादन क्षेत्रो मे स्थापित हो गया है, और इसी प्रकार सूती वस्त्र उद्योग मुख्यत. महाराष्ट्र और गुजरात मे।

(2) **ईंधन और शक्ति की सुलभता**—कच्चे माल के उत्पादन क्षेत्र की समीपता के साथ ही ईंधन और शक्ति की सुलभता का भी स्थानीयकरण की दिशा मे महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है, विशेषत: ऐसे उद्योगो पर जिनमे ईंधन

य। शक्ति भारी पदार्थ होता है—जैसे लोहा और इस्पात उद्योग पर ईंधन और शक्ति की सुलभता का प्रभाव अत्यधिक होता है। छोटा नागपुर और विहार में लोहा-इस्पात उद्योग का विकास इसी कारण हुआ है कि वहाँ समीप ही लोहा और कोयले की खानें पाई जाती हैं। यह भी देखने मे आता है कि पहले जब जल-शक्ति का उपयोग अधिक था उद्योगो का विकास नदियों के किनारे अधिक हुआ परन्तु आजकल जल-विद्युत-गृहो के समीप उद्योगो का विकास शीघ्र होने लगता है।

(3) **जलवायु और प्राकृतिक दशाएँ**—जलवायु और प्राकृतिक दशाओं का प्रभाव कच्चा माल उत्पादन करने वाले क्षेत्रो के वितरण पर तो पड़ता ही है परन्तु साथ ही उद्योगो के विकास पर प्रत्यक्ष रूप मे भी पडता है। उदाहरणार्थ सूती वस्त्र उद्योग के लिए नम जलवायु की आवश्यकता होती है। शुष्क जलवायु मे तागा लम्बा, पतला और मजबूत नहीं बन सकता। अधिक ठण्डी और गरम जलवायु उद्योगो के विकास में स्वभावत: वाधक हो जाती है। भारतवर्ष मे गर्मियो के दिन श्रमिको की कार्य-क्षमता पर बुरा प्रभाव डालते हैं। प्राकृतिक दशाओ का बन्दरगाहो नगरों और नदियो इत्यादि पर प्रभाव पड़ने के कारण उद्योगों के स्थानीयकरण पर भी प्रभाव पड़ता है। जल की समीपता का प्रभाव तो प्रत्यक्ष रूप में भी देखा जा सकता है। उद्योगो मे माल धोने और साफ करने के लिए जल की समीपता आवश्यक होती है। उदाहरणार्थ, जूट उद्योग हुगली नदी के किनारे, टाटा लोहा और इस्पात उद्योग स्वर्णरेखा नदी के किनारे स्थापित किए गये हैं।

आर्थिक कारण—प्राकृतिक कारणो के अतिरिक्त आर्थिक कारणो का प्रभाव स्थानीयकरण पर किसी प्रकार कम नही कहा जा सकता।

(4) **विक्रय-क्षेत्र की समीपता**—यद्यपि विक्रय-क्षेत्रो (बन्दरगाह इत्यादि) के विकास पर प्राकृतिक कारणों का भी प्रभाव पड़ता है तथापि नगरों और कस्बो के समीप उद्योगों का स्थानीयकरण देखने मे आता है, रेलवे जकशनो अथवा परिवहन के अन्य केन्द्रो पर किसी उद्योग के कारखाने बढ़ते चले जाते हैं।

(5) **परिवहन के सस्ते और सुगम साधन**—परिवहन के साधनों के द्वारा विक्रय-क्षेत्र समीप आ जाते हैं। कच्चा माल लाने के लिए और बनाया हुआ माल वितरण करने के लिए परिवहन के साधन परम आवश्यक हैं। परिवहन के साधन सस्ते होने चाहिए क्योंकि परिवहन मे होने वाले व्यय का वस्तु की

लागत पर प्रभाव पड़ता है, साथ ही वे शीघ्रगामी भी होने चाहिए ताकि वस्तु की माँग के अनुसार पूर्ति शीघ्र की जा सके। आजकल बाजार भाव थोड़ी-थोड़ी देर मे बदल जाते हैं अतएव अधिक जोखिम से बचने के लिए यह आवश्यक है कि परिवहन के साधन शीघ्रगामी हो।

(6) **कुशल श्रमिक**—सस्ते मजदूरो के मिलने से भी उद्योगो का विकास शीघ्र हो जाता है। सामाजिक अथवा अन्य कारणो से किसी विशेष क्षेत्र मे सस्ते मजदूर पाये जा सकते हैं। स्वभावत ऐसे उद्योग जिनमे वे श्रमिक काम कर सके वहाँ स्थापित हो जाते हैं। श्रमिको की कुशलता का महत्व अधिक है क्योंकि कुशल मजदूरो को अधिक मजदूरी देने पर भी यह सम्भव है कि माल कम लागत पर तैयार किया जा सके। फीरोजाबाद मे काँच की चूड़ियो का उद्योग इसका उपयुक्त उदाहरण है।

(7) **बैंकिंग और बीमा की सुविधाएँ तथा पूँजी की उपलब्धि** भी स्थानीयकारण मे सहायक होती हैं।

(8) **उद्योगो के विकास का दूसरे उद्योगो पर** कभी-कभी यह प्रभाव देखने मे आता है कि एक प्रकार के उद्योगो से जो गौण पदार्थ अथवा व्यर्थ माल मिलते हैं उनसे उसी स्थान पर अन्य उद्योग और कुछ सहायक उद्योग स्थापित हो जाते हैं—जैसे लोहा इस्पात के उद्योग से मिलने वाले लोहे के टुकडो मे ट्रक व्यवसाय; चमडा उद्योग से मिलने वाले बालो से ब्रुश उद्योग, तेल निकालने के उद्योग से मिलने वाले तेलो से वनस्पति घी और साबुन उद्योग; इत्यादि।

राजनीतिक कारण—राजनीतिक कारणो का भी स्थानीयकरण पर प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, मुसलमान शासको और हिन्दू राजाओं ने कई स्थानो पर विभिन्न उद्योग स्थापित किये थे। राजनीतिक कारणो से उद्योगो के स्थानीयकरण मे कई बातों का प्रभाव पड सकता है, जैसे, शासक या राजा उन वस्तुओ को अधिक पसन्द करते हो और पुरस्कार इत्यादि देते हों अथवा राज्य के द्वारा उन स्थानो में उस उद्योग की वस्तुओ का प्रयोग आवश्यक कर दिया जाय अथवा उद्योगो के विकास मे सुविधाएँ (शक्ति, ईंधन, भूमि इत्यादि) देकर और स्पर्धा पर रोक लगाकर किन्ही उद्योगो को प्रोत्साहित किया जाय।

अन्य कारण—इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारणों का भी प्रभाव पड़ता है। उद्योगों के स्थानीयकरण का यह भी कारण हो सकता है कि उस स्थान पर पहले खुलने वाले कारखानों ने ख्याति पाई हो और उस ख्याति से अन्य कारखाने भी खुलने लगें। यद्यपि यह सत्य है कि कारखानों की संख्या बढ़ने से कुछ अन्य सुविधायें, जैसे, कुशल श्रमिकों का मिलना, गौण पदार्थों का उपयोग, परिवहन व्यय में मितव्ययता इत्यादि, स्वतः प्राप्त होती हैं तथापि उनके स्थापित होने का मूल कारण ख्याति से लाभ उठाना अथवा प्रारम्भिक वेग (Momentum of the early start)[1] ही होता है। आगरा में चमड़ा उद्योग, अलीगढ़ में ताला उद्योग, जबलपुर में बीड़ी उद्योग बहुत कुछ इसी प्रकार स्थापित हुए हैं।

लाभ

स्थानीयकरण से निम्नलिखित मुख्य लाभ हैं :—

(1) उस स्थान पर उद्योग का बना हुआ माल ख्याति प्राप्त कर लेने के कारण अच्छे मूल्य पर बिक जाता है।

(2) सहायक उद्योग-धन्धों का विकास होने लगता है।

(3) श्रमिकों में बिना विशेष शिक्षा के ही परम्परा के द्वारा कुशलता मिलने लगती है और इस प्रकार उस स्थान में कुशल श्रमिक सुगमतापूर्वक मिलते रहते हैं।

(4) बाह्य मितव्ययता मिलने के कारण वस्तु की लागत कम हो जाती है और इससे उद्योगों के साथ ही उपभोक्ता को भी लाभ होता है।

(5) स्थानीयकरण से कभी-कभी मशीनों के आविष्कार को भी प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि प्रतिस्पर्धा के कारण प्रत्येक उद्योगपति यह प्रयत्न करता है कि उसके यहाँ कम से कम लागत हो।

(6) स्थानीयकरण के कारण बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का विकास होता है और समाज में बचत के लिए प्रोत्साहन मिलता है।

---

1 जिस प्रकार किसी पहिए अथवा साइकिल को एक बार चला देने से प्राप्त शक्ति से पहिया या साइकिल अपने आप भी चालू रहते हैं, उसी प्रकार यह नियम उद्योगों के स्थानीयकरण पर भी लागू होता है।

हानियाँ

उपरोक्त लाभो के साथ साथ स्थानीयकरण के निम्नलिखित दोष है :—

(1) स्थानीयकरण हो जाने से देश के कुछ भाग दूसरे भागो के आश्रित हो जाते हैं और युद्ध अथवा किसी अन्य आपत्ति के समय आश्रित क्षेत्रो को बहुत हानि होती है।

(2) किसी कारणवश यदि उद्योग का पतन होने लगे तो मजदूरो मे बेरोजगारी फैल जाती है और सहायक उद्योग-धन्धो पर भी बुरा असर पड़ता है।

(3) स्थानीयकरण का कभी-कभी उस स्थान के अन्य उद्योग-धन्धो पर बुरा प्रभाव पडता है।

(4) कुछ उद्योगो के स्थानीयकरण मे परिवार के कुछ सदस्यो को ही रोजगार मिलता है—जैसे लोहा और इस्पात उद्योग मे प्राय. प्रौढ पुरुषो को ही रोजगार मिलता है—परिवार के अन्य सदस्य बेकार रहते है।

(5) जनसख्या के वितरण पर बुरा प्रभाव पडता है। कुछ स्थानो मे अत्यधिक जनसख्या हो जाने से बीमारियाँ फैलती हैं।

गाधी जी के अनुसार स्थानीयकरण की हानियो से बचने का उपाय उद्योगो का विकेन्द्रीकरण है।

विकेन्द्रीकरण

विकेन्द्रीकरण का उद्योगो को कुछ स्थानो अथवा प्रदेशो मे केन्द्रित न होने देना है, अर्थात् उद्योगो को सभी क्षेत्रो अथवा प्रदेशो मे स्थापित और विकसित किया जाय।

विकेन्द्रीकरण के मुख्य लाभ ये हैं—

(1) आवश्यकताओ के लिए दूरवर्ती क्षेत्रो पर निर्भर नही होना पडता। इसका महत्व इस दृष्टि मे है कि कुछ प्रदेशो के सकट-ग्रस्त होने पर सभी प्रदेशो को अधिक आपदा मे नही पडना पडता। प्राचीन काल मे जब प्रत्येक ग्राम स्वावलम्बी था, विदेशी आक्रमणो का भारत पर कोई बहुत गम्भीर प्रभाव नही पडा।

(2) सभी प्रदेशो मे औद्योगिक विकास होने पर जनसख्या का प्रादेशिक

वितरण समान रहता है। कुछ प्रदेशो मे जनसख्या की सघनता अधिक और कुछ मे बहुत कम नही होती।

(3) पिछडे राज्यो के आर्थिक विकास और उनमे रोजगार के विकास की दृष्टि से उद्योगो का विकेन्द्रीकरण वाछनीय है।

(4) उपभोग के क्षेत्रो मे उद्योगों का विकास होने से माँग की दशाओं के अनुकूल पूर्ति की दशाओं मे परिवर्तन करना सरल होता है और परिवहन तथा विपणन सम्बन्धी व्यय अपेक्षाकृत कम होने की सम्भावना रहती है।

(5) यह समझा जाने लगा है कि राष्ट्रीय एकता के लिए देश के राज्यों के आर्थिक स्तरो मे तथा सामाजिक जीवन स्तरो मे यथासंभव समानता हो। इसके लिए सभी राज्यो मे औद्योगिक विकास होना आवश्यक है।

(6) देश के पूर्ण आर्थिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि सभी प्रदेशो मे प्राकृतिक एव आर्थिक साधनों का पूर्ण उपयोग हो। यह तभी सम्भव है जब प्रदेशो से उद्योगो का विकास किया जाए। यह सत्य है, सभी राज्यो या प्रदेशो मे हरेक प्रकार के उद्योग के विकास के लिए सम्यक् सुविधाएँ प्राय: नही होती, परन्तु वैज्ञानिक अनुसंधानो और तकनीकी विकास के कारण बहुधा यह सम्भव हो गया है कि हरेक क्षेत्र मे कुछ उद्योग-धन्धो का विकास किया जा सके।

सुविधाएं— विकेन्द्रीकरण के मार्ग मे दो सुविधाएँ सहायक सिद्ध हुई हैं। (क) परिवहन के साधनो का विकास, (ख) शक्ति के साधनो मे विकास। सक्षेप मे कहा जाए तो विज्ञान की प्रगति के कारण प्रादेशिक विकास सम्भव हुआ है।

परिवहन के साधनो के विकास के कारण कच्चे माल के अभाव की दशा मे दूरवर्ती देशों से भी कच्चा माल लाया जा सकता है, मशीनें लाई जा सकती हैं, और कुशल कारीगर भी आ सकते हैं। कोयला ढोना भी सरल हो गया है परन्तु जल विद्युत के विकास के कारण शक्ति की सुलभता अब सरल हो गई है, अणु शक्ति के विकास से सम्भव है कि औद्योगिक विकास और भी अधिक द्रुत-गति से हो।

पूँजी बाजार के विकास और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के कारण किसी भी प्रदेश मे औद्योगिक विकास करना अपेक्षाकृत सरल हो गया है।

कठिनाई—विकेन्द्रीकरण की मुख्य कठिनाई यह है कि प्राकृतिक सुविधाओ के अभाव मे किसी प्रदेश मे औद्योगिक विकास करने के लिए उत्पादन की लागत अधिक होगी और स्थानीयकरण के मुख्य लाभ वाह्य मितव्ययता से वंचित होना पड़ेगा। परन्तु किसी निश्चित प्रदेश या क्षेत्र मे किसी विशेष उद्योग के विकास के लिए अनुकूल दशाओ का ध्यान रख लेने पर कठिनाई बहुत कुछ कम हो सकती है।

राजकीय क्षेत्र मे उद्योग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत के औद्योगिक नीति मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। कुछ उद्योगो को सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया है और कई नये उद्योगो की स्थापना हुई है।

वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय के अन्तर्गत : हिन्दुस्तान इन्सैक्टीसाइड्स, भारत इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि०, नाहन फाउन्ड्री लि०, नेशनल इन्स्ट्रुमेण्ट्स फैक्टरी, हिन्दुस्तान एण्टीबायटिक्स, सिन्द्री फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमीकल्स लि०, हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड।

रक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत : हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड।

संचार मन्त्रालय के अन्तर्गत : इण्डियन टेलीफून इन्डस्ट्रीज।

अणुशक्ति मन्त्रालय के अन्तर्गत : इण्डियन रेअर अर्थ्स लि०, थोरियम प्लान्ट।

रेलवे मन्त्रालय के अन्तर्गत : चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, इन्टीग्रल कोच फैक्टरी।

इस्पात, खान और ईंधन मन्त्रालय के अन्तर्गत : हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड।

अर्थ मन्त्रालय के अन्तर्गत : इण्डियन गवर्नमेंट सिलवर रिफायनरी प्रोजेक्ट।

राजकीय क्षेत्र मे स्थापित उद्योगो के कुछ प्रमुख केन्द्र निम्नलिखित है—

फैक्टरी उद्योग	स्थान	स्थापना का वर्ष
1. भारत इलैक्ट्रोनिक्स (प्राइवेट) लिमिटेड	जलहाल्ली, बंगलौर	1954

2. चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स	चित्तरंजन, जिला वर्दवान, प० बगाल	1948
3. हैवी इलेक्ट्रीकल्स (प्रा० लि०)	भोपाल, मध्यप्रदेश	1956
4. हिन्दुस्तान एअरक्राफ्ट लिमिटेड	पो० हिन्दुस्तान एअरक्राफ्ट जिला बंगलौर	1940
5. हिन्दुस्तान एण्टी बायटिक्स लि०	पिम्परी, जिला पूना	1952
6 हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड	रूपनरायनपुर, जिला वदमान, पश्चिमी बगाल	1954
7. हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्टरी लि०	जंगपुरा, नई दिल्ली	पूर्णतः नियन्त्रण में सरकार के 1955 में
8. हिन्दुस्तान इन्सेक्टीसाइड्स लि०	नई दिल्ली—15 तथा अलवेय (केरल)	1955
9. हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि०	जलहाल्ली, बगलौर	1953
10. हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि०	विशाखापट्टनम, आन्ध्र प्रदेश.	1952
11. हिन्दुस्तान स्टील (प्रा० लि०)	राउरकेला, उड़ीसा	1954
12. हिन्दुस्तान स्टील (प्रा० लि०)	भिलाई, मध्य प्रदेश	
13. हिन्दुस्तान स्टील (प्रा० लि०)	दुर्गापुर, प० बंगाल	
14 इण्डियन गवर्नमेंट सिल्वर रिफाइनरी	स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता—7	1957
15 एटमिक रिएक्टर (अप्सरा)	ट्राम्बे बम्बई—38	1956
16 इण्डियन रेअर अर्थ्स लि०	अलवेय, केरल	1952
17 इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज लि०	दूरवाणी नगर, बंगलौर	1948
18 इण्टीग्रल कोच फैक्टरी	पेराम्बुर, मद्रास	1952
19 नाहन फाउण्ड्री लिमिटेड	नाहन, जिला सिरमूर, हिमाचल प्रदेश	1875
20. नेशनल इन्स्ट्रूमेण्ट्स फैक्टरी	वुड स्ट्रीट कलकत्ता—16	

21	सिन्दरी फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमीकल्स लि०[1]	सिन्दरी, बिहारी	1951
22	थोरियम प्लान्ट	ट्रॉम्बे, बम्बई—38	1955
23.	हैवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन लि०	राँची के निकट हतिया (बिहार)	1958
24	इण्डियन रिफाइनरीज लिमिटेड (रिफाइनरीज के प्रबन्ध के लिए)	नई दिल्ली	1958
25.	नेवेली लिगनाइट कारपोरेशन (प्राइवेट) लिमिटेड	मद्रास	1956
26.	मशीन-टूल प्रोटोटाइप फैक्टरी	बम्बई के निकट अम्बरनाथ	1953
27.	नगल फर्टीलाइजर-हैवीवाटर प्रोजेक्ट[1]	नागल (पंजाब)	1956
28.	आप्टीकल एण्ड आप्थलिमक ग्लास फैक्टरी	दुर्गापुर (बंगाल)	1960

इनके अतिरिक्त राज्य सरकारों के नियन्त्रण में भी कुछ फैक्टरियाँ और उद्योग प्रारम्भ किये गये हैं।

उत्तर प्रदेश मे मिर्जापुर जिले में चुर्क में गवर्नमेंट सीमेंट फैक्टरी स्थापित हुई जिसने सन् 1954 मे उत्पादन प्रारम्भ किया जिसका उत्पादन 700 टन प्रतिदिन है और रोजगार 2 हजार से ऊपर। इस फैक्टरी मे विकास किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश मे गवर्नमेंट प्रेसीजन इन्स्ट्रूमेण्ट्स फैक्टरी की स्थापना 1950 मे हुई थी।

मैसूर में स्वर्ण खानो का काम (कोलार) और मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स (भद्रावती, जि० शिमोगा) मुख्य हैं।

---

[1] उर्वरक उत्पादन के सिन्दरी तथा नागल दोनो कारखाने तथा उर्वरक उत्पादन की चार अन्य प्रायोजनाएं (ट्रॉम्बे, नहारकटिया, गोरखपुर और राउरकेला) जनवरी, 1961 मे स्थापित फर्टीलाइजर कारपोरेशन ऑव इण्डिया लिमिटेड द्वारा प्रशासित होने लगे हैं।

मध्य प्रदेश मे नेपानगर मे (जिला निमार) नेशनल न्यूजप्रिन्ट एन्ड पेपर मिल्स लिमिटेड की स्थापना सन् 1948 में हुई थी। असम, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, केरल और कश्मीर मे कई सरकारी कारखाने खोले गये हैं।

संक्षेप

उद्योगों के स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के कई कारण हैं। प्राकृतिक कारणों में कच्चे माल की समीपता, शक्ति की सुलभता, जल की समीपता और जलवायु मुख्य हैं, आर्थिक और राजनीतिक कारणों का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

स्थानीयकरण से कुछ हानियाँ भी है परन्तु उसके लाभ भी कम नही हैं। यह एक स्वाभाविक सी प्रवृत्ति है जो मनुष्य ने लाभों के कारण अपनाई परन्तु परिवहन के साधनों और जल-विद्युत के विकास के साथ-साथ विकेन्द्रीकरण होने लगा है।

संतुलित प्रादेशिक विकास की दृष्टि से तथा अन्य कुछ लाभों के कारण सरकारी तौर पर सभी प्रदेशों में उद्योगों के विकास की ओर ध्यान दिया गया है।

प्रश्न

1. उद्योगो के स्थानीयकरण का क्या अर्थ है? इसके मुख्य कारणो पर प्रकाश डालिए। उदाहरण भी दीजिये।
2. बंगाल मे जूट उद्योग और बम्बई में सूती वस्त्र तथा उत्तर प्रदेश और बिहार मे चीनी उद्योग के केन्द्रीयकरण के कारणो पर प्रकाश डालिए।
3. स्थानीयकरण के मुख्य लाभ क्या हैं? क्या इससे कुछ हानियाँ है?

अध्याय 16

परिवहन तथा संचार-साधन

(Means of Transport and Communication)

परिवहन के द्वारा माल और वस्तुओं को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जाता है। आवागमन के द्वारा भीतर-बाहर जनसंख्या का एक जगह से दूसरी जगह जाना सम्भव हो जाता है। परिवहन वाणिज्य का अविभाज्य अंग है। यह भी कहा जा सकता है कि परिवहन के अभाव में वाणिज्य का विकास असम्भव होता है क्योंकि उत्पादन और वितरण के लिए परिवहन के साधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। व्यापार, देशी हो या विदेशी, परिवहन के साधनों के अभाव में सम्भव ही नहीं हो सकता। आज कोई भी देश अपनी समस्त आवश्यकताओं को स्वयं पूरा नहीं कर पाता। सम्पूर्ण जगत व्यापार क्षेत्र बन गया है और इसमें परिवहन का महत्वपूर्ण हाथ है।

परिवहन पर प्रभाव डालने वाले अङ्ग

मनुष्य ने बाधाओं पर विजय पाने का प्रयत्न किया और पहाड़ों को काटकर, सुरंगें बनाकर, नदियों पर पुल बनाकर और अनेक नये-नये प्रयोग करके परिवहन के साधनों में महान् क्रान्ति ला दी है तथापि यह मानना पड़ेगा कि प्राकृतिक बाधाएँ और आर्थिक कठिनाइयाँ आने पर परिवहन का विकास असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है।

परिवहन के ऊपर प्रभाव डालने वाली मुख्य बातें अधोलिखित हैं—

(1) जलवायु—अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में नदियों में प्रायः बाढ़ आ जाया करती है। कई नदियों की बहुत-सी धाराएँ हो जाती हैं, जैसे ब्रह्मपुत्र नदी। उत्तर प्रदेश में भी नदियाँ कई बार अपना बहाव बदल देती है। इससे रेलों और सड़कों को बड़ी क्षति पहुँचती है। नदियों को पार करने के लिए उनके ऊपर पुल बनवाने पड़ते हैं जिनमें काफी व्यय होता है। कई स्थानों पर पुल बनवाने के व्यय से बचने के लिए रेलवे लाइनें इस प्रकार निकाली गई हैं कि बीच में नदियाँ या उनकी शाखाएँ कम से कम आवें। इस प्रकार टेढ़ी-मेढ़ी

रेलवे लाइनें अथवा सड़कें बनवाने मे अधिक व्यय होता है। अधिक वर्षा हो जाने पर बाढ़ आ जाने से प्रत्येक बार रेलवे लाइनें, पुल और सड़कें टूटने के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं।

(2) धरातलीय बनावट—भूमि की बनावट का भारतवर्ष के परिवहन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। पहाड़ों और पठारो की अपेक्षा मैदानो मे परिवहन का अधिक विकास हुआ है। यद्यपि इसके अन्य कारण भी हैं, परन्तु जमीन की बनावट का प्रभाव मुख्य रूप से पड़ा है। देश की रेलवे लाइनो का अधिकतर भाग मैदानी प्रदेश मे फैला हुआ है।

(3) उत्पादन—कृषि, उद्योग, वनो और खानो के उत्पादन का भी परिवहन पर प्रभाव पड़ता है। परिवहन का मुख्य उद्देश्य उत्पादन को एक स्थान से दूसरे स्थानो को ले जाना है। इसलिए अधिक उत्पादन के क्षेत्रो मे परिवहन का अधिक विकास हुआ है। उत्पादन के आधार पर ही व्यापार किया जाता है और व्यापार के लिए परिवहन एक आवश्यक अग है कई ऐसे अनुपजाऊ स्थानो से भी रेल-मार्ग और सड़के निकाली गई हैं जहाँ रेल-मार्ग और सड़कें बनाने के लिए पत्थर, ककड़, लकड़ी इत्यादि सस्ती प्राप्त हो सकती हैं। उद्योगो के विकास के लिए कई राज्यो मे परिवहन का विकास किया गया है।

(4) मण्डियाँ- भारतवर्ष के परिवहन का अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि अधिकतर रेल-मार्ग और सड़के बन्दरगाहो को देश के भीतरी भागो मे मिलाती है। इसी प्रकार अन्य व्यापारिक केन्द्र भी प्राय. रेलवे जकशन हैं अथवा देश की प्रमुख सड़को पर स्थित हैं क्योंकि इन स्थानो पर माल बिकने के लिए आया करता है और यही से आया हुआ माल अन्य भीतरी क्षेत्रो को भेजा जाता है।

(5) जनसख्या के वितरण का भी परिवहन पर प्रभाव पड़ा है। देश के घने बसे हुए क्षेत्रों मे परिवहन का विकास हुआ है। परन्तु जिन क्षेत्रो मे जनसंख्या कम है वहाँ अपेक्षाकृत बहुत कम विकास हुआ है। दिल्ली, पश्चिमी बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश देश के घने बसे हुए राज्य है, जहाँ परिवहन का सबसे अधिक विकास हुआ है। इसके विपरीत मध्यप्रदेश, असम, राजस्थान, इत्यादि कम बसे हुए है जहाँ परिवहन का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है।

इसके अतिरिक्त राजनीतिक कारणो का भी परिवहन पर प्रभाव पडता है। अन्य कारणो से भी जो स्थान महत्वपूर्ण हो गये है वे भी परिवहन के मुख्य केन्द्र बन गये हैं; परन्तु महत्वपूर्ण प्रभाव देश के आर्थिक विकास और वाणिज्य तथा व्यापार मे होने वाली प्रगति का पड़ा है और इसलिए देश मे आर्थिक और वाणिज्य के विकास के साथ-साथ परिवहन का भी विकास हो रहा है। परिवहन के विकास मे उद्योग और वाणिज्य मे विकास होना है और उनमे विकास होने पर परिवहन में विकास होता है।

भारत मे परिवहन का विकास

हम परिवहन के साधनो को तीन मुख्य भागो मे बांट सकते हैं—

1. स्थल-परिवहन (Land Transport)
2. जल-परिवहन (Water Transport)
3. वायु-परिवहन (Air Transport)

स्थल परिवहन के साधनो में मनुष्य और जानवरो का प्रयोग भी किया जाता था, जानवरों का प्रयोग तो अब तक होता है। परन्तु स्थलीय परिवहन के उन्नत साधन मोटर और रेल हैं।

जल-मार्गों को हम चार भागो मे बांट सकते है—(1) नदियां, (2) नहरें, (3) झीलें, और (4) समुद्र। हाल ही में वायु परिवहन का भी विकास हुआ है।

भारतवर्ष मे परिवहन के साधनो का संक्षिप्त वर्णन यहां आगे दिया गया है।

स्थल परिवहन

यद्यपि प्राचीन काल मे भारत मे कुछ भागो में बहुत अच्छी सड़कें थी जैसा कि मोहनजोदड़ो इत्यादि की खुदाई से प्रमाणित होता है परन्तु 18 वीं शताब्दी में अधिकतर कच्ची सड़कें पाई जाती थी उनकी दशा भी दयनीय थी। वर्षा मे अथवा अन्य किसी कारण से उन पर चलना सहज ही बन्द हो जाता था। उन पर बैलगाड़ियां और इसी प्रकार के पिछड़े हुए साधनो का प्रयोग ही अधिकतर सम्भव था। यद्यपि भारतवर्ष मे सड़को को आधुनिक ढंग पर बनवाने का प्रयत्न लार्ड बैंटिक ने उत्तरी भारत मे आरम्भ किया, परन्तु विशेष सफलता न मिली। लार्ड डलहौजी के समय मे सड़कों और रेलो का अच्छा कार्य हो

सका। पी० डब्ल्यू० डी० (Public Works Department) की स्थापना उसी समय हुई थी। सन् 1869 में स्वेज नहर के खुलने तक काफी विकास हो चुका था। देश के भीतरी व्यापार और जनसंख्या के लिए स्थलीय मार्गों का महत्व भी अधिक था।

सड़क परिवहन[1]

प्रबन्ध की दृष्टि से सड़को को तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—(1) पी० डब्ल्यू० डी० की सड़कें, जो प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनो प्रकार की आय से चलती हैं; (2) नगरपालिकाओ की सड़कें, और (3) जिला बोर्डों की सडकें, जिनमे कच्ची सडकें भी सम्मिलित हैं। स्थानीय सडकों का प्रबन्ध स्थानीय कोष से ही होता है।

सन् 1947 मे केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय महत्त्व की सड़को के निर्माण और मरम्मत का उत्तरदायित्व ग्रहण किया (राष्ट्रीय महत्त्व की सड़को को नेशनल हाईवेज (National highways) कहा गया है) राज्यो, जिला और ग्राम्य सडको का उत्तरदायित्व राज्य सरकारो पर है।

सड़को का विकास

सन् 1943 की नागपुर योजना मे सशोधन करके जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे उनकी तुलना मे आधुनिक काल मे हुई प्रगति इस प्रकार है।

(लम्बाई हजार किलोमीटरो मे)

	पक्की सड़के	कच्ची सडकें	कुल सडकें
नागपुर योजना (943) के लक्ष्य	196	335	531
1 अप्रैल, 1951	158	243	401
31 मार्च, 1956	196	319	515
31 मार्च, 1961	232	402	634

1 India 1962, p. 353

राष्ट्रीय महत्त्व की सडके (National Highways)

राष्ट्रीय मार्गों मे निम्नलिखित मुख्य सडके तथा अन्य सडके सम्मिलित हैं—

1. ग्रान्ड ट्रंक रोड जो कलकत्ता से वाराणसी, कानपुर, आगरा और दिल्ली होती हुई अमृतसर तक जाती है।
2. आगरा से बम्बई तक।
3. बम्बई से बंगलौर होती हुई मद्रास तक।
4. मद्रास से कलकत्ता तक।
5. कलकत्ता से नागपुर होती हुई बम्बई तक।
6. वाराणसी से नागपुर, हैदराबाद, कुर्नूल, बगलौर होती हुई कन्याकुमारी अन्तरीप तक।
7. दिल्ली से अहमदाबाद होकर बम्बई तक।
8. अहमदाबाद से कान्दला बन्दरगाह तक, जिसकी एक शाखा पोरबन्दर जाती है।
9. हिन्दुस्तान-तिब्बत सडक जो अम्बाला से शिमला होकर तिब्बत की सीमा तक जाती है।
10. दिल्ली से लखनऊ, गोरखपुर होकर मुजफ्फरपुर तक जिसकी एक शाखा नेपाल की सीमा तक जाती है। यह सडक बरौनी को भी जोड़ती है।
11. असम तक सडक।
12. असम ट्रंक रोड जो ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिण तट पर है।
13. असम ट्रंक रोड की एक शाखा मणिपुर होकर बर्मा की सीमा तक जाती है।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार राज्यो की कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण सडको के विकास का व्यय भी उठा रही है। ऐसी सडको में असम की पासी-बदरपुर सडक और केरल, महाराष्ट्र तथा मैसूर की पश्चिमी तट वाली सडक उल्लेखनीय है।

मोटरगाडियाँ

31 मार्च, 1947 को भारत में 212 हजार के लगभग मोटरगाडियाँ थी। 31 मार्च, 1962 को यह संख्या 710 हजार से भी अधिक हो गई थी।

तीसरी योजना के लक्ष्य

सन् 1965 66 तक पक्की सडको की लम्बाई 272 हजार किलोमीटर हो जायगी जबकि 1960-61 मे लगभग 232 हजार किलोमीटर थी।

सडकों का महत्त्व

सड़को से वे सब लाभ तो हुए ही हैं जो कि परिवहन के साधनो मे उन्नति होने से हुए हैं, जैसे उद्योग-धन्धो मे विकास हुआ है, देश की व्यापारिक
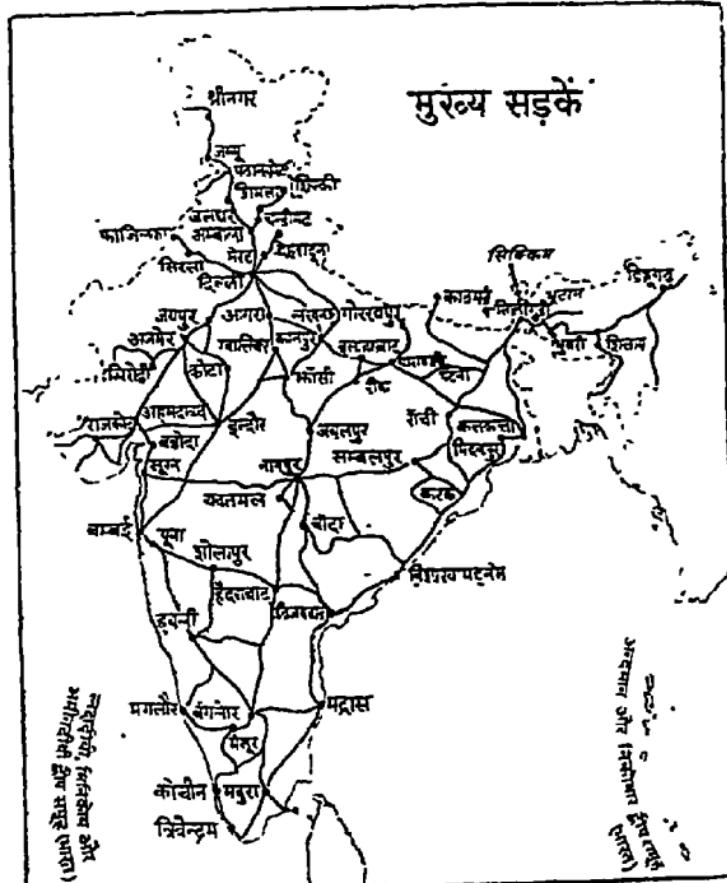
चित्र 38 —भारत की मुख्य सड़कें

और औद्योगिक उन्नति हुई है और कृषि एवं व्यापार के ढगो मे सुधार हुआ

है, परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ निम्नलिखित लाभ ऐसे हैं जो रेलो की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखते हैं :—

(1) भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है और कृषि-सुधार के लिये रेलो द्वारा परिवहन की सुविधाएँ प्राप्त नहो हो सकी है। रेलवे स्टेशन दूर पडते हैं और इसके अलावा ग्राम्य क्षेत्रो मे रेल-मार्ग इत्यादि बनवाने का खर्च अधिक होगा जबकि ग्राम्य क्षेत्रो से यात्री और माल पूरे वर्ष उचित मात्रा मे नहीं चल सकता, क्योकि उन्हे मण्डियो को माल भेजने की आवश्यकता फसल कटते समय ही अधिक होती है।

(2) सडके रेल-मार्गों की पूरक सिद्ध हो सकती है जैसा कि देखा भी जाता है। पूरक होने का अर्थ यह है कि ग्राम्य क्षेत्रों से रेलवे स्टेशनो तक सवारियो और माल को ढोने के लिए सडको की अत्यन्त आवश्यकता है।

(3) सडको द्वारा गाँव की उपज मण्डियो मे पहुँचाई जा सकती है और शहरी क्षेत्रो से आवश्यकता की वस्तुएँ सीधी लाई जा सकती है। इस अर्थ मे सडको द्वारा शीघ्रगामी सवारियो की सुविधा प्राप्त होती है।

(4) सडको की लागत रेल-मार्गों की अपेक्षा कम होती है। रेल-मार्गों मे अचल पूँजी अधिक लगानी पड़ती है जबकि उसका और कोई प्रयोग नही हो सकता, यहाँ तक कि एक प्रकार की गेज की रेले दूसरी तरह के गेज पर भी नही चल सकती। सडको मे ऐसा नही होता। सडको के बनवाने मे अपेक्षाकृत कम रुपया लगता है और उनका उपयोग अनेक प्रकार की सवारियो जैसे मोटर लारी, मोटर कार, बसो, मोटर साइकिलो, मोटर रिक्शो इत्यादि के लिए किया जाता है।

(5) सडको के द्वारा वन-सम्पत्ति मे सुधार और उन्नति सभव है। वनो से लाभ और उनसे मिलने वाले पदार्थ यथास्थान दिये गये हैं। सडके बनने से वन-सम्पत्ति का प्रयोग भली प्रकार हो सकेगा।

(6) देश की रक्षा मे सडको का विशेष महत्त्व है।

उपर्युक्त लाभ तभी सम्भव है जबकि सडको मे उन्नति हो, उनकी दशा अच्छी हो और ग्राम्य क्षेत्रो को अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान की जायँ।

रेल परिवहन

देश के भीतरी परिवहन मे रेल मार्गो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में रेल-मार्गो का विकास इंगलैण्ड के पश्चात् हुआ। रेल-मार्गो के विकास मे भारतवर्ष मे देरी इसलिए हुई कि हमारे यहाँ की दशाएँ इंगलैंण्ड से कुछ भिन्न थी। सन् 1845 मे सर्वप्रथम तीन रेलो के निर्माण की स्वीकृति दी गई—
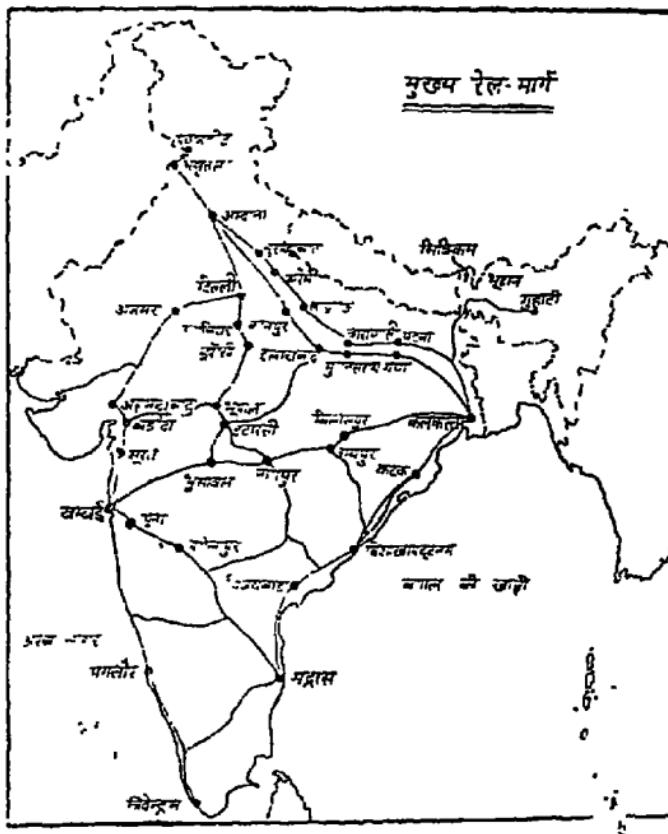
चित्र 39—भारत के मुख्य रेल-मार्ग

कलकत्ते से रानीगंज तक ईस्ट इण्डिया रेलवे, बम्बई से कल्याण तक जी० आई० पी० रेलवे और मद्रास से अर्कोनम तक मद्रास रेलवे। इन तीनो रेलो की कुल लम्बाई 207 किलोमीटर थी। किन्तु प्रथम रेल 16 अप्रैल, 1853 को बम्बई से थाना के बीच चलाई गई।

भारतवर्ष के विभाजन के पूर्व देश में लगभग 65 हजार किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइनें थी जिनमें से 11,197 किलोमीटर लम्बा भाग पाकिस्तान में चला गया।

मार्च, 1962 में भारतवर्ष में कुल रेलवे लाइनों की लम्बाई 57 हजार किलोमीटर थी। 1,286 किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइनों पर बिजली से रेल-गाड़ियाँ चलती थी।

31 मार्च, 1962 को भारतवर्ष की मुख्य लाइनें इस प्रकार थी—(1) ब्रॉड गेज—27,070 कि० मी०, (2) मीटर गेज—25,007 कि० मी०, और (3) नैरो गेज—5,013 किलोमीटर। कुल लम्बाई 57,090 किलोमीटर।

समूहीकरण (Regrouping) के पूर्व भारत में अनेक रेलवे लाइनें और स्टेट रेलवेज थी। समूहीकरण का मुख्य उद्देश्य रेलों की कार्यक्षमता बढ़ाना और प्रबन्ध के व्यय में बचत करना था। व्यापारी व्यवसायियों को पहले यदि सामान दूर भेजना पड़ता था तो बड़ी असुविधा होती थी। समूहीकरण द्वारा ये कठिनाइयाँ बहुत कम हो गई है।

अगस्त, 1949 के पूर्व भारत में 37 रेलवे लाइनें थी। समूहीकरण के पश्चात् भारतवर्ष की रेलवे लाइनें प्रारम्भ में छः समूहों में बाँटी गई थी। अब आठ समूह है जो इस प्रकार हैं :

रेलवे-समूह (Railway Zones)

समूह	मुख्यालय (हेडक्वार्टर)	समूह बनने की तारीख
1. दक्षिणी रेलवे	मद्रास	14.4.51
2. मध्य रेलवे	बम्बई	5.11.51
3. पश्चिमी रेलवे	बम्बई	5.11.51
4. उत्तरी रेलवे	दिल्ली	14.4.52
5. उत्तर-पूर्वी रेलवे	गोरखपुर	14.4.52
6. उत्तर-पूर्व फ्रन्टियर रेलवे	पाडु (Pandu)	15.1.58
7. पूर्वी रेलवे	कलकत्ता	1.8.55
8. दक्षिण-पूर्वी रेलवे	कलकत्ता	1.8.55

उत्तरी रेलवे दिल्ली, पंजाब, उत्तरी और पश्चिमी राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के भागो मे है । इसके मुख्य भाग दिल्ली से पठानकोट, दिल्ली से फिरोजपुर, दिल्ली से कालका, दिल्ली से अटारी, दिल्ली से वाराणसी तथा दिल्ली से बीकानेर है । उत्तरी रेलवे दिल्ली को राजस्थान के जोधपुर, अनूपगढ़ और पोकरन से भी जोड़ती है ।

उत्तरी-पूर्वी रेलवे उत्तर प्रदेश बिहार और पश्चिमी बंगाल के उत्तरी भागो तथा असम मे है । यह रेलवे पहले की अवध तिरहुत रेलवे (O. T. Rly.) भागो और असम रेलवे को मिलाकर बनी है । इस रेलवे के मुख्य भाग गोरखपुर से कानपुर, लखनऊ और बरेली तक, गोरखपुर से वाराणसी, गोरखपुर से अमीनगाँव (असम) और पण्डु-गोहाटी और तनसुकिया तक है ।

पूर्वी रेलवे पश्चिमी बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग मे है । इस रेलवे का मुख्य भाग हावडा से मुगलसराय है । यह भाग खनिज, व्यापार उद्योग की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसकी कई शाखाएँ और उपशाखाएँ हैं ।

पश्चिमी रेलवे महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और मध्य प्रदेश मे है । पश्चिमी रेलवे मे पहले की बी० बी० एण्ड सी० आई० आर० और जयपुर तथा सौराष्ट्र इत्यादि की स्टेट रेलवे सम्मिलित की गई हैं । पश्चिमी रेलवे के मुख्य भाग सूरत और बड़ौदा होकर बम्बई से अहमदाबाद और बम्बई से दिल्ली, अजमेर, जयपुर और अलवर होकर अहमदाबाद से दिल्ली तक है और कुछ भाग गुजरात में हैं ।

मध्य रेलवे के मुख्य भाग बम्बई से दिल्ली (भुसावल, खडवा, इटारसी, भोपाल, झाँसी, आगरा, मथुरा होकर), बम्बई से पूना होकर रायचूर और दिल्ली से मद्रास है । मध्य रेलवे मुख्यतः मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र और मद्रास राज्यो मे हैं । इसमे पहले की जी० आई० पी०, निजाम स्टेट, सिंधिया और धौलपुर रेलवे लाइनें शामिल की गई हैं ।

दक्षिणी रेलवे मुख्यतः मद्रास, मैसूर, केरल और महाराष्ट्र के दक्षिणी भाग मे है । इसके मुख्य भाग मद्रास से वाल्टेयर, मद्रास से रायचूर, मद्रास से बंगलौर, मद्रास से धनुषकोटी, मद्रास से त्रिवेन्द्रम, पूना से हरिहर, मंगलौर से जलारपत इत्यादि हैं । दक्षिणी रेलवे की लाइनें कई बन्दरगाहों को जोडती

हैं। इसमे पहले की मद्रास और दक्षिणी मरहट्टा, साउथ इण्डियन और मैसूर रेलवे लाइनें शामिल की गई हैं।

दक्षिणी-पूर्वी रेलवे पश्चिमी बगाल के दक्षिणी भाग, उडीसा, और मध्य प्रदेश के कुछ भाग मे है। इन भागो मे खनिज सम्पत्ति की प्रचुरता होने से इस रेलवे का अधिक महत्त्व है। दक्षिण-पूर्वी रेलवे के मुख्य भाग हावडा से नागपुर (खड्गपुर, टाटानगर, विलासपुर और रायपुर होकर) और हावडा से वाल्टेयर हैं। दक्षिणी-पूर्वी रेलवे पहले की बगाल नागपुर रेलवे से बनी है।

पचवर्षीय योजनाओं मे रेलों मे प्रगति

भारतीय रेलो ने प्रत्येक दिशा मे प्रगति की है। रेलो की लम्बाई मे वृद्धि हुई है और देश के योजना-कार्य मे रेलो ने अत्यन्त योग दिया है। यात्रियो के लिए सुविधाएँ पहले की अपेक्षा बहुत बढ गई हैं। मालगाडियो ने माल भी अधिक ढोया है। टूटी हुई और जीर्ण पटरियो को नया किया गया है और कुछ भागो पर गेज-परिवर्तन भी किया गया है। कई भागो मे नई लाइनें बनने से उन भागो में प्रगति हुई है। बिजली से चलने वाली रेलो में भी वृद्धि हुई है।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य रेलो को स्वावलम्बी बनाने की दिशा मे हुआ है। पहले हमें इजन, डिब्बे और रेलवे का भी सामान प्राय विदेशो से मँगाना पडता था। अब भी हमें कुछ सामान आयात करना पडता है परन्तु देश में इजन और डिब्बे बनने लगे हैं और उनके उत्पादन में निरन्तर प्रगति हुई है। टाटा लोकोमोटिव वर्क्स और स्वदेशी उत्पादन मे पर्याप्त उन्नति हुई है। सार्वजनिक क्षेत्र मे चित्तरजन लोकोमोटिव वर्क्स और पेराम्बुर (मद्रास) में डिब्बे बनाने के कारखाने (Integral Coach Factory) की स्थापना का विशेष महत्व है। मालगाडियों के डिब्बे का उत्पादन भारतवर्ष में काफी बढा है और आशा की जाती है कि लोकोमोटिव और वैगनो के लिए हमें विदेशो पर निर्भर नही रहना पडेगा।

पहली योजना की अवधि मे पहले उखाडी गई 692 किलोमीटर लम्बी लाइनें फिर से बिछाई गईं, 612 किलोमीटर लम्बी नई लाइनें बिछाई गईं तथा 74 किलोमीटर लम्बी छोटी लाइनो को मध्यम लाइनों मे बदला गया। इसके

अतिरिक्त योजना की अवधि के अन्त में 730 किलोमीटर लम्बी नई लाइनें बिछाई जा रही थी, 84 कि० मी० लम्बी लाइनें बडी लाइनों में बदली जा रही थी तथा 3,200 किलोमीटर से अधिक नई लाइनो का सर्वेक्षण किया जा रहा था।

दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि मे 1,931 किलोमीटर लम्बी नई लाइनें बिछाने, 2,100 कि० मी० लम्बी रेल-लाइनो को दुहरा बनाने, 426 कि० मी० लम्बी मध्यम लाइनो को बडी लाइनो मे बदलने तथा 12 900 कि० मी० लम्बी वर्तमान लाइनो के स्थान पर नई लाइन बिछाने का निश्चय किया गय था। अनुमान है कि द्वितीय योजना की अवधि में (जबकि लक्ष्य 1,931 कि० मी० का था) नई लाइनें 1,290 कि० मी० लम्बी बन चुकी थी।[1]

तीसरी योजना के पाँच वर्षो की अवधि मे (1965-66) तक 1,931 कि० मी० लम्बी नई रेल-लाइनें बिछाई जाएँगी। 2,575 कि० मी० लम्बी लाइनें दुहरी बनाई जाएँगी, और भारवाहन क्षमता 1965-66 मे 2,490 लाख मैट्रिक टन हो जायगी जबकि 1960-61 में 1,565 लाख मैट्रिक टन थी।

बिजली तथा डीजल की गाड़ियाँ—भारत में बिजली की गाड़ियाँ सर्व प्रथम 1925 में चलनी आरम्भ हुईं। बिजली की गाडियाँ केवल कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास के आस-पास ही कुछ लाइनो पर चलती हैं। 31 मार्च, 1962 को देश मे लगभग 1,286 कि० मी० मार्ग पर बिजली की गाडियाँ चलती थी। अनुमान है कि 1960-61 तक 2,081 कि० मी० मार्ग पर डीजल की गाडियाँ चलने लगी हैं। 31 मार्च, 1961 मे 181 डीजल इन्जिन थे।

ऊपर जो कुछ बताया है उससे स्पष्ट है कि भारतीय रेलो ने पर्याप्त प्रगति की है। एशिया मे सबसे अधिक रेलें भारत मे हैं और ससार के देशो की रेलो की लम्बाई की दृष्टि मे भारत का तीसरा स्थान है परन्तु भारतवर्ष के क्षेत्रफल और विशाल जनसख्या के अनुपात में रेल-मार्गो और रेलगाडियो मे काफी वृद्धि की आवश्यकता है। भारतवर्ष मे प्रति एक हजार वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल के लिए केवल 113 कि० मी० लम्बा रेल-मार्ग है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका मे 308, जापान मे 363 और यू० के० में

---

[1] Third Five Year Plan, p. 69.

1,000 किलोमीटर है । भारतीय रेलो में बहुत भीड़-भाड़ रहती है । योजनाओ की बढती हुई जरूरतो के लिए अभी रेलगाडियो और मार्गों मे काफी वृद्धि की आवश्यकता है ।

रेलो का आर्थिक प्रभाव

भारतवर्ष मे रेलो का विस्तृत प्रभाव पडा है, रेलो के द्वारा समाज मे नया जीवन आ गया है और राजनीति के ऊपर भी गहरा प्रभाव पडा है, परन्तु यहाँ हम केवल आर्थिक प्रभावो पर ही दृष्टिपात करेगे ।

रेलो से हानियाँ—रेलो से कुछ ये हानियाँ बताई जाती है —(1) रेलो के आरम्भ होने से घरेलू उद्योग-धन्धो को भारी धक्का लगा क्योंकि रेलो के द्वारा सस्ती और सुन्दर मिलो की बनी हुई चीजे प्राप्त होने लगी थी । (2) जहाँ ग्रामोद्योग नष्ट हो गए वहाँ कृषि की भी अवनति हुई क्योकि ग्रामो के निवासियो का मूल धन्धा कृषि ही रह गया । कृषि पर अधिक भार पडने के कारण खेतो की उत्पादन शक्ति भी घटी और खेत छोटे-छोटे और दूर-दूर हो गये हैं । आरम्भ मे रेलवे कम्पनियो की नीति भी यही रही कि कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाय क्योकि वे कच्चा माल वहाँ से इंगलैण्ड को भेजना आवश्यक समझते थे । (3) रेलो के द्वारा जनसख्या के वितरण पर यह बुरा प्रभाव पडा है कि शहरो और कस्बो मे आबादी बहुत अधिक हो गई है, जिससे लोगो के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडा है । (4) रेलमार्गों के कारण बाढ़े आती हैं, यह कहा जाता है, क्योकि नदियो के प्राकृतिक बहाव रुक जाते हैं ।

रेलो से आर्थिक लाभ उपर्युक्त बुराइयों को सरकार की नीति और सुप्रबन्ध के द्वारा रोका जा सकता है । रेलो से निम्नलिखित आर्थिक लाभ हैं : (1) रेलो से कृषि को भी लाभ हुआ है । अब व्यापार के साधन खुल जाने से खेतो मे खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त उद्योगो के लिए कच्चे माल का उत्पादन भी किया जाता है । कृषको को उपयोग के लिए शहरो से वस्तुएँ प्राप्त हो जाती है । मशीनों, अच्छी किस्म की खादो , अच्छे बीजो का प्रयोग आरम्भ हुआ है और कृषि-शिक्षा तथा कृषि करने के अच्छे ढगो का प्रचार हुआ है । जीवन-निर्वाह के स्थान पर कृषि एक लाभदायक धधा बनता जा रहा है । फलो इत्यादि के उत्पादन मे भी प्रोत्साहन मिला है क्योकि अब रेलो के द्वारा

उन्हें शीघ्र ही माँग के क्षेत्रों को भेजा जा सकता है। (2) रेलें देश को अकालो से बचाने मे सहायता करती है। कम पैदावार होने वाली जगहो को अन्न इत्यादि भेजा जा सकता है और रेलो मे मजदूरी को रोजगार मिलता है। (3) रेलों के द्वारा देश के भीतरी और विदेशी व्यापार की बहुत उन्नति हुई है। (4) रेलो के द्वारा देश के उद्योगो मे बहुत उन्नति हुई है। (5) रेलो के द्वारा देश की वन-सम्पत्ति के विदोहन में बहुत सुधार हुआ है। (6) रेलो के द्वारा सरकार को भी आमदनी होती है। रेलों मे प्रत्यक्ष रूप मे तो लाभ होता ही है, जनता के सामान्य स्तर के ऊँचा होने और समृद्धि मे वृद्धि होने से अप्रत्यक्ष रूप से कई प्रकार के करो के द्वारा भी आय होती है। (7) रेलो के द्वारा मजदूरों मे गतिशीलता आ गई है और ग्राम्य क्षेत्रो मे भी बहुत से लोग शहरी क्षेत्रो मे कारखानो मे जाकर काम करने लगे हैं। (8) देश मे विदेशी पूँजी लगी थी और देश के पूँजीपतियो ने भी जोखिम लेना सीख लिया है, जिससे उद्योग का विकास हुआ है।

जल परिवहन

जल परिवहन के विशेष लाभ—परिवहन के अन्य साधनो की अपेक्षा जल परिवहन के दो विशेष लाभ हैं—(क) सड़को या रेलो की भाँति जल-मार्गों के लिए अधिक प्रारम्भिक पूँजी की आवश्यकता नही होती। नदियाँ यदि काफी गहरी हैं और तेज बहने वाली नही हैं तो प्रकृति-प्रदत्त ऐसा साधन है जिसकी मरम्मत इत्यादि में कुछ भी व्यय नही करना पडता। यही बात झीलों खाडियो और समुद्रों पर लागू होती है। नहरें बनाने मे अवश्य काफी लागत लगती है। (ख) जल-मार्गों द्वारा परिवहन मे अन्य साधनो की अपेक्षा शक्ति (ईंधन) का कम प्रयोग होता है अत: जल परिवहन सस्ता पड़ता है। यही कारण है कि भारी पदार्थ और कच्चा माल ढोने के लिए तो जल परिवहन का विकास अत्यधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है।

भारतवर्ष के जल-मार्गों को हम दो मुख्य भागो मे बाँट सकते है—(1) भीतरी जल-मार्ग, और (2) समुद्री जल मार्ग। भारतवर्ष मे नदियो के द्वारा बहुत पहले से व्यापार होता आया है। विदेशी व्यापार और तटीय व्यापार भी होता था। परन्तु विदेशी शासन की नीति तथा कुछ अन्य कारंणो से जल-मार्गों के विकास मे हमारा देश पीछे रह गया। देश मे

की नहरें और पश्चिमी बंगाल की कुछ नहरें भी नौकायन का काम देती हैं। उत्तर प्रदेश मे गंगा की नहर में हरद्वार से कानपुर तक (लगभग 443 कि० मी०) नावें चलती हैं।

तीसरी योजना में भीतरी जल-मार्गों का विकास—तीसरी योजना के कार्यक्रमों मे संयुक्त स्टीमर कम्पनियों को पाण्डु मे भीतरी बन्दरगाह का विकास करने और दामोदर घाटी मे नौकायन सम्बन्धी कार्यों के लिए ऋण देने की व्यवस्था है। दामोदर नहर मे नौकायन कार्य दूसरी योजना की अवधि मे आरम्भ हुआ था।

भीतरी जल-मार्गों के विकास कार्य मे नई योजनाएँ ये हैं—

(क) गंगा-ब्रह्मपुत्र बोर्ड द्वारा सुन्दरवन में जल-मार्ग विकास।

(ख) आन्तरिक जल-परिवहन सम्बन्धी मामलों पर सलाह देने के लिए एक केन्द्रीय संगठन की स्थापना।

(ग) सुन्दरवन और ब्रह्मपुत्र के लिए कीचड़ हटाने के लिए ड्रेजर तथा बड़ी नौकाओं का क्रय।

(घ) गोहाटी मे तटों का सुधार; तथा

(ङ) प्रशिक्षण व्यवस्था।

राज्यों की भीतरी जल-मार्गों की विकास योजनाओं के अन्तर्गत केरल में पश्चिम तट नहर का विस्तार और सुधार; उड़ीसा मे कच्चे लोहे के निर्यात की दृष्टि से तलडण्डा तथा केन्द्र पाड़ा नहरों मे सुधार, राजस्थान नहर मे नौकायन की सुविधाओं का विकास, इत्यादि की व्यवस्था है।

समुद्री-मार्ग—भारतवर्ष की स्थिति पूर्वी गोलार्द्ध मे लगभग मध्यवर्ती होने के कारण और समुद्री सीमा भी 5,700 किलोमीटर के लगभग होने से यहाँ समुद्री मार्गों के विकास की अच्छी सुविधाएँ हैं, विशेषतः जबकि भारतवर्ष एक सम्पन्न देश है और उसका विदेशी व्यापार भी काफी बढ़ा हुआ है। परन्तु दुर्भाग्यवश पराधीनता काल मे विदेशी सरकार की नीति एवं अन्य कारणों से देश की जहाजरानी और विदेशी व्यापार की उन्नति न की जा सकी, सन् 1947 में स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् भारत सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है और कानून तथा शिक्षा द्वारा काफी प्रोत्साहन दिया है। जहाज बनाने की भी व्यवस्था की गई है। पूँजी की सहायता भी दी है। कई नए बन्दरगाह

खुले हैं, बन्दरगाहों की उन्नति हुई है और सभी बन्दरगाहों की उन्नति करने का अधिक प्रयत्न किया जा रहा है।
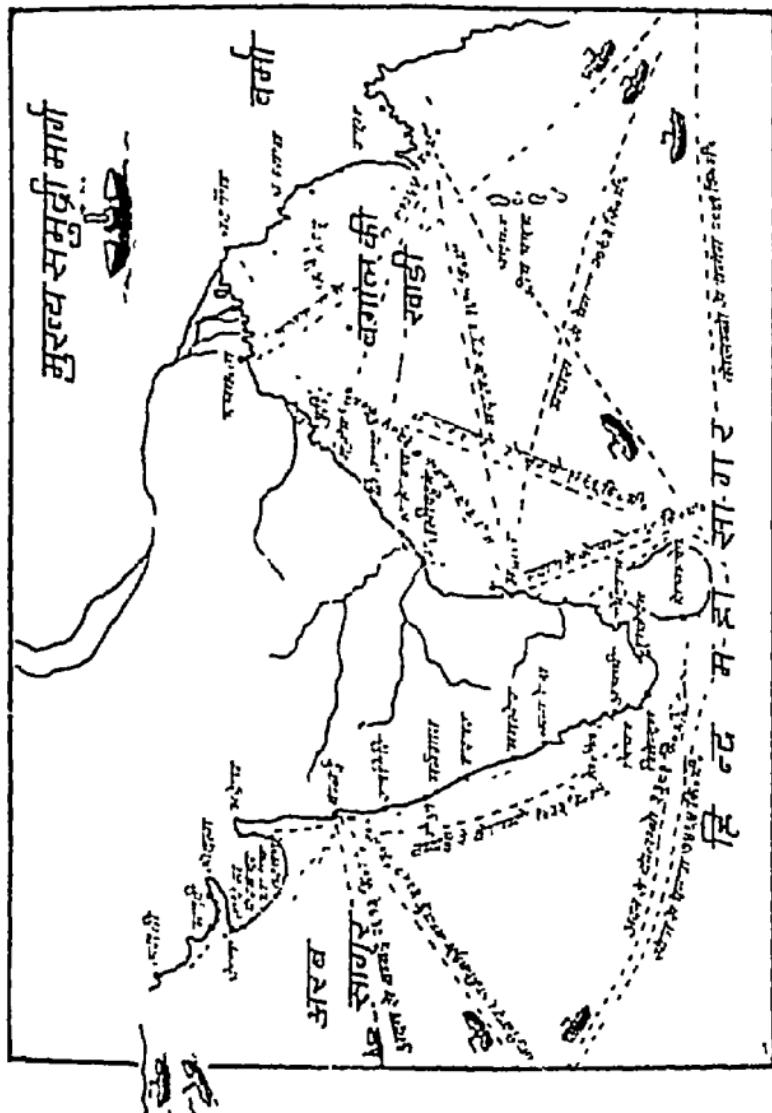
चित्र 40—भारत के मुख्य समुद्री मार्ग

वम्बई, कलकत्ता, मद्रास, विशाखापटनम् कोचीन तथा कांदला भारत-वर्ष के प्रसिद्ध और बड़े-बड़े बन्दरगाह हैं । इन बन्दरगाहों से देश का तटीय व्यापार भी होता है और विदेशी व्यापार भी । भारतवर्ष के मुख्य समुद्री मार्ग निम्नलिखित हैं—

(1) स्वेज-मार्ग—स्वेज नहर के खुलने से पहले भारतवर्ष से यूरोपीय देशों की समुद्री यात्रा केप जल-मार्ग द्वारा की जाती थी जिसमें समय और शक्ति अधिक लगते थे । सन् 1869 में स्वेज नहर खुल जाने से भारतवर्ष यूरोपीय देशों के बहुत समीप आ गया । वम्बई से केप-मार्ग द्वारा लिवरपूल की दूरी 17,268 कि० मी० थी किन्तु स्वेज-मार्ग के द्वारा यह दूरी 9,960 किलोमीटर रह गई । इसी प्रकार स्वेज नहर द्वारा वम्बई से न्यूयार्क जाने में भी 5,486 किलोमीटर की बचत हो गई । इस मार्ग द्वारा वम्बई से लन्दन तक समुद्री यात्रा के मुख्य वन्दरगाह वम्बई, अदन, स्वेज, पोर्टसईद, सिकन्द-रिया, कुस्तुनतुनिया, नेपिल्स, जिनेवा, मार्सलीज, लिस्बन, रोटर्डम और लन्दन हैं ।

(2) केप-मार्ग—इस मार्ग के द्वारा भारतवर्ष पश्चिमी अफ्रीका और दक्षिणी अफ्रीका से मिला हुआ है । स्वेज नहर के खुलने से पहले अमरीका और यूरोपीय देशों के लिए इसी मार्ग से यात्रा की जाती थी । केपटाउन, डर-बन और मोम्बासा इस समुद्री मार्ग के द्वारा वम्बई से मिले हुए हैं ।

(3) सिंगापुर मार्ग—इस मार्ग के द्वारा भारतवर्ष एशिया के पूर्वी देशों चीन, जापान इत्यादि से जुड़ा हुआ है इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है । इस मार्ग के द्वारा कनाडा और संयुक्तराज्य अमेरिका के पश्चिमी वन्दरगाह मिले हुए हैं ।

(4) आस्ट्रेलियाई मार्ग—यह मार्ग भारतवर्ष को आस्ट्रेलिया से मिलाता है । आस्ट्रेलिया के मुख्य वन्दरगाह, जो इस मार्ग के द्वारा मिले हुए हैं, एडी-लेट, मैलबोर्न, सिडनी और फ्रीमैंटल इत्यादि हैं । न्यूजीलैंड भी इसी समुद्री मार्ग द्वारा मिला हुआ है ।

भारतवर्ष में मुख्य बन्दरगाह—वम्बई, कलकत्ता, कोचीन मद्रास और विशाखापटनम है । अन्य वन्दरगाहों में ऐलप्पी, वालासोर, भावनगर, कालीकट, कटक, धनुषकोटि, कोजीखोड़, द्वारका, काकीनाडा, मंगलोर, मसूलीपट्टम, नागापट्टनम, पोरवन्दर, ओखा, सूरत और तूतीकोरन प्रसिद्ध है । कांदला

वन्दरगाह हाल ही मे खुला है और करार्ची के पाकिस्तान मे चले जाने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है।

वायु परिवहन

भारतवर्ष मे वायु-मार्ग भी महत्वपूर्ण हो गये हैं। भारतवर्ष मे वायु-मार्गो मे वास्तव मे वहुत शीघ्र विकास हुआ है। भारतवर्ष मे होकर दुनिया के वहुत वडे हवाई मार्ग हैं। यूरोप मे आस्ट्रेलिया के हवाई मार्ग मे भारतवर्ष वीच मे पडता है। डाक के लिए वायुमार्गो के विकास मे अधिक रुचि ली गई थी। भारतवर्ष मे सन् 1927 मे वायु-मार्ग का प्रारम्भ हुआ [1] और सन् 1932 मे इण्डिन एयर फोर्स का आरम्भ हुआ। सरकार और उद्योगपतियो की उदासीनता से आरम्भ मे विशेष विकास न हो सका। सन् 1939 मे विश्वयुद्ध के आरम्भ होने से वायु-मार्गो के विकास की आवश्यकता पडी। युद्ध के पूर्व भारत मे कुल तीन एयर लाइनें थी। युद्ध समाप्त होने पर कई नई कम्पनियो की स्थापना हुई। दिसम्बर सन् 1940 मे वंगलौर मे हवाई जहाज वनाने का एक कारखाना खुला जिसने सबसे पहला जहाज जुलाई सन् 1941 मे वनाकर तैयार किया। यह कम्पनी अव सरकार के हाथ मे है।

भारतवर्ष मे हवाई शिक्षा उड्डयन क्लवो के द्वारा दी जाती है जिनके मुख्य केन्द्र वम्वई देहली, मद्रास, कलकत्ता, नागपुर, भुवनेश्वर, पटना, जालन्धर कैंट, लखनऊ, वगलौर और हैदरावाद मे हैं। भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय उड्डयन संगठन का सदस्य है। भारत मे शिक्षा के विकास के साथ-साथ गवेषणात्मक कार्य का भी विकास हुआ।

सन् 1953 के पूर्व भारत मे कई एयर सर्विसें कम्पनियां) थी। 1 अगस्त, 1953 को वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण हुआ। एयर कोरपोरेशन एक्ट, 1934 के अन्तर्गत भारत मे दो कोरपोरेशन वना दिए गए :

(1) एयर इण्डिया इण्टरनेशनल, अधिक दूरियो और अन्तर्राष्ट्रीय सर्विस के लिए, और

---

[1] भारत मे वायुयान द्वारा पहली उडान 18 फरवरी, 1911 मे हुई थी जवकि इलाहावाद से लगभग 10 किलोमीटर दूर नैनी तक डाक भेजी गई थी।

(2) इण्डिया एयर लाइन्स कोरपोरेशन, देश के अन्दर अथवा पड़ोसी देशो तक उडानो क लिए।

इन कारपोरेशनो ने पहले की कम्पनियो को अपने मे मिला लिया।

वायु परिवहन के राष्ट्रीयकरण के लाभ—वायु परिवहन के राष्ट्रीयकरण के मुख्य लाभ निम्नलिखित समझे जाते हैं—

1. देश की सुरक्षा की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया।

2. जनोपयोगी सेवा की दृष्टि से भी यह आवश्यक समझा गया। राष्ट्रीयकरण के पश्चात् वायु परिवहन मे कार्यक्षमता बढी है, आराम के साधन भी बढ़े हैं और कुछ क्षेत्रो मे बिना लाभ का ध्यान रखे हुए एयर सर्विसे प्रारम्भ हुई हैं। इसके विपरीत, कम्पनियाँ तो ऐसे स्थानो मे ही सर्विस चालू कर सकती थी जहाँ उन्हे लाभ हो।

3. नई टैक्नीक और नये प्रकार के वायुयानो का प्रयोग सम्भव है।

4 व्यवस्था मे केन्द्रीकरण होने से एक ही स्थान पर स्पर्धा के बजाय मितव्ययता और सुचारुता का ध्यान रखा जा सका है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकरण के पूर्व की सरकार को कई एयर सर्विस कम्पनियो को आर्थिक सहायता देनी पड रही थी। अत सरकार ने उन्हे अपने हाथ मे ले लिया।

भारतवर्ष के हवाई अड्डे—सन् 1961 मे भारत मे कुल 86 हवाई अड्डे सिविल एविएशन डिपार्टमेन्ट के द्वारा चलाए जा रहे थे। इन हवाई अड्डो को चार वर्गों मे रखा जा सकता है—

1) अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के हवाई अड्डे तीन हैं—
बम्बई मे सन्ताक्रुज, कलकत्ता का डमडम और दिल्ली का पालम।

(2) बडे (Major) हवाई अड्डे आठ हैं—
अगरतला (त्रिपुरा), अहमदाबाद, बेगमपेट (हैदराबाद), सफदरजग (दिल्ली), गौहाटी, मद्रास (St. Thomas Mt.), नागपुर और तिरुचिरापल्ली।

(3) मध्य (Intermediate) हवाई अड्डे 36 है, तथा

(4) छोटे (Minor) हवाई अड्डे 26 हैं।

मुख्य वायु मार्ग—भारतवर्ष मे वायु परिवहन के मुख्य केन्द्र बम्बई, दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता, हैदराबाद, नागपुर, अगरतला, गौहाटी इत्यादि हैं।

इन स्थानों से देश और विदेशों के विभिन्न स्थानों के लिए हवाई सर्विसें जाती हैं।
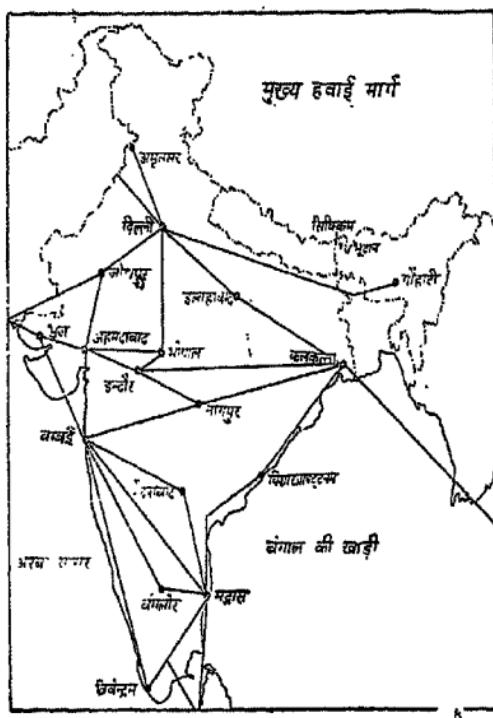
चित्र 41—भारत के मुख्य वायु मार्ग

भारत में वायु परिवहन की मुख्य विशेषता रात की डाक सर्विस (Night-air mail service) है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास से यह डाक जाती है और नागपुर में डाक की बदली होती है। एयरमेल सर्विस में कुछ यात्रियों को भी ले जाया जाता है।

वायु परिवहन में प्रगति—भारत में वायु परिवहन (Civil aviation) में चहुंमुखी विकास हुआ है। सन् 1947 की अपेक्षा 1961 में वायुयानों द्वारा

यात्रियो की संख्या लगभग तीन गुनी थी, ढोया हुआ माल लगभग 16 गुना था।

वायु-परिवहन समझौते—अफगानिस्तान, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ईराक, जापान, नीदरलैंड, पाकिस्तान, फ्रास, फिलीपीन, ब्रिटेन, मिस्र, रूस, श्रीलका, थाईलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड तथा स्वीडन के साथ वायु-परिवहन समझौते हैं। इटली, ईरान, चेकोस्लोवाकिया तथा लेबनान के साथ अस्थायी समझौते हैं।

वायु परिवहन के विशेष लाभ—परिवहन के अन्य साधनो की अपेक्षा वायु परिवहन के मुख्य लाभ ये हैं :—

(1) समय बहुत कम लगता है। व्यापार मे समय का अत्यधिक महत्व है।

(2) वायुयानो द्वारा दुर्गम स्थानो मे भी पहुँच की जा सकती है, जैसे ऊँचे पहाड, बाढग्रस्त मैदान, असम धरातल और बर्फीले तथा रेतीले स्थान।

वायु परिवहन की मुख्य कठिनाई इसके बढ़े हुए किराये-भाडे हैं। इस लिए बहुत कम व्यापारी और उद्योगपति इसका लाभ उठा पाते हैं। यह आशाजनक है कि किराये-भाडो मे कमी करने का प्रयत्न जारी है। भारतवर्ष मे पैट्रोलियम की कमी और देश की सामान्य निर्धनता के कारण भी वायु परिवहन के विकास के मार्ग मे बाधा रही है।

संचार-साधन

सचार-साधनो के विकास का उद्योग और वाणिज्य के विकास मे बहुत कुछ हाथ रहा है। संचार साधनो के विकास के अभाव मे वस्तुओ के बाजार सीमित रहते हैं और इसीलिए उनका उत्पादन भी बडे पैमाने पर नही होता। मुख्य सचार साधन निम्नलिखित हैं:—

(1) डाक, (2) तार, (3) टेलीफोन, (4) वायरलैस, और (5 रेडियो। भारत मे सभी साधनों पर भारत सरकार का नियन्त्रण है।

डाक—डाक-विभाग प्रमुख साधन है। देश और विदेश को रेल, मोटर, वायुयानो तथा जलयानों द्वारा डाक पहुंचाई जाती है। 1950-51 मे देश मे कुल 36,004 डाकघर थे। सन् 1960-61 मे भारत में कुल डाकघर 77 हजार और तारघर 6,500 थे और तीसरी योजना के अन्त (1965-66) मे क्रमशः 94 हजार और 8,500 होने का अनुमान है। डाक द्वारा सन्देश भेजने का

साधन साधारण और जवाबी तथा ऐक्सप्रेस डिलीवरी, पोस्टकार्ड, साधारण और एक्सप्रेस पत्र (लिफाफा), एयरमेल पत्र और अन्तर्देशीय पत्र है। पत्र रजिस्टर्ड भी जा सकते हैं। डाक-विभाग के द्वारा रुपये, पार्सल इत्यादि भी भेजे जा सकते हैं।

तार—तार द्वारा समाचार भेजने का कार्य भी डाक-तार विभाग करता है। तार साधारण और एक्सप्रेस दो प्रकार के होते हैं। देश मे 11,109 तारघर हैं। हिन्दी मे और देवनागरी लिपि मे तार भेजने की सुविधा भी प्राप्त है।

टेलीफोन—किसी नगर मे अपने स्थान पर बैठे हुए ही उसी नगर के दूसरे स्थान के व्यक्ति से शीघ्र ही बातचीत करने और सन्देश भेजने के लिए टेलीफोन बहुत उत्तम साधन है। टेलीफोन द्वारा देश के अन्य नगरो के व्यक्तियो से भी बातचीत की जा सकती है। 1950-51 मे 168 हजार टेलीफोन थे। 1960-61 मे 481 हजार टेलीफोन थे और 1965-66 मे 660 हजार होने का लक्ष्य है।

वायरलैस (बेतार के तार)—यह सुविधा भारत मे केवल सरकारी कार्यों के लिए उपलब्ध है। सरकारी कार्यो मे भी अधिकतर इसका उपयोग सुरक्षा के लिए किया जाता है, जैसे, एक जहाज पर आपत्ति अथवा दुर्घटना की तथा अन्य आवश्यक सूचना देना।

रेडियो—भारतवर्ष मे रेडियो का नियन्त्रण अब सरकार के ही हाथ मे है। भारतवर्ष मे सूचनात्मक ब्राडकास्टो के अतिरिक्त व्यापारिक विज्ञापन रेडियो द्वारा नही होते तथापि ग्राम्य क्षेत्रो के हित की दृष्टि से एव अन्य बाजारो पर स्वस्थ प्रभाव रखने की दृष्टि से बाजार भाव इत्यादि बताये जाते हैं। सन् 1962 के आरम्भ मे भारत मे आकाशवाणी केन्द्र (All India Radio Broadcasting Stations) 29 थे जबकि 1947 मे केवल छ: थे। 31 दिसम्बर, 1961 को देश मे 77 सम्प्रेषण यन्त्र, 33 स्टुडियो-केन्द्र तथा 28 प्रापण (रिसीविंग) केन्द्र थे। गोआ रेडियो स्टेशन भी अब भारत में है। जनवरी, 1963 मे कोहिमा (नागालैंड) मे भी आकाशवाणी-केन्द्र खुल गया है।

31 अक्टूबर, 1960 को देश मे कुल 20,11,424 रेडियो-सेट थे।

एक यूनेस्को-परियोजना के रूप मे परीक्षणात्मक टेलीविजन का उद्घाटन 15 सितम्बर, 1959 को नई दिल्ली मे हुआ था। प्रत्येक मंगलवार और शुक्रवार को एक-एक घण्टे का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है जिसे 40 किलोमीटर तक की परिधि मे देखा जा सकता है।

संक्षेप

परिवहन के साधनो का देश में क्रमिक विकास हुआ है और उसका हमारे आर्थिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पडा है। परिवहन के साधनों को तीन मुख्य भागों में बाँटा जाता है—(1) स्थल परिवहन—स्थल मार्गो मे सडको और रेलो का अधिक महत्त्व है। भारतवर्ष मे चार बडी-बड़ी सडकें हैं जो दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास और बम्बई को क्रमश. मिलाती हैं। इन चारों सडको की लम्बाई 8 हजार कि० मी० और कुल पक्की सड़कों की लम्बाई 232 हजार किलोमीटर है। कुल सडक 634 हजार किलोमीटर के लगभग हैं। सडको के महत्त्व की दृष्टि से सड़कों की काफी उन्नति होने की आवश्यकता है।

रेलो का विकास सन् 1845 के बाद प्रारम्भ हुआ। इस समय भारत में लगभग 57 हजार कि० मी० लम्बी लाइनें है, जिनमें केवल 1,286 किलोमीटर लम्बाई पर बिजली से रेलगाड़ियाँ चलती हैं। भारतवर्ष मे रेलवे लाइनो का समूहीकरण कर दिया गया है। रेलों का देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

(2) जल परिवहन—(अ) भीतरी जल-मार्ग और (ब) समुद्री जल-मार्ग। भारत मे नदियो के जल-मार्ग लगभग 2,836 कि० मी० लम्बे हैं जिनमे स्टीमर भी चल सकते है। महानदी तथा अन्य कुछ नदियो में जल-मार्गों के विकास की योजनाएँ है। भारतवर्ष को समुद्री मार्गों के विकास की सुविधाएँ प्राप्त है परन्तु इस दिशा मे अधिक उन्नति नही हुई है। स्वेज मार्ग, केप मार्ग, सिंगापुर-मार्ग और आस्ट्रेलियन-मार्ग देश के प्रमुख समुद्री मार्ग है।

(3) वायु परिवहन—भारत में वायु-मार्गों का विकास 1932 ई० के पश्चात हुआ परन्तु अब काफी विकास हो चुका है।

परिवहन से विकास पर प्राकृतिक और राजनैतिक कई कारणों का प्रभाव पड़ता है, जिनमें से (i) जलवायु, (ii) जमीन की बनावट, (iii) उत्पादन, (iv) मंडियाँ, तथा (v) जनसंख्या का वितरण मुख्य हैं।

भारतवर्ष में संचार साधनों तथा जन-सम्पर्क के साधनों—डाक, तार, टेलीफोन तथा रेडियो इत्यादि का पर्याप्त विकास हुआ है।

प्रश्न

1. भारतवर्ष मे रेलो और सडको के अतिरिक्त परिवहन के किन-किन साधनो का विकास होना चाहिए ? उनकी वर्तमान दशा और विकास के क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
2. स्थल, जल और वायु परिवहन के व्यापारिक दृष्टि से तुलनात्मक गुणो पर प्रकाश डालिए।
3. वायु परिवहन के सम्बन्ध मे भारतवर्ष की दशा का वर्णन कीजिए।
4. भारत के ग्रामो की आर्थिक दशा पर रेलो के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
5. भारत के मुख्य सचार साधन क्या हैं। सक्षिप्त परिचय दीजिए।

अध्याय 17

व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र, बन्दरगाह, और पृष्ठ-प्रदेश

(Industrial & Commercial Centres, Ports & Hinterlands)

व्यापारिक केन्द्र
(Commerical Centres)

आजकल कोई भी व्यक्ति अपने उपभोग की वस्तुएं स्वय उत्पादन नहीं करता। वस्तुओ का उत्पादन होने के पश्चात् व्यापार के द्वारा उन्हें उपभोक्ताओ तक पहुँचाया जाता है। व्यापारिक केन्द्र उन स्थानो को कहते हैं *जहाँ वस्तुओ का एकत्रीकरण, परिवहन के विभिन्न साधनो के द्वारा उनका* वितरण और विनिमय किया जाता है।

व्यापारिक केन्द्रो अथवा नगरो और कस्बो का विकास धीरे-धीरे हुआ है। पहले लोग अपनी आवश्यकताएँ स्वय अथवा स्थानीय और समीपवर्ती क्षेत्रो से अपनी वस्तुएँ अदल-बदल कर सन्तुष्ट कर लिया करते थे। व्यापारिक केन्द्रो का विकास द्रव्य के प्रचलन, संचार और परिवहन के सस्ते साधनो के विकास, उत्पादन के नए तरीको (मशीनो का आविष्कार, श्रम-विभाजन, इत्यादि), लोगो के परस्पर सम्पर्क में आने और व्यापारिक तरीको मे विकास होने के साथ-साथ हुआ है।

व्यापारिक केन्द्रों के विकास पर प्रभाव डालने वाली मुख्य दशाएँ—

(1) कुछ स्थान अपनी अच्छी स्थिति के कारण व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं। नदियो और झीलो के समीप बहुत से व्यापारिक केन्द्रो का जन्म हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि प्राचीन काल मे नदियाँ परिवहन का मुख्य साधन थी। आजकल भी कई स्थान परिवहन की सुविधा मिलने के पश्चात् व्यापारिक केन्द्र बन गये है।

(2) दो देशो की सीमा पर अथवा दो राज्यो या क्षेत्रो की सीमा पर स्थित स्थानो मे व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं—पेशावर और झाँसी बहुत कुछ इसी कारण विकसित हुए हैं।

(3) राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणो से भी कुछ स्थान व्यापार के केन्द्र बन जाते हैं—जैसे देहली, जयपुर इत्यादि।

(4) प्राकृतिक सम्पत्ति (जैसे खानो इत्यादि) के निकट व्यापारिक केन्द्रो का विकास हो जाता है—जैसे कोलार।

(5) आजकल विद्युत उत्पादन करने वाले स्थान प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं—जैसे शिवसमुद्रम्।

(6) दो नदियो के संगम स्थानो पर भी व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं—जैसे, इलाहाबाद।

(7) दो सडको या रेल-मार्गों के मिलने के स्थानो (जकशनो) पर व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं—जैसे नागपुर।

(8) शिक्षा सम्बन्धी कारणो से भी कुछ शहरो का विकास हो जाता है। जैसे, उज्जैन, शातिनिकेतन, अन्नमलयनगर।

(9) धार्मिक कारणो से भी कुछ शहरो का विकास हो जाता है। नाथ द्वारा, वाराणसी, पटना, गया, द्वारका और पुरी इसी कारण विकसित हो गए हैं।

(10) कुछ स्वास्थ्य-वर्द्धक और सौन्दर्यपूर्ण स्थानो मे भी नगरो का विकास हुआ है। श्रीनगर, शिमला, मंसूरी इत्यादि का विकास इसी कारण हो गया है।

औद्योगिक केन्द्र (Industrial Centres)

वे स्थान, जहाँ कुछ कारणो से कई उद्योग स्थापित हो जाते हैं, औद्योगिक केन्द्र कहलाते हैं। कुछ मुख्य केन्द्रो मे एक से अधिक उद्योग केन्द्रीभूत हो जाते हैं और उन स्थानो मे से कुछ मे सहायक धन्धो का विकास हो जाता है। औद्योगिक केन्द्रों मे परिवहन और सचार-साधनो की सुविधा भी प्राय: प्राप्त होती है और बैंकिंग की सुविधा भी। औद्योगिक केन्द्र प्राय. घने बसे हुए होते हैं और इनमे श्रमिक भी सुलभ होते है।

औद्योगिक केन्द्रों का विकास—औद्योगिक केन्द्रो के विकास की दशाओ के लिए देखिए अध्याय 15 (उद्योगो का स्थानीयकरण)।

बन्दरगाह (Ports)

बन्दरगाह एक द्वार है जिसमे होकर स्थल से समुद्र और समुद्र से स्थल के लिए मार्ग खुलता है। बन्दरगाह के निकट जहाज आकर ठहरते हैं और यात्री, माल और असबाव उतरते हैं। इसलिए यह परम आवश्यक है कि बन्दरगाह के समीप उचित आश्रय स्थान (Harbour) हो और यात्रियो एव सामान के लिए भी उपयुक्त जगह हो।

बन्दरगाह की स्थिति कई प्रकार की होती है। कई बन्दरगाह इस प्रकार स्थित होते हैं जहाँ महासागर मे होकर अन्य स्थानो के लिए जहाज आते-जाते रहते हैं। ऐसे बन्दरगाहो के समीप कभी-कभी आश्रय स्थान भी नही होते, उनका महत्व केवल मुख्य मार्ग पर होने के कारण ही होती है। कुछ दूसरे प्रकार के बन्दरगाह ऐसे होते हैं जो खाड़ियो के किनारे पर स्थित होते हैं। ऐसे बन्दरगाह प्राय: सुरक्षित और अच्छे होते हैं। तीसरे प्रकार के बन्दरगाह ऐसे होते हैं जो समुद्र के नहर द्वारा मिले हुए होते हैं। ऐसा प्राय: तब होता है जब कोई स्थान अपनी स्थिति (खनिज पदार्थों का सामीप्य इत्यादि) के कारण उन्नत हो जाते हैं और औद्योगिक केन्द्र बन जाते हैं। तब माल निर्यात करने और कच्चा माल आयात करने की सुविधा के लिए उस स्थान को नहर द्वारा समुद्र से मिला दिया जाता है क्योकि स्थल परिवहन की अपेक्षा जल परिवहन मे कम खर्च होता है। चौथे प्रकार के बन्दरगाह नदियों के समुद्र मे गिरने के स्थान पर स्थित होते हैं—जैसे कलकत्ता। ऐसे बन्दरगाहों को प्राप्त मुख्य लाभ यह है कि वे नदियों द्वारा मुख्य भू-भाग से जुड़े रहते हैं और निर्यात के लिए माल इकट्ठा करने मे तथा आयात किये हुए माल के वितरण मे अपेक्षाकृत कम व्यय होता है। कुछ बन्दरगाहो की स्थिति मे दो प्रकार के लक्षण देखे जा सकते है, जैसे नदियो के गिरने के स्थान पर खाड़ी मे स्थित।

सभी प्रकार के बन्दरगाहो को दो मुख्य भागो मे बाँटा जा सकता है—(1) प्राकृतिक बन्दरगाह तथा (2) कृत्रिम बन्दरगाह। **प्राकृतिक बन्दरगाह** को कुछ प्रकृति की दी हुई सुविधाएँ प्राप्त होती हैं—जैसे भारतवर्ष मे बम्बई को। वहाँ समुद्र-तट पक्का और कटा-फटा होता है तथा जहाज ठहरने की जगह सुरक्षित होती है। **कृत्रिम बन्दरगाहों** को प्राकृतिक सुविधाएँ तो प्राप्त नही

होती परन्तु आर्थिक कारणो से अथवा राजनीतिक कारणो से वहाँ बन्दरगाह की स्थिति आवश्यक होती है तो वहा कृत्रिम साधनो के द्वारा बन्दरगाह स्थापित किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि उस स्थान के समीप समुद्र मे रेत, बालू या कीचड जमा होती रहती है तो उसे साफ करना पडता है, यदि समुद्र-तट पक्का नही है तो उसे पक्का बनाया जाता है और इसी प्रकार उसे सुरक्षित बनाने के लिए भी प्रयत्न किया जाता है। भारतवर्ष मे मद्रास, विशाखापट्टनम इत्यादि कृत्रिम बन्दरगाह हैं।

अच्छे बन्दरगाहो की विशेषताएँ

बन्दरगाहो की दशा समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले यह समझ लिया जाय कि अच्छे बन्दरगाह मे कौन-कौन सी विशेषताएँ होनी आवश्यक हैं। मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

(1) पहली और मुख्य आवश्यकता यह है कि वहाँ जहाजो के ठहरने के लिए सुरक्षित स्थान हो। बम्बई के समुद्र-तट के सामने टापू के होने से समुद्र की प्रचण्ड तरगें वहाँ स्थित जहाजों को नष्ट नही कर सकती।

(2) यदि समुद्र-तट पक्का है अर्थात् कडी चट्टान का बना हुआ है और इस प्रकार कटा-फटा है कि वहाँ जहाजो के ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान बन गया हो तो भी प्राकृतिक सुरक्षा मिल जाती है।

(3) समुद्र-तट के समीप समुद्र गहरा होना चाहिए ताकि जहांज किनारे तक आ सकें। जहाँ जहाज किनारे तक नही आ पाते वहाँ उन्हे समुद्र के गहरे भाग मे ही लगर डालने पडते हैं और वहाँ से माल अथवा यात्रियो को नावो के द्वारा किनारे तक पहुँचाना पडता है, जिसमे असुविधा तो होती ही है, व्यय भी होता है।

(4) समुद्र-तट के समीप समुद्र गहरा और सुरक्षित ही नही, चौडा भी होना चाहिए अर्थात् वहाँ इतना स्थान होना आवश्यक है कि जहाज काफी सख्या मे खडे हो सकें और मुड सकें (घूमकर लौट सकें)।

(5) बन्दरगाह बारहो महीने खुला रहे। इसके लिए आवश्यक है कि समुद्र न जमे। अधिक ठण्डे स्थानो मे समुद्र सर्दियो मे जम जाते हैं और बन्दरगाह भी उन दिनो के लिए बन्द हो जाते है। समुद्र को जमने से रोकने

के लिए आजकल बर्फ तोड़को (Ice-breakers) का प्रयोग किया जाने लगा है।

(6) बन्दरगाह के क्षेत्र की जलवायु स्वास्थ्य के लिए अनुकूल होनी चाहिए। यदि उस क्षेत्र मे पीने का पानी अस्वास्थ्यकर है अथवा मलेरिया जैसे रोगो का प्रकोप है तो लोग वहाँ रहकर काम नहीं कर सकेंगे, न वहाँ आना-जाना पसन्द करेंगे।

(7) बन्दरगाह परिवहन के विभिन्न साधनो के द्वारा भीतरी भागो से जुडा हुआ होना चाहिए। नदियाँ, नहरें, रेल-मार्ग और सडकें बन्दरगाह को अन्तर्वर्तीय क्षेत्रो से जोड़ती है। इसके विपरीत यदि बन्दरगाह के पीछे घने जंगल हों, दुर्गम घाटियाँ और पहाड हो अथवा अन्य कठिनाइयो के कारण बन्दरगाह भीतरी प्रदेशों मे पृथक् हो गया हो तो बन्दरगाह का सम्यक् विकास नहीं हो सकता।

(8) बन्दरगाह के लिए माल उतारने, रखने और चढाने के लिए तथा अन्य आवश्यक कार्यों के लिए काफी स्थान होना चाहिए। व्यापार के लिए सुविधा होनी चाहिए।

(9) इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि बन्दरगाह का पृष्ठ-प्रदेश धनवान हो।

पृष्ठ-प्रदेश (Hinterland)*

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि पृष्ठ-प्रदेश किसे कहते हैं। पृष्ठ-प्रदेश वह समस्त क्षेत्र है जिसके लिये वह बन्दरगाह एक द्वार का काम करे। अन्य शब्दों में बन्दरगाह के पीछे का वह प्रदेश जिसके लिए उस बन्दरगाह से आयात और निर्यात किए जायँ पृष्ठ-प्रदेश कहलाता है।

पृष्ठ-प्रदेश दो प्रकार के होते हैं—पहले वे जो अपने उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं। उत्पादन में दोनो प्रकार का उत्पादन सम्मिलित है—कृषि उत्पादन और औद्योगिक उत्पादन। कृषि उत्पादन मुख्य रूप मे दो प्रकार का होता है—(1) कच्चा माल; जैसे कपास, जूट, तिलहन, तम्बाकू, इत्यादि (2) खाद्य पदार्थ, जैसे गेहूँ, चावल, इत्यादि। औद्योगिक उत्पादन मे बना हुआ माल आता है, जैसे कपडा, जूट का बना सामान, चाय, मशीनरी इत्यादि। इन दोनों प्रकारो के उत्पादन के अतिरिक्त खनिज उत्पादन; जैसे मैंगनीज, अभ्रक,

कच्चा लोहा, पैट्रोलियम, इत्यादि, तथा वन सम्पत्ति; जैसे रबड, लकडी इत्यादि भी किसी पृष्ठ-प्रदेश को धनवान बना देते हैं। इस प्रकार के पृष्ठ-प्रदेश वाले बन्दरगाह अपने निर्यात के लिये विकसित हो जाते हैं।

दूसरे प्रकार के पृष्ठ-प्रदेश व्यापार के लिए अच्छे होते हैं, जहाँ उपभोग के लिये अथवा उद्योग के लिये खाद्य-पदार्थों अथवा कच्चे माल की बिक्री हो सकती है। इस प्रकार के पृष्ठ-प्रदेशों वाले बन्दरगाह अपने आयात के लिए विकसित हो जाते हैं।

यह कभी नहीं मान लेना चाहिए कि पृष्ठ-प्रदेश का महत्व केवल निर्यात करने अथवा आयात करने में है। वस्तुतः ऐसा तो कम ही होता है। धनी पृष्ठ-प्रदेशो का महत्व, जिसके ऊपर बन्दरगाहो का विकास निर्भर है, आयात-निर्यात और पुनर्निर्यात[1] तीनो प्रकार के व्यापार मे है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बन्दरगाह का विकास पृष्ठ-प्रदेश की दशा के ऊपर ही अधिक निर्भर है।

इसलिए यदि हम दो बन्दरगाहों की तुलना करें तो हमें उन बन्दरगाहो के पृष्ठ प्रदेशो की दशा को ध्यान में रखना अत्यावश्यक है। साथ ही हमे यह भी देखना चाहिये कि उन बन्दरगाहो पर एक वर्ष में आने-जाने वाले जहाजो की सख्या औसतन कितनी रहती है। पूरे वर्ष की जहाज सख्या इसलिए देखनी चाहिए कि प्रतिदिन, प्रति सप्ताह या प्रति मास जहाजों की सख्या में बहुत अन्तर आ जाता है, परन्तु अपेक्षाकृत प्रति वर्ष आने-जाने वाले जहाजों की संख्या मे उतना अन्तर नही होता। तुलनात्मक दशा का विचार करने के लिए तीसरी बात यह देखनी चाहिए कि उन बन्दरगाहो से आयात, निर्यात और कुल व्यापार क्रमशः कितना-कितना होता है, परन्तु हो सकता है कि व्यापार भारी परन्तु सस्ती चीजो का होता हो, इसलिए चौथी बात यह भी देखनी चाहिए कि आयात, निर्यात और कुल व्यापार का क्रमशः मूल्य कितना है। इसके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिये कि सरकार की आमदनी किस बन्दरगाह से अधिक होती है। यही ऐसी मुख्य बातें हैं जिनसे हम किसी बन्दरगाह के विकास का स्तर माप सकते हैं।

---

1 Re- exports. Ports doing such trade are called entrepots.

भारतवर्ष के प्रमुख व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र

भारतवर्ष के राज्यों के प्रमुख नगर नीचे दिए गये हैं—

राज्य	नगर
(1)	(2)
आन्ध्र प्रदेश	हैदराबाद, विजयवाड़ा, वारंगल, गुन्टूर, विशाखापट्टनम, राजमुन्द्री, काकीनाडा एलुरु, नेल्लोर, बान्दर (मसूली-पट्टनम) तथा कुर्नूल ।
बिहार	पटना, जमशेदपुर, गया, भागलपुर रांची, मुजफ्फरपुर, डालमियां नगर, दरभंगा ।
महाराष्ट्र	बम्बई, पूना, नागपुर, शोलापुर, कोल्हापुर, अमरावती, नासिक, अकोला ।
गुजरात	अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा, भावनगर, राजकोट और जामनगर ।
केरल	त्रिवेन्द्रम, कोजीकोड, अलप्पी ।
मध्यप्रदेश	इन्दौर, जबलपुर, ग्वालियर, उज्जैन, भोपाल, रायपुर, दुर्ग, सागर ।
मद्रास	मद्रास, मदुरई, तिरुचिरापल्ली, सलेम, कोयम्बटूर, नैल्लोर, तंजोर, तूतीकोरन ।
मैसूर	बंगलोर, मैसूर, कोलार, हुबली, मंगलोर, बेलगांव ।
उड़ीसा	कटक, भुवनेश्वर ।
पंजाब	अमृतसर, जलन्धर, लुधियाना, पटियाला, चण्डीगढ़ ।
राजस्थान	ब्यावर, जयपुर, अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, उदयपुर, पाली ।
उत्तर प्रदेश	कानपुर, लखनऊ, आगरा, वाराणसी, इलाहाबाद, मेरठ, बरेली, मुरादाबाद, सहारनपुर, देहरादून, अलीगढ़, रामपुर, गोरखपुर, झांसी, मथुरा, शाहजहांपुर, मिर्जापुर, मोदीनगर ।
प० बंगाल	कलकत्ता, हावड़ा, खड़गपुर, बर्दवान, आसनसोल, रानीगज, टीटागढ़ ।
असम	शिलांग, गोहाटी ।
जम्मू-कश्मीर	श्रीनगर, जम्मू ।
केन्द्र प्रदेश	दिल्ली, शिमला, इम्फाल, अगरतला, पोर्ट ब्लेयर ।

दिल्ली—दिल्ली जिसकी जनसंख्या लगभग साडे छब्बीस लाख है, भारत-वर्ष का मुख्य नगर है। दिल्ली नगर का विकास राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से हुआ है। प्राचीन काल से ही दिल्ली को अनेक राजाओ की राजधानी होने का गौरव मिला है। पाण्डवो का इन्द्रप्रस्थ भी दिल्ली का ही प्राचीन रूप था। मुगल-काल मे दिल्ली की बहुत उन्नति हुई। हुमायूँ का मकबरा और लाल किला आज तक सुन्दर बने हैं। ब्रिटिश शासनकाल मे यहाँ अनेक नई इमारतें बनी और नई दिल्ली का विकास हुआ। अब दिल्ली को स्वतन्त्र भारत की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। नई दिल्ली मे राष्ट्रपति भवन और सेक्रेटरियट के भव्य भवन, जन्तर-मन्तर, बिडला मन्दिर हैं, पुरानी दिल्ली मे लाल किले के अतिरिक्त जुम्मा मस्जिद, चाँदनी चौक, कश्मीरी गेट, राजघाट, शान्तिवन और शालीमार इत्यादि देश और विदेशो के यात्रियो की अपार भीड को आकर्षित करते हैं। कुतुबमीनार और हुमायूँ का मकबरा इत्यादि दिल्ली से कुछ दूरी पर स्थित हैं।
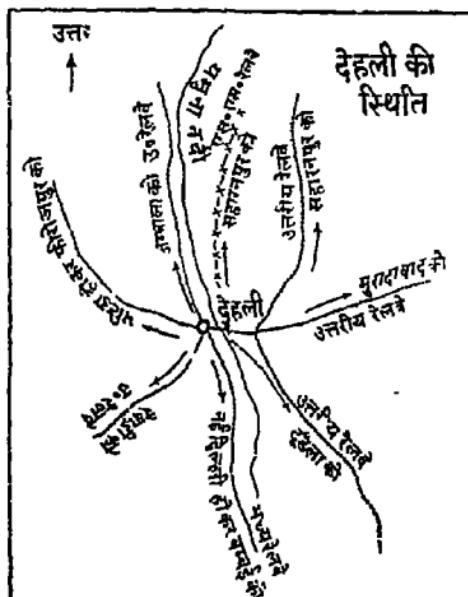
चित्र 42—दिल्ली की स्थिति

दिल्ली के ऐतिहासिक विकास का मुख्य कारण दिल्ली की स्थिति है। दिल्ली की स्थिति केन्द्रवर्ती है। इसकी जलवायु शुष्क और अच्छी है। यमुना के किनारे पर स्थित होने के कारण प्राचीन समय मे कलकत्ता से दिल्ली तक नौकायन हो सकता था। आजकल परिवहन के आधुनिक साधनो द्वारा देश के विभिन्न प्रदेशो से जुडा हुआ है। दिल्ली मे रेलो का मुख्य केन्द्र है और यहाँ से कलकत्ता, बम्बई और मद्रास को सीधी लाइनें जाती हैं। इस प्रकार यह देश के रेल-मार्गों (उत्तरी रेलवे, पश्चिमी रेलवे, मध्य रेलवे इत्यादि),

से जुडा हुआ है। दिल्ली बडी-बडी सडको (Trunk Roads) के द्वारा भी कलकत्ता, बम्बई और मद्रास से जुडा हुआ है। इसके अतिरिक्त दिल्ली (पालम हवाई अड्डा) वायु-मार्ग के द्वारा भी देश के बडे-बडे नगरो और विदेशो से जुड़ा हुआ है। ऑल इण्डिया रेडियो स्टेशन भी यहाँ है।

अपनी जनसख्या, राजनीतिक स्थिति इत्यादि के कारण दिल्ली प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन गया है। सूती, ऊनी और रेशमी माल के वितरण का मुख्य केन्द्र है। यहाँ पर अनेक उद्योगो का भी विकास हुआ है। सोना, चांदी, जवाहरात और नक्काशी के काम के लिए दिल्ली प्रसिद्ध है। हार्डवेयर, बर्तन बनाना और पत्थर का काम उन्नति पर है। दिल्ली अनाज की मण्डी है। दिल्ली मे अनेक नए उद्योग पनप रहे हैं। दिल्ली मे कई गवेषणशालाएँ भी खुली हैं। शिक्षा का केन्द्र है।

कानपुर—उत्तर प्रदेश का औद्योगिक और उन्नतिशील नगर है। यहाँ की जनसख्या 10 लाख के लगभग है। यह उपजाऊ भाग मे स्थित है और परिवहन के साधनो का केन्द्र है। यह नगर गगा नदी के दाईं ओर बसा हुआ है। उत्तरी रेलवे का प्रमुख स्टेशन है। यहाँ उद्योगो के लिए कच्चा माल सुगमता से प्राप्त हो जाता है और रानीगंज की खानो मे कोयला आ जाता है। बिजली भी प्राप्त है; इसीलिए यहाँ कई उद्योग विकसित हुए है। मुख्य रूप से सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र और चमडा इत्यादि उद्योगो की अधिक उन्नति हुई है। यह प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र है। कानपुर मे आवाज से तेज गति के वायुयान बनाने का कारखाना है।
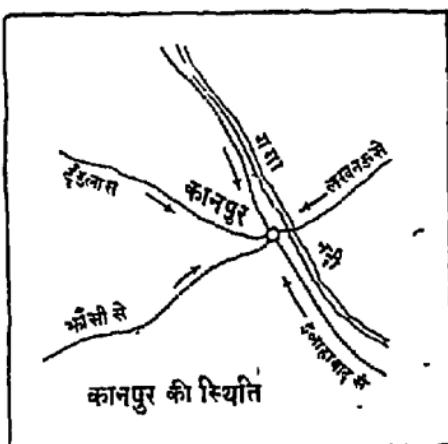
चित्र 43—कानपुर की स्थिति

आगरा—आगरा भी उत्तर प्रदेश का प्रमुख व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र है। यमुना के दायें किनारे पर स्थित है। आगरा की जनसंख्या

5 लाख से अधिक है। मुगल-काल मे बाबर और अकबर की राजधानी रहा। ताजमहल, जुम्मा मस्जिद, एत्मादुद्दौला, सिकन्दरा और कई पार्क देखने योग्य हैं। ताजमहल तो ससार के सात आश्चर्यों में एक है।

आगरा उत्तरी रेलवे, पश्चिमी रेलवे, मध्य रेलवे तथा उत्तरी-पूर्वी रेलवे का प्रमुख स्टेशन है। आगरा मे सात रेलवे स्टेशन हैं। सडको का भी केन्द्र है। आगरा के समीप खेरिया मे हवाई अड्डा है। आगरा उन्नतिशील व्यापारिक केन्द्रो में गिना जाता है। आगरा मे अनेक उद्योगो की उन्नति हुई है। दयालबाग मे आधुनिक ढग पर कई उद्योग चलते हैं। आगरा मे चमड़ा व्यवसाय, फर्नीचर व्यवसाय, दुग्ध व्यवसाय इत्यादि की बहुत उन्नति हुई है। दरी बुनने का काम, सगमरमर और लाल पत्थर का काम, ब्रुश बनाने का काम और पेठा, दालमोठ भी प्रसिद्ध है। पीतल के तार खीचने और वर्तन बनाने का काम भी उन्नति पर है। शिक्षा का केन्द्र है।

चित्र 44—आगरा की स्थिति

लखनऊ—यह नगर गोमती नदी के किनारे पर स्थित है। यह उद्यानो का नगर कहा जाता है। उत्तर प्रदेश की राजधानी है। अवध के नवाबो की भी राजधानी रहा था। मुगलकाल मे सभ्यता का केन्द्र कहा जाता था। यहाँ इमामबाडा, छत्तर मजिल, कैसर बाग महल, मोती महल, वाजिद अली शाह और बेगम की कब्र, जुम्मा मस्जिद, चार बाग, घटाघर, अजायबघर, वेधशाला और कई पार्क देखने योग्य हैं। उत्तरी रेलवे का बहुत बडा जकशन है। लखनऊ का ताँबे और पीतल का काम, मिट्टी के बर्तन, कपडे पर सोने और चाँदी की कढाई का काम, लकडी और हाथी-दाँत पर नक्काशी का काम इत्यादि मशहूर हैं। यहाँ पर कागज की एक मिल भी है।

प्रयाग—इसे इलाहाबाद भी कहते हैं। यह गंगा और यमुना नदी के सगम पर बसा हुआ है। हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान है। इसके समीप ही कोशाम्बी के भग्नावशेष मिले है। किला भी प्रसिद्ध है। हाई कोर्ट और

विश्वविद्यालय है । उत्तरी रेलवे का प्रमुख जंकशन है । समीप ही बमरौली मे हवाई अड्डा है ।

चित्र 45—इलाहाबाद की स्थिति
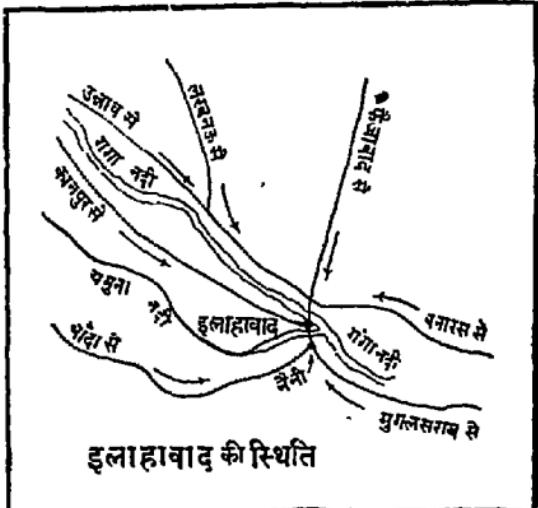
वाराणसी—गंगा के बाएँ किनारे पर स्थित है । हिन्दुओं का तीर्थ स्थान माना जाता है । हिन्दू सभ्यता का केन्द्र रहा है । हिन्दू विश्वविद्यालय प्रसिद्ध है । भारतवर्ष का प्राचीनतम नगर माना जाता है, जिसकी जन-संख्या लगभग पाँच लाख है । बौद्ध सभ्यता का केन्द्र रहा है । सारनाथ, ज्ञानवापी, विक्टोरिया पार्क इत्यादि प्रसिद्ध है । उत्तरी रेलवे की मुगल सराय-सहारनपुर लाइन का जंकशन है । वाराणसी के कई कुटीर उद्योग प्रसिद्ध हैं । मख-मल पर सोने-चाँदी के तार का काम होता है । रेशमी कपड़े बुने जाते हैं । पीतल के वर्तन और कीमखाब का काम भी प्रसिद्ध है ।

चित्र 46 जमशेदपुर की स्थिति

जमशेदपुर—बिहार मे स्वर्ण-रेखा नदी के किनारे पर स्थित है । लोहा
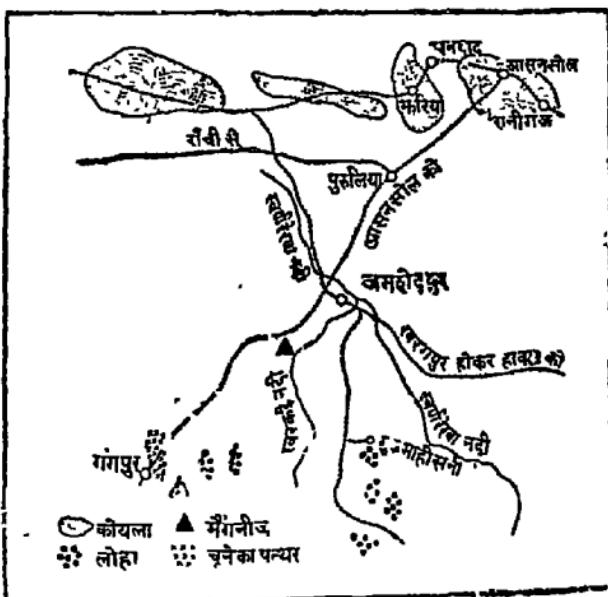
और इस्पात उद्योग का प्रमुख केन्द्र है । यह नगर जमशेद जी नसरवान जी टाटा का बसाया हुआ है और भारतवर्ष की प्रमुख लोहा और इस्पात कम्पनी टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, यहाँ स्थित है । स्वर्णरेखा नदी से इस कम्पनी को स्टील बनाने के लिए पानी मिलता है । गर्मियो मे यह नदी सूख जाती है तब एक दूसरी नदी से पानी लेना पडता है । झरिया के कोयला क्षेत्र भी समीप ही हैं जहाँ से इस कम्पनी को कोयला मिलता है । कच्चे लोहे के क्षेत्र भी 80 किलोमीटर की दूरी पर हैं और कच्चा मैंगनीज, चूने का पत्थर, डोलोमाइट इत्यादि भी समीप ही मिलते है । इन सब पर कम्पनी का अधिकार है । उत्तर-पूर्वी रेलवे से इस माल को ढोने और कच्चा माल लाने का काम हो जाता है ।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना सन् 1908 मे हुई थी और 1911 मे ढला हुआ लोहा बनाया गया था परन्तु अब इस कम्पनी की शक्ति लगभग 15 लाख टन स्टील प्रति वर्ष उत्पादन करने की है । यह स्थान पहले एक छोटा-सा गाँव था । साक्ची का यह छोटा-सा गाँव अब भारतवर्ष का अग्रणी औद्योगिक केन्द्र है और यह जमशेदपुर के नाम से विख्यात है ।

अहमदाबाद—गुजरात राज्य का सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्र है । यह 'भारत का मानचेस्टर, कहलाता है । यह नगर साबरमती के किनारे बसा हुआ है । गुजरात के मध्यवर्ती होने के कारण गुजरात की राजधानी है । विश्वविद्यालय का विकास हुआ है । साबरमती आश्रम प्रसिद्ध है जो महात्मा गाधी का साधन-स्थल माना जाता है । यह नगर कपास उगाने वाले क्षेत्र के मध्य मे स्थित
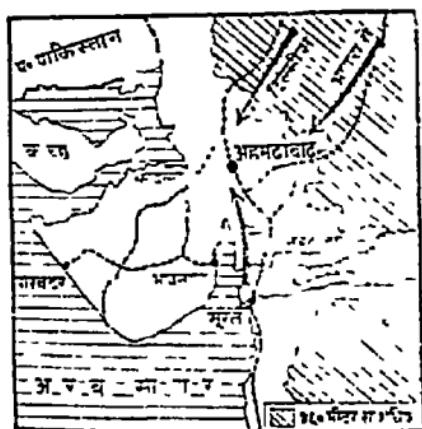
चित्र 47—अहमदाबाद की स्थिति

है और जलवायु तथा अन्य अनुकूल कारणो से यहाँ सूती वस्त्र उद्योग की उन्नति हुई है । अकेले अहमदा-

वाद मे सूती मिलों की संख्या 74 है। चमडा और कागज के उद्योग भी यहाँ उन्नति पर हैं। अहमदावाद की जनसख्या 12 लाख से अधिक है।

जवलपुर--नर्मदा नदी के किनारे पर स्थित है। यहाँ संगमरमर की चट्टानों मे नर्मदा नदी प्रपात वनाती है, जो देखते ही वनता है। यहाँ के लिए कटनी से रेलवे लाइन जाती है। इलाहावाद, नागपुर और विलासपुर भी रेल द्वारा जुड़े हुए हैं। जवलपुर मे वीडी उद्योग उन्नति पर है। खपरैलें और मिट्टी के वर्तन भी वनते हैं। शिक्षा का केन्द्र है।

ग्वालियर—पहले मध्य भारत की राजधानी (ग्रीष्म-काल को छोड़कर) थी। किला, तानसेन की कब्र, चिडियाघर, रानी लक्ष्मीवाई की छतरी दर्शनीय स्थल हैं। मध्य रेलवे वम्वई-दिल्ली की मुख्य शाखा का प्रमुख स्टेशन है। सूती कपडे के मिल हैं। अन्य कई उद्योग भी विकसित हुए हैं, जैसे, काँच, रेयन, पौटरी, विस्कुट, इत्यादि। शिक्षा का केन्द्र है।

इन्दौर—पहले मध्यभारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी। वस्त्र उद्योग
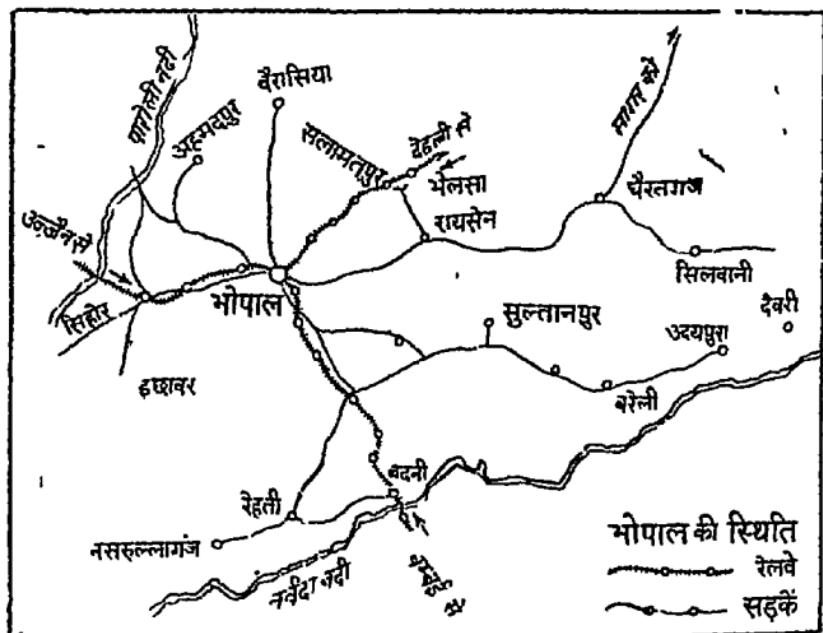
चित्र 48—भोपाल की स्थिति

के लिए प्रसिद्ध है। अजमेर से खडवा जाने वाली रेल लाइन का बडा स्टेशन है। शिक्षा का केन्द्र, प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है।

भोपाल—यह मध्यप्रदेश की वर्तमान राजधानी है। भोपाल पहले भोपाल राज्य की राजधानी था। सन् 1950 से पूर्व भोपाल मामूली-सा नगर था। इस नगर का विकास हाल ही मे हुआ है जिसका मुख्य कारण राजनीतिक और उसकी केन्द्रवर्ती स्थिति है। पिछले कुछ ही वर्षों मे इस नगर मे बहुत इमारतें बनी हैं। अनेक कई शिक्षा-सस्थाएँ तथा अन्य सस्थाएँ खुली हैं। यह नगर दिल्ली से बम्बई जाने वाली रेलवे लाइन का मुख्य स्टेशन है। रेल द्वारा उज्जैन से मिला हुआ है। सडको का केन्द्र है। भोपाल अपने प्राकृतिक दृश्यो के लिए प्रसिद्ध है। भोपाल का तालाब बहुत प्रसिद्ध है। भोपाल झीलो का नगर कहलाता है। इन्ही सब कारणो से भोपाल एक व्यापारिक केन्द्र बन गया है। बिजली के काम आने वाले भारी उपकरणो के निर्माण के लिए यहाँ एक बडा कारखाना है। (देखो चित्र 48)

जयपुर—राजस्थान की वर्तमान राजधानी है। जयपुर नगर सुयोजित ढग पर बसाया गया है। अपनी सुन्दरता के लिए देश भर मे प्रसिद्ध है। यहाँ के राजमहल, वेधशाला, आमेर का किला, हवामहल, रामबाग, गलताजी, चिडियाघर, अजायबघर देखने योग्य हैं। जयपुर नगर की जनसख्या चार लाख से अधिक है। दिल्ली और अहमदाबाद के बीच पश्चिमी रेलवे का प्रसिद्ध स्टेशन है। हवाई अड्डा भी है। जयपुर का बर्तन बनने का काम, पत्थर पर खुदाई का काम, हाथी दाँत और लकडी का काम, पीतल का काम और जवाह-रात का काम प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध है। चमडे के देशी कढ़े हुए जूते भी सुन्दर बनते हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय भी यही पर है। जयपुर मे सूती मिल हैं और बॉल बियरिंग, बिजली के मीटर तथा मकान-निर्माण के लिए लोहे का सामान बनाने का प्रत्येक का एक-एक महत्वपूर्ण कारखाना है।

श्रीनगर—कश्मीर की राजधानी है। झेलम नदी के किनारे पर बसा है। पंजाब से मध्य एशिया को जाने वाले मार्ग मे घाटी मे स्थित है। उदयपुर के समान, बल्कि उससे बढकर, श्रीनगर अपनी झीलो के लिये प्रसिद्ध है। समुद्र-तल से लगभग 1,500 मीटर की ऊँचाई पर बसा है। एक विश्वविद्यालय यहाँ है। नावो पर बने हुये घर सुन्दर और आश्चर्यजनक लगते हैं। मुगल-कालीन कई बाग प्रसिद्ध हैं। डल, बुलर इत्यादि झीलें प्रसिद्ध है। यहाँ के लोग

झीलो में तैरते हुए तख्तो पर मिट्टी डालकर उन पर फल, तरकारियाँ और अनाज उगाते हैं। जाडा अधिक पडने से यहाँ के लोग बहुत कम नहाते हैं और घरो में रहकर ही काम करना पसन्द करते हैं। इसलिये यहाँ की घरेलू कारीगरी मशहूर है। यहाँ के शाल-दुशाले ससार प्रसिद्ध हैं। रेशम का काम भी होता है। एक बडा कारखाना है।

अजमेर—राज्य पुनर्गठन के पूर्व अजमेर राज्य की राजधानी था। पश्चिमी रेलवे का वृहद् कारखाना है। यह स्थान हिन्दू, मुस्लिम और जैन धर्मों का
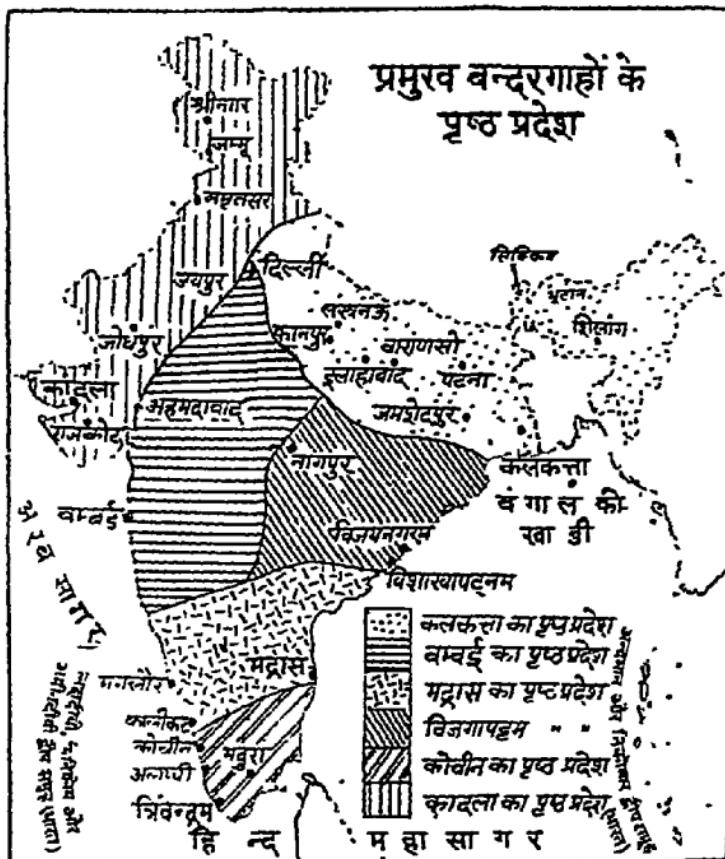
चित्र 49—भारत के मुख्य बन्दरगाहों के पृष्ठ-प्रदेश

केन्द्र है। पुष्कर झील, जो अत्यन्त पवित्र समझी जाती हैं, यहाँ से 11 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। पश्चिमी रेलवे के मीटर गेज पर स्टेशन है। यहाँ से एक लाइन खडवा को भी जाती है। यहाँ की जनसख्या लगभग 231 हजार है।

भारतवर्ष के छः बड़े बन्दरगाह

भारतवर्ष मे छः बडे बन्दरगाह हैं, 18 माध्यमिक बन्दरगाह, तथा 116 छोटे बन्दरगाह हैं। ऐसे बन्दरगाह को बडा बन्दरगाह (Major port) कहते हैं जिसमें चार हजार या अधिक टन भार का महासागरीय जहाज आता हो
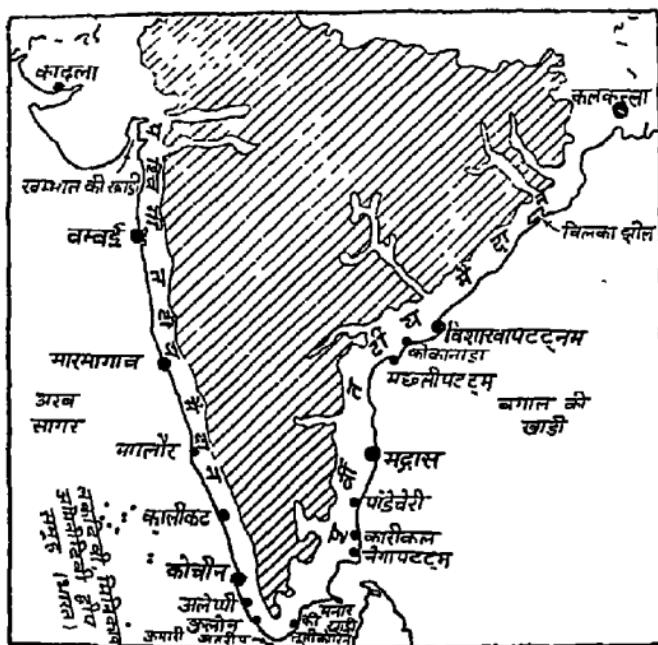
चित्र 50—भारत के प्रमुख बन्दरगाह

और ठहराया जा सके। भारतवर्ष के छः बडे बन्दरगाह ये है—बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, काँदला, मद्रास और विशाखापट्टनम्।

भारतवर्ष के कुल विदेशी व्यापार का 90 प्रतिशत से अधिक छ बडे बन्दरगाहों से होता है। इन छ बन्दरगाहो के पृष्ठ-प्रदेश समूचे देश को घेरते हैं।

भारतवर्ष जैसे विशाल देश के लिए लगभग 5,700 किलोमीटर लम्बे समुद्र-तट मे भी कटा-फटा समुद्र-तट बहुत ही कम है। यही कारण है कि देश मे अच्छे बन्दरगाह कम हैं। पश्चिमी तट पक्की चट्टानो से निर्मित अवश्य है और समुद्र गहरा भी है परन्तु दक्षिण की ओर कोई अच्छे बन्दरगाह नही हैं। बम्बई और मारमगाव दो ही प्राकृतिक बन्दरगाह हैं। पूर्वी तट के समीप समुद्र उथला है और किनारा भी पक्का नही है। मद्रास और विशाखापट्टनम पूर्णतया कृत्रिम बन्दरगाह है। यदि हम पश्चिम से पूर्व की ओर किनारे-किनारे चलें तो भारतवर्ष के मुख्य बन्दरगाह ये पड़ेगे –

माण्डवी, कांदला, वेदी, ओखा, पोरबन्दर, वेरावल, भावनगर, बम्बई, रत्नागिरि, मारमागाव, करवर, मगलोर, कोजीकोड, कोचीन, अलप्पी, तूतीकोरन, धनुषकोटि, नागापट्टन, कुड्डालोर, मद्रास, पाडिचेरी, मछलीपट्टन काकीनाडा, विशाखापट्टनम और कलकत्ता।

विभाजन के पश्चात करांची बन्दरगाह के पाकिस्तान मे चले जाने के कारण पश्चिम मे एक बन्दरगाह की कमी थी जो कांदला बन्दरगाह की स्थापना करके पूरी की गई।

बम्बई—पश्चिमी तट पर स्थित भारतवर्ष का प्रमुख प्राकृतिक बन्दरगाह है। यह बन्दरगाह 194 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र मे फैला हुआ है। इसका विकास सन् 1669 के पश्चात् भली प्रकार हुआ है। इसके उत्तर और पूर्व मे देश का मुख्य स्थलीय भाग है और पश्चिम मे एक सँकरा प्रायद्वीप है; इसलिए

चित्र 51—बम्बई की स्थिति

जहाजों के लिए पूरे वर्ष खड़े होने के लिए सुरक्षित जगह है। इस स्थान पर समुद्र 19·3 कि० मी० लम्बा, 6 से 10 कि० मी० तक चौडा और 9 5 मीटर

से अधिक गहरा है। यात्रियो के लिए पर्याप्त सुविधाएँ हैं। सन् 1961-62 मे यहाँ से जाने और आने वाले यात्रियो की सख्या 860 हजार के लगभग थी। बडे बड़े तीन जल घाट और दो शुष्क घाट (Docks) हैं। बम्बई बन्दरगाह की अपनी रेलवे है जिसकी लम्बाई यद्यपि कुल 12 कि० मी० है परन्तु साल मे लगभग 20 लाख टन माल ढोती है।

सन् 1959-60 मे 3,051 जहाजो ने घाटो मे प्रवेश लिया (टन भार 183·36 लाख)।

बम्बई का पृष्ठ-प्रदेश दिल्ली, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, राजस्थान के पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश के पश्चिमी भाग तक फैला हुआ है। बम्बई का पृष्ठ-प्रदेश कपास और मैंगनीज मे बहुत धनी है। बम्बई बन्दरगाह से निर्यात होने वाले पदार्थों मे मुख्य कपास, सूत, सूती माल, मैंगनीज, तिलहन, नारियल और ऊन तथा ऊनी सामान हैं। आयात होने वाले पदार्थों मे मुख्य खाद्यान्न, शराब, सिगरेट, तेल, मशीनरी, कागज, रंग इत्यादि हैं। इस प्रकार कुल देश का लगभग ⅓ व्यापार इसी बन्दरगाह से होता है। यह बन्दरगाह अपने पृष्ठ-प्रदेश से मध्य रेलवे, पश्चिमी रेलवे तथा अन्य रेलमार्गों से जुडा हुआ है। मुख्य हवाई अड्डा भी है।
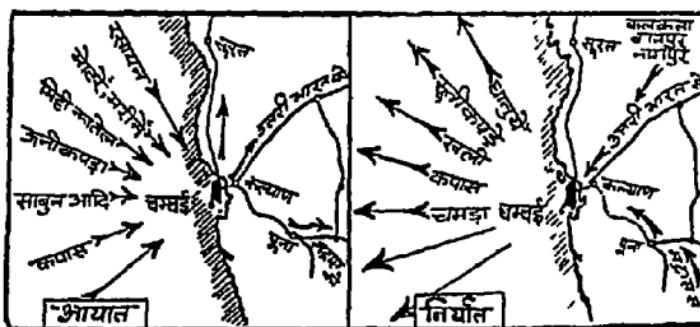
चित्र 52—बम्बई से आयात-निर्यात

बम्बई भारतवर्ष का दूसरे नम्बर का नगर है और भारतवर्ष का प्रमुख द्वार कहा जाता है। बम्बई की जनसख्या 41 लाख से अधिक है। बम्बई एक प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। सूती वस्त्र उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। अनेकों

अन्य उद्योग विकसित हुए हैं। बैंकिंग और बीमा व्यवसाय का अत्यधिक विकास हुआ है। बम्बई के अनेक स्थल और इमारतें देखने योग्य हैं।

कलकत्ता—कलकत्ता देश का दूसरा बड़ा बन्दरगाह है। यह बन्दरगाह गंगा नदी की शाखा हुगली के बाएँ किनारे पर स्थित है। बंगाल की खाड़ी और नदी के मुहाने से 135 कि० मी० की दूरी पर है। कलकत्ता का पृष्ठ प्रदेश असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा के भागो तक फैला हुआ है। कलकत्ता अपने पृष्ठ-प्रदेश से नदियों के जलमार्गों और सड़कों से मिला हुआ है।

चित्र 53—कलकत्ता का पृष्ठ-प्रदेश एवं स्थिति
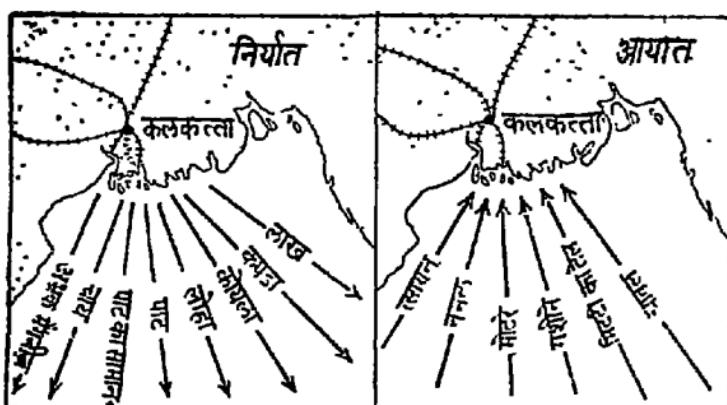
कलकत्ता बन्दरगाह से होने वाले प्रमुख निर्यात कोयला, चाय, पटसन का सामान, हड्डी, लोहा-इस्पात की वस्तुएँ, लाख, खनिज पदार्थ इत्यादि हैं।

चित्र 54—कलकत्ता से आयात-निर्यात

मुख्य आयात नमक, खाद्यान्न, आटा, गंधक, टिनप्लेट, मशीनरी, पैट्रोलियम, लोहा, इस्पात, अन्य धातुएँ, सीमेंट, सोडा, इमारती लकड़ी, उर्वरक तेल, इमारती सामान, रासायनिक पदार्थ इत्यादि है।

कलकत्ता बन्दरगाह की दो कठिनाइयाँ ये हैं कि हुगली नदी में कीचड़ हो जाती है और उसे निकालने में काफी व्यय होता है और दूसरे इसमें बड़े-बड़े ज्वार आया करते हैं। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए गवेषणा कार्य किया गया और उनमें सफलता मिली है।

कलकत्ता बन्दरगाह को प्राप्त सुविधाएँ ये हैं कि इसका पृष्ठ-प्रदेश बहुत धनी है और समीप ही कोयला के अच्छे क्षेत्र हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्र के जल-मार्ग भी माल ढोने के लिए सस्ते पड़ते हैं। युद्धोत्तर काल में कलकत्ता बन्दरगाह का काफी विकास हुआ है। 300 कि० मी० लम्बी पोर्ट ट्रस्ट रेलवे बन्दरगाह के व्यापार में और भी अधिक सहायक है। देश का सबसे अधिक विदेशी व्यापार इसी बन्दरगाह से होता है।

बन्दरगाह के विकास के प्रमुख कारणों में से एक यह है कि सन् 1912
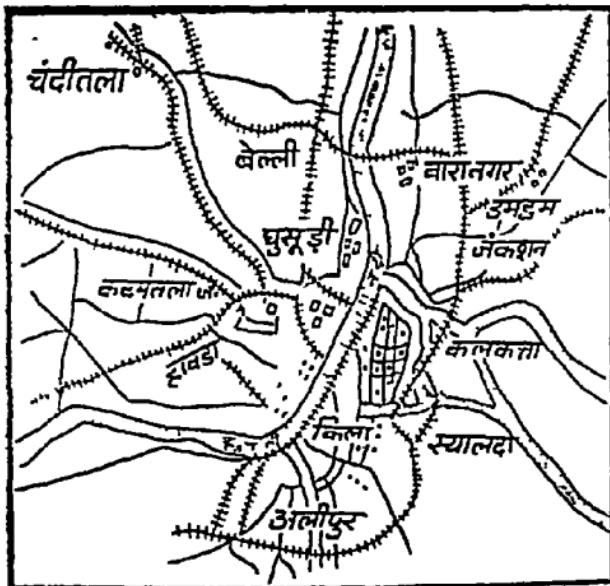
चित्र 55—कलकत्ता की स्थिति

तक कलकत्ता ब्रिटिश सरकार का हेडक्वार्टर रहा। दूसरे, परिवहन की ऊपर

बताई गई सुविधाएँ थी। तीसरे यह देश का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। जूट, चाय, चमडा, कोयला और लाख उद्योगो का केन्द्र है। कागज उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, दियासलाई उद्योग, लोहा और इस्पात के उद्योग का भी विकास हुआ है। शिक्षा और व्यापार का केन्द्र है। यहाँ के कई स्थान और इमारतें भी प्रसिद्ध हैं। कलकत्ते की जनसख्या 29 लाख से अधिक है।

कलकत्ता बन्दरगाह की रक्षा के लिए तीसरी योजना के अन्तर्गत कार्यक्रम मे दो मुख्य बातें हैं—

(1) **हल्दिया पर एक सहायक बन्दरगाह का निर्माण**—यह एक नया सहायक बन्दरगाह हुगली धारा के नीचे की ओर लगभग 90 कि॰ मी॰ की दूरी पर होगा। यहाँ से कोयला, कच्चा लोहा, खाद्यान्न इत्यादि का काफी व्यापार हो जाया करेगा परन्तु कलकत्ता का महत्व कम नही होगा। हल्दिया बन्दरगाह को कलकत्ता से खडगपुर तक की मेनलाइन रेलवे से जोडा जाएगा।

(2) **फरक्का स्थान पर गगा नदी पर एक बांध (बैरेज) का निर्माण**—हुगली नदी को साफ रखने तथा कलकत्ता बन्दरगाह की रक्षा के लिए यह आवश्यक समझा गया है।

कोचीन—पश्चिमी तट प्रमुख और प्राकृतिक बन्दरगाह है। यूरोप से आस्ट्रेलिया और सुदूर पूर्व के देशो के मार्ग मे पडता है। इसका महत्व इसलिए भी अधिक है कि खराब से खराब मौसम मे भी यहाँ जहाज आ-जा सकते हैं। स्वेज नहर से भी पास पडता है। इसके अतिरिक्त इसका पृष्ठ-प्रदेश अधिकाश दक्षिणी भारत है यह विशेषत: केरल और मद्रास राज्यो का प्रमुख बन्दरगाह है। यह बन्दरगाह अपने पृष्ठ-प्रदेश से दक्षिण रेलवे से मिला हुआ है। भीतर जाने के लिए जल-मार्ग भी हैं। पहले बीच में जमीन की एक पट्टी थी जिसे काट दिया गया है।

चित्र 56—कोचीन की स्थिति

यह विकास कार्य सन् 1928 मे हुआ था। बन्दरगाह का अधिकतर कार्य वैलिंगडन द्वीप से होता है। यहाँ यात्रियो की सुविधाओ का विशेष प्रबन्ध है।

मुख्य आयात खाद्यान्न, तेल, रसायन, खाद, कपास, मशीनें, लोहे का सामान, धातुएँ इत्यादि है। निर्यात होने वाले पदार्थों मे चाय, रबड, अदरक, कालीमिर्च, मसाले, काजू, नारियल के रेशे का सामान, नारियल का तेल, इमारती लकडी, इत्यादि हैं।

मद्रास—मद्रास भारतवर्ष का तीसरा बडा नगर माना जाता है। यह कलकत्ता या बम्बई का मुकाबला नही कर सकता। यह पहली जगह है जहाँ ठहरकर अंग्रेजो ने व्यापार आरम्भ किया था। यह मद्रास राज्य की राजधानी और सर्वप्रमुख बन्दरगाह है। यहाँ की जनसख्या 17 लाख 29 हजार के लगभग है। यह औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र भी है, परन्तु कलकत्ता या बम्बई की समानता का नही। सूती वस्त्र, और चमडा उद्योग यहाँ के मुख्य उद्योग हैं।

मद्रास का बन्दरगाह कृत्रिम है। किनारा रेतीला और उथला है, जहाँ दो बडी-बडी दीवारें बनाई गई है। समुद्र की गहराई 8 मीटर से $9\frac{1}{2}$ मीटर तक के लगभग है। मद्रास का पृष्ठ-प्रदेश भी बहुत घनी नही है। देश के कुल विदेशी व्यापार का पाँच प्रतिशत व्यापार ही यहाँ से होता है। मद्रास का पृष्ठ-प्रदेश दक्षिण-पूर्वी भारत मे फैला हुआ है। अपने पृष्ठ-प्रदेश से मद्रास दक्षिणी रेलवे की कई लाइनो से मिला हुआ है जो कलकत्ता विवलोन, बम्बई, मरमगाव को चीन और कोजीकोड तक जाती हैं। मद्रास के पीछे बकिंघम नहर

चित्र 57—मद्रास की स्थिति

भी है जो विजयवाडा से मिलती है। दक्षिण के कई वन्दरगाह मद्रास से स्पर्धा लेते हैं।
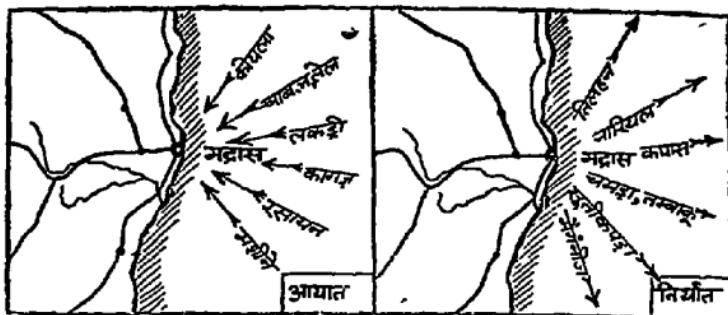
चित्र 58—मद्रास बन्दरगाह से प्रमुख आयात-निर्यात

मद्रास बन्दरगाह से होने वाले मुख्य आयात कोयला, कोक, खाद्यान्न, खनिज तेल, धातुएँ, इमारती लकडी, वस्त्र, मशीनरी, लोहे का सामान, खालें, कागज, रंग पदार्थ, रासायनिक खाद, कपास, रासायनिक पदार्थ, इत्यादि हैं।

प्रमुख निर्यात कच्ची धातुएँ, कपड़ा, कच्ची और कमाई हुई खालें, सूत, अभ्रक, मूँगफली का तेल है।

विशाखापट्टनम्—इस बन्दरगाह का काम सन् 1933 मे आरम्भ हुआ था। यह वन्दरगाह पूर्वी तट कोरोमण्डल तट पर स्थित है परन्तु इसके पृष्ठ-प्रदेश का पूर्वी भाग उड़ीसा इत्यादि के क्षेत्रो तक ही है, मध्य प्रदेश के क्षेत्रो से यह पूर्वी रेलवे से जुडा हुआ है।

आयात मुख्यत: अनाज, लकडी, मशीनरी, कपास, तैयार लोहा और पैट्रोल के सामान हैं। निर्यात् होने वाले पदार्थो मे मैग-

चित्र 59—विशाखापट्टनम की स्थिति
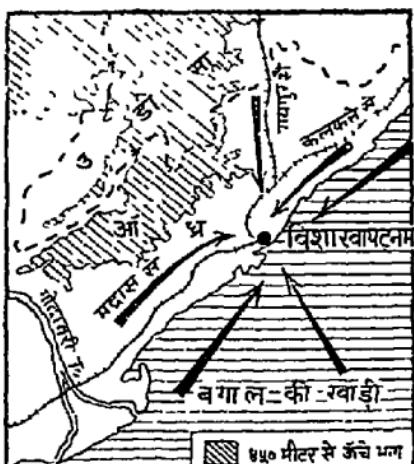
बीज, चमड़ा, और खालें, चमड़ा कमाने का सामान, तिलहन इत्यादि मुख्य है। हाल ही मे इसका और भी विकास हुआ है।

विशाखापट्टनम बन्दरगाह से लोहा, इस्पात के सामान, कच्चा लोहा, मिट्टी का तेल, बीज, पटसन, बोरे और कच्चे तम्बाकू के निर्यात् मे वृद्धि हुई है।

सन् 1941 मे जहाज बनाने के लिए एक यार्ड खोला गया। इस यार्ड के द्वारा पहला जहाज 14 मार्च, 1948 को बनकर तैयार हुआ जिसका उद्घाटन स्वर्गीय प० जवाहरलाल नेहरू ने किया था। तब से सरकारी सहायता और विकास योजना के अन्तर्गत यहाँ और भी प्रगति हुई है।

कांदला– विभाजन के पश्चात् करांची के पाकिस्तान मे चले जाने पर भारतवर्ष के पश्चिमी तट पर गुजरात राजस्थान और पूर्वी पजाब इत्यादि के क्षेत्रो के लिए एक बन्दरगाह की आवश्यकता खटकने वाली थी। करांची से बम्बई तक का फासला लगभग 1,600 किलोमीटर था जिसमे कोई अच्छा बन्दरगाह नही था। भारतवर्ष के केन्द्रीय सरकार ने कांदला बन्दरगाह की स्थापना करके इसी कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया है। इसका उद्घाटन सन् 1951 मे स्वर्गीय प० जवाहरलाल नेहरू ने किया था वैसे सन् 1931 से ही यातायात होता था।

कांदला की स्थिति महत्वपूर्ण है। यह बन्दरगाह कच्छ की खाड़ी मे माण्डवी से आगे है। बन्दरगाह सुरक्षित है। समुद्र की गहराई 9 मीटर के लगभग है और जहाज सुगमतापूर्वक आते जाते है। देहली और पूर्वी पजाब के क्षेत्र करांची की अपेक्षा कांदला के अधिक समीप पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त कांदला के इस पृष्ठ-प्रदेश मे औद्योगिक और खनिज उत्पादन के विकास का काफी क्षेत्र है। परन्तु कांदला को भीतरी क्षेत्रो से जोड़ने के लिए रेल-मार्गों और परिवहन के साधनो की आवश्यकता है। सरकार ने इस ओर उचित ध्यान दिया है। कांदला से सन 1955-56 मे आयात लगभग 108 हजार मैट्रिक टन और निर्यात 105 हजार मैट्रिक टन हुए। कुल व्यापार 313 हजार मैट्रिक टन हुआ।

सन् 1959-60 मे कांदला बन्दरगाह से आयात 828 हजार टन और निर्यात 3 लाख टन हुए; 15 लाख से अधिक टन भार के 244 जहाजो ने प्रवेश किया था। कांदला बन्दरगाह से 18 लाख टन वार्षिक व्यापार हो सकता है।

भारत सरकार ने काँदला मे स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र स्थापित करने का निश्चय किया है। राजस्थान नहर द्वारा काँदला तक जल-परिवहन की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रस्ताव भी है।

अन्य बन्दरगाह

ओखा – कच्छ की खाडी मे स्थित है। इस वन्दरगाह के विकास का भी काफी क्षेत्र है। इस वन्दरगाह के मुख्य आयात लोहा, लोहे का सामान, मशीनरी शक्कर, साबुन, इत्र तेल, खजूर, काँच का सामान, कोयला पेट्रोलियम और खाद्यान्न इत्यादि हैं। निर्यात में नमक सीमेण्ट और रासायनिक पदार्थ मुख्य हैं।

तूतीकोरन दक्षिणी भारत का प्रमुख वन्दरगाह है। कोरोमण्डल तट के दक्षिण मे स्थित है। व्यापार की दृष्टि मे मद्रास और कोचीन के बाद इसी की गणना की जाती है। यह वन्दरगाह बारहो महीने खुला रहता है। दक्षिणी रेलवे द्वारा भीतरी क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। छोटे वन्दरगाहो मे इसका पहला स्थान है।

मुख्य आयात खाद्यान्न, कोयला, कपास, मशीनरी, नारियल और लकड़ी इत्यादि हैं। निर्यात् होने वाले पदार्थों मे, मुख्य सूत, सूती कपड़ा, कपास, नमक, मछली, भेड़े, मिर्च, प्याज इत्यादि हैं।

संक्षेप

वस्तुओ के एकत्रीकरण, वितरण और विनिमय के केन्द्रों को व्यापारिक केन्द्र कहते है। नगरो का विकास द्रव्य के प्रचलन के पश्चात अधिक हुआ। नगरो के विकास के कई कारण है जिनमे स्थिति राजनैतिक और ऐतिहासिक कारण; प्राकृतिक सम्पत्ति, शक्ति के साधन, परिवहन के साधनों का विकास, शिक्षा का विकास: स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु और धार्मिक कारण मुख्य हैं।

उद्योग के स्थानीयकरण में सहायक दशाओ के कारण औद्योगिक केन्द्रों का विकास होता है। भारतवर्ष में मुख्य औद्योगिक केन्द्र कलकत्ता, वम्बई, जमशेदपुर, कानपुर, अहमदावाद, मद्रास, दिल्ली, सूरत, आगरा इत्यादि हैं।

वन्दरगाह समुद्रों मे होकर विदेशों के लिए आने-जाने का मार्ग बनाते हैं। वन्दरगाहो का महत्व उनकी स्थिति और पृष्ठ-प्रदेशों

के ऊपर निर्भर होता है। अच्छे बन्दरगाह के लिए सुरक्षित, गहरा और चौड़ा, कटा-फटा, पक्का किनारा, अनुकूल जलवायु, भीतरी परिवहन के साधन, समुचित स्थान और धनी पृष्ठ-प्रदेश होने आवश्यक है। पृष्ठ-प्रदेशों का महत्व उपभोग और उत्पादन अर्थात् आयात और निर्यात दोनों दृष्टियों से है।

भारतवर्ष के छः बड़े बन्दरगाह—बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, मद्रास, विशाखापट्टनम और काँदला हैं। काँदला का विकास कराँची की कमी को पूरा करने के लिये किया गया है। हाल ही में बन्दरगाहों का काफी विकास किया गया है।

प्रश्न

1. भारतवर्ष का एक मानचित्र खींचकर उसमें मुख्य बन्दरगाह और उनके पृष्ठ-प्रदेश दिखाइये। नये बन्दरगाहों की स्थिति और वे क्षेत्र भी दिखाइये जिनको उनसे लाभ होगा।
2. उन परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिये जिनके कारण बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद और जयपुर का विकास हुआ है।
3. किसी बन्दरगाह के 'पृष्ठ-प्रदेश' से आप क्या समझते हैं? कलकत्ता और बम्बई के पृष्ठ-प्रदेशों के ऊपर कुछ प्रकाश डालिए।
4. एक व्यापारिक केन्द्र और औद्योगिक केन्द्र में क्या अन्तर है? औद्योगिक केन्द्र के विकास पर किन भौगोलिक अंगों का प्रभाव पड़ता है? उपयुक्त उदाहरण दीजिये।
5. निम्नलिखित के विकास के कारण समझाइए—
   दिल्ली, जमशेदपुर, भोपाल और बंगलौर।
6. विवेचन कीजिये—
   'काँदला की स्थिति बड़े बन्दरगाह के रूप में विकसित होने के लिये आदर्श है।'
7. व्यापारिक केन्द्र किसे कहते हैं? भारतवर्ष के तीन उदाहरण देते हुए इसके विकास के लिए आवश्यक अंगों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालिये।
8. नगरों व बन्दरगाहों की उत्पत्ति किसी स्थान पर यकायक नहीं हो जाती। इनमें से हर एक की उन्नति के लिये भौगोलिक परिस्थितियों का आधार मिलना आवश्यक है। इस कथन को स्पष्ट करो और उदाहरण देते हुए वर्णन करो कि भारतवर्ष के नगरों व बन्दरगाहों की उन्नति किन-किन भौगोलिक बातों पर निर्भर है?

अध्याय 18

जनसंख्या

(Population)

जनसंख्या के अध्ययन का महत्व—देश के प्राकृतिक साधनो का उपयोग किस सीमा तक हो सकता है, यह बहुत कुछ जनसख्या तथा उसकी किस्म (Quality) और देश के विभिन्न भागो मे उसके वितरण (सघनता) पर भी निर्भर है। यदि देश की जनसख्या मे चरित्र-बल और साहस की कमी नही है और विभिन्न क्षेत्रो मे जनसख्या की कमी अथवा अधिकता नही है (अर्थात् वितरण उचित है) तो देश की औद्योगिक उन्नति शीघ्र हो सकती है अन्यथा नही।

रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनो देशो की जनसंख्या के योग से भी भारतवर्ष की जनसख्या अधिक है।

सन् 1961 मे भारत की जनसख्या ससार की जनसख्या की लगभग 14 6 प्रतिशत थी।

1 मार्च, 1961 को भारतवर्ष की जनसख्या लगभग 43 करोड 91 लाख थी। सन् 1951 की जनगणना के पश्चात एक दशक मे हुई वृद्धि 21 50 प्रतिशत है। सन् 1951 मे भारत की जनसख्या 36 करोड 11 लाख थी।

सन् 1941-51 दशक की तुलना मे 1851-61 दशक की जनसख्या से वृद्धि की दर 61 प्रतिशत अधिक रही। पजाब, उडीसा, मध्यप्रदेश, प० बंगाल, बिहार, असम और राजस्थान राज्यो की जनसख्या की वृद्धि की दर सम्पूर्ण भारतवर्ष की जनसख्या-वृद्धि की दर से भी अधिक है।

सबसे अधिक जनसख्या वाले देशो मे भारतवर्ष का दूसरा स्थान है। उत्तर प्रदेश की जनसख्या भारतवर्ष मे सबसे अधिक है, बिहार का दूसरा स्थान है। अन्य अधिक जनसख्या वाले क्षेत्रो मे महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और पश्चिमी बगाल हैं।

जनसंख्या की सघनता

जनसख्या की सघनता से क्या अभिप्राय है ?— किसी क्षेत्र की जनसख्या मे क्षेत्रफल का भाग देकर औसत निकाल लें अर्थात् यह ज्ञात करें कि वहाँ क्षेत्रफल की एक इकाई मे कितने व्यक्ति रहते हैं तो यह वहाँ की जनसख्या की सघनता कहलाती है। भारत मे सन् 1961 की जनगणना के अनुसार जन-संख्या की सघनता लगभग 148 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जबकि पूरे ससार मे जनसख्या की औसत सघनता 22 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

केरल और पश्चिमी वगाल राज्यो मे जनसख्या की सघनता 390 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है।

असम, गुजरात, मध्य प्रदेश, उडीसा राजस्थान राज्यो मे तथा हिमाचल प्रदेश और त्रिपुरा केन्द्र-प्रशासित प्रदेशो मे प्रति वर्ग किलोमीटर सघनता 116 से कम थी।

सन् 1961 की जनगणना के अनुसार औसत सघनता के आधार पर राज्यो और केन्द्र प्रशासित प्रदेशो को चार भागो मे बाँटा जा सकता है—

1. **प्रति वर्ग किलोमीटर 100 व्यक्ति से कम सघनता के क्षेत्र—**
   असम, जम्मू-कश्मीर, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर तथा अण्डमान-निकोवार द्वीप समूह।
2. **प्रति वर्ग किलोमीटर 100 से 199 व्यक्ति—**
   आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, उडीसा, पजाव, त्रिपुरा।
3. **प्रति वर्ग किलोमीटर 200 से 399 व्यक्ति—**
   विहार, मद्रास, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी वगाल।
4. **प्रति वर्ग किलोमीटर 400 से अधिक व्यक्ति—**
   केरल, दिल्ली, तथा लक्कादीव, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप समूह।

सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तर प्रदेश है। यद्यपि क्षेत्रफल की दृष्टि से उत्तर प्रदेश चौथा राज्य है परन्तु उसके निवासियो की सख्या भारत मे सव राज्यो से अधिक, 7 40 करोड़ के लगभग है। 465 लाख जनसख्या वाला राज्य विहार इस दृष्टि से दूसरा राज्य है।

जनसख्या की **सबसे कम सघनता** राज्यो मे राजस्थान की है जहाँ औसत घनत्व 60 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से कम है। जम्मू कश्मीर राज्य की

सघनता के सही आँकड़े अप्राप्य हैं। संघ-प्रदेश अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह मे सघनता 8 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

सघनता का यह नाप भूमि के क्षेत्रफल और जनसंख्या का अनुपात है। यदि कृषि योग्य भूमि और प्राकृतिक साधनो (खनिज इत्यादि के अनुपात मे जनसख्या के घनत्व का नाप किया जाय तो जनसख्या के वितरण का अध्ययन अधिक उपयोगी हो सकता है।

जनसख्या की सघनता पर प्रभाव डालने वाली दशाएँ

यदि हम जनसख्या की सघनता के अन्तर के कारणो का अध्ययन करें तो कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित ज्ञात होंगे—

(1) जलवायु - जलवायु का जनसख्या की सघनता पर अत्यधिक प्रभाव पडता है। यह प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो ही प्रकार देखा जा सकता है।

(अ) विषम तापमान—अधिक ठडे अथवा अधिक गर्म प्रदेशो मे जनसख्या की सघनता प्राय: कम होती है। राजस्थान के पश्चिमी भाग मे जहाँ गर्मी बहुत पड़ती है, जनसख्या कम है।

(आ) वर्षा—वर्षा का भी काफी प्रभाव पडा है। कहा गया है, "मानसून प्रदेशो से सबस अधिक घने बसे हुए क्षेत्र और सबसे अधिक वर्षा पाने वाले क्षेत्र प्राय: एक ही हैं।"

पूर्णतया तो नही, परन्तु यह कथन कुछ अशो तक सही है। भारतवर्ष मे जब सिचाई के साधनो का विकास नही हुआ था उस समय तक वर्षा का जनसख्या के वितरण पर अत्यधिक प्रभाव देखा जा सकता था क्योकि कृषि मुख्य धन्धा था और वह मुख्यतया वर्षा पर निर्भर था। केवल प० बगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश इत्यादि राज्यो में जहाँ वर्षा अच्छी होती है जनसख्या की सघनता भी अधिक है। दूसरी ओर देश के उन भागों में जहाँ वर्षा कम होती है या बहुत अनिश्चित है जनसख्या की सघनता प्राय कम है, जैसे, राजस्थान और मध्य प्रदेश इत्यादि के कुछ भागो मे।

(इ) जनसख्या के वितरण पर वर्षा के प्रभाव का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी यह उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष मे कुछ ऐसे प्रदेश भी हैं जहाँ वर्षा अधिक होने पर भी जनसख्या की सघनता कम है, जैसे, असमान धरातल के कारण असम राज्य के कुछ भागो मे, और अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण

तराई प्रदेश के कुछ क्षेत्र मे। कुछ प्रदेश ऐसे है जहाँ वर्षा कम होती है परन्तु सिंचाई के साधनो के विकास के कारण जनसख्या की सघनता बढी है, जैसे पजाब मे। राजस्थान मे भी सिंचाई के साधनो के विकास के साथ मरुस्थलीय प्रदेश मे आबादी की सघनता बढ़ेगी। खनिज क्षेत्रो मे तथा खनिज पर निर्भर उद्योगो के क्षेत्रो मे भी जनसख्या की सघनता वर्षा पर निर्भर नहो है।
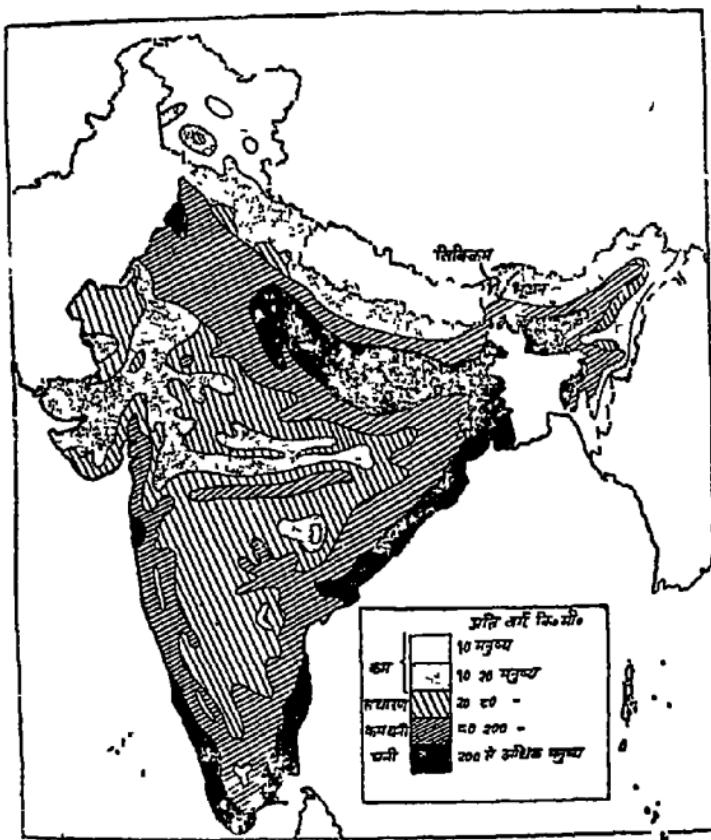
चित्र 60—भारत में जनसंख्या की सघनता

(ई) स्वास्थ्यप्रद जलवायु—स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु के स्थानो मे अस्वास्थ्यकर जलवायु के स्थानो की अपेक्षा अधिक घनी सख्या होती है। यही

कारण है कि अधिक वर्षा होने पर भी असम उजड़ा बसा हुआ है। असम राज्य की भूमि भी पूरी कृषि के योग्य नहीं है।

(2) **भूमि का उपजाऊ होना**—पश्चिमी बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और दिल्ली तथा पजाब की भूमि उपजाऊ और कृषि योग्य होने के कारण इन राज्यो मे जनसख्या घनी है। सिंचाई के साधन न मिलने के कारण राजस्थान जैसे प्रदेशो मे पैदावार ठीक न हो सकने के कारण ये भाग उजडे बसे हुए हैं; विशेषत इसलिए कि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है और कृषि का जनसख्या के ऊपर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पडा है।

(3) **भूमि की बनावट**—पहाडों पर आबादी प्रायः बहुत कम होती है क्योंकि वहाँ जीवन कठिन होता है और कृषि, उद्योग, व्यापार तथा परिवहन का विकास नही हो पाता। नदियाँ भी तेज बहने वाली होती हैं जिनमे नावें नही चल पाती। पठारी भागों मे भी जनसंख्या की सघनता प्रायः कम होती है, परन्तु मैदानो में जनसख्या घनी बसी होती है। यही कारण है कि भारतवर्ष मे असम, मध्य प्रदेश तथा अन्य पहाड़ी और पठारी प्रदेशों में जनसख्या की सघनता कम है और मैदानो मे अधिक है।

(4) **नदियो की किस्म (Hydrography)**—नदियो का जनसख्या के वितरण पर अनुकूल और प्रतिकूल दोनो प्रकार का प्रभाव पड़ा है। नदियो के किनारे अधिक जनसख्या पाये जाने के मुख्य कारण हैं—(क) पीने के लिए और उद्योगों के विकास के लिए जल की प्राप्ति, (ख) परिवहन, तथा (ग) नदियो की घाटियो मे उपजाऊ भूमि का होना।

इसके विरुद्ध जिन नदियो मे बाढ़ें अधिक आती हैं उनके किनारे जनसंख्या के निवास में (पर्वतो और जगलो की तरह ही) बाधा होती है।

(5) **परिवहन का विकास**—परिवहन के विकास के द्वारा जनसख्या गतिशील होने लगी है। कई ऐसे स्थान, जहाँ परिवहन का अधिक विकास हुआ है, आवागमन के महत्वपूर्ण प्रभाव के कारण घने बस गये हैं।

(6) **व्यापार तथा उद्योग** व्यापार और उद्योगों मे उन्नति होने के साथ-साथ जिन क्षेत्रो मे व्यापारिक और औद्योगिक उन्नति हुई है उनमे जनसंख्या भी बढ़ गई है। नगरों में जनसंख्या अधिक होने का कारण प्राय. वहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति ही है। जमशेदपुर में औद्योगिक उन्नति के कारण ही आबादी एकदम बढ़ गई है। इस प्रकार व्यापारिक केन्द्रों मे भी

जनसख्या अधिक पाई जाती है और खनिज क्षेत्रो मे भी जनसख्या केन्द्रित हो जाती है।

कृषि भारतवर्ष का मुख्य धन्धा है और यही कारण है कि भारतवर्ष की अधिकतर जनसख्या ग्रामो मे बसी हुई है।

(7) सुरक्षा—सुरक्षा की दृष्टि से व्यक्ति ग्रामो की अपेक्षा नगरो मे बसना अधिक पसन्द करते हैं जहाँ सुरक्षा के साधन उपलब्ध हो।

(8) आवास-प्रवास—राजनीतिक और आर्थिक कई कारणो से कभी-कभी विदेशी हमारे यहाँ आकर बसे हैं और हमारे यहाँ से भी लोग बाहर गये हैं। देहली की जनसख्या अधिक घनी होने का एक कारण आवास भी है।

देश के एक राज्य से दूसरे राज्य मे जनसख्या का आवास-प्रवास उन राज्यो मे प्राप्त रोजगार की सुविधा पर भी निर्भर है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश और मद्रास के बहुत से लोग असम, महाराष्ट्र, पश्चिमी बगाल और मध्य प्रदेश मे बस गए है क्योकि वहाँ उन्हे चाय के उद्यानो, खानो अथवा कारखानो मे रोजगार मिलता है। इसी प्रकार, राजस्थान के व्यापारी और उद्योगपति समस्त देश मे बिखरे हुए हैं।

इस प्रकार जनसख्या की सघनता पर प्रभाव डालने वाले कारणो को हम तीन भागो मे बाँट सकते हैं—(क) पहले, वे जो जीविका कमाने मे सहायता करते हैं। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं; (ख) दूसरे, वे जिनसे सुरक्षा और स्वास्थ्यवृद्धि की जा सकती है, और (ग) तीसरे, आवास-प्रवास तथा अन्य राजनीतिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा धार्मिक कारण। शिक्षा केन्द्रो और तीर्थ स्थानो मे जनसंख्या घनी पाई जाती है।

जनसंख्या का उद्योग-धन्धो में वितरण

सन् 1951 से 1961 तक के दस वर्षों मे भारत मे काम करने वाली जनसख्या की वृद्धि लगभग 472 लाख हुई (शेष लगभग 302 लाख की वृद्धि काम न करने वाली जनसंख्या की हुई)। काम करने वाली जनसख्या (Workers) का वितरण (प्रतिशत मे) विभिन्न धन्धो मे इस प्रकार था—

धन्धे	सन् 1951 मे प्रतिशत	सन् 1961 मे प्रतिशत	वृद्धि (+) या कमी (—)
1. कृषि (कृषि श्रमिको को मिलाकर)	66·85	64·88	—1·97
2 वन, बगीचे तथा खनन	2·79	3 10	+0·31
3. उद्योग (घरेलू उद्योगो सहित)	9 84	11 27	+1·43
4. निर्माण	1·19	1 41	+0·22
5. व्यापार और वाणिज्य	6·21	5·29	—2 92
6· परिवहन, स्टोरेज तथा सचार	2·04	2·28	+0 24
7. सेवाएँ	11 08	11·77	+0·69
कुल	100·00	100·00	—

शहरी और ग्राम्य क्षेत्रो मे जनसंख्या

सन् 1961 की जनगणना के आधार पर भारतवर्ष मे शहरी जनसख्या का अनुपात 17·84 प्रतिशत है जबकि सन् 1951 मे कुल जनसख्या का 17 34 प्रतिशत थी। सन् 1961 में ग्राम्य क्षेत्रो मे निवासियो का अनुपात 82·16 प्रतिशत था। इस प्रकार सन् 1951 की अपेक्षा सन् 1961 में भारतवर्ष मे जनसख्या के शहरी-ग्राम्य क्षेत्रो में वितरण रूप मे कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही हुआ है।

सन् 1961 की जनगणना के अनुसार भारतवर्ष मे 111 नगर ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक में एक लाख से अधिक जनसंख्या है। जनसख्या की दृष्टि से देश के सबसे बडे छ: नगर बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, हैदराबाद और अहमदाबाद हैं। बम्बई की जनसख्या 41·5 लाख के लगभग और कलकत्ता की 29 लाख से अधिक है। यदि कॉरपोरेशन क्षेत्रों के बजाय कुल शहरी क्षेत्र की जनसख्या ले तो सबसे अधिक जनसख्या कलकत्ता मे (लगभग 115 लाख) है।

लिंग अनुपात (Sex Ratio)

सन् 1961 की जनगणना से प्राप्त आँकडो के अनुसार भारतवर्ष मे स्त्रियो का अनुपात प्रति एक हजार पुरुषो पर 941 है। सन् 1951 में यह अनुपात प्रति हजार पुरुषो के लिए 946 था। सन् 1961 मे स्त्रियो की

सख्या केरल और उडीसा मे पुरुषो मे अधिक है, केरल मे 1,022 और उडीसा मे 1,002 प्रति हजार पुरुष है। असम, पजाब, पश्चिमी बगाल, दिल्ली, तथा अडमान-निकोबार मे स्त्रियो का अनुपात भारतीय औसत से काफी कम है।

साक्षरता

सन् 1961 की जनगणना के आधार पर भारतवर्ष की कुल जनसख्या मे साक्षर व्यक्तियो का अनुपात पुरुषो मे 339 प्रति हजार और स्त्रियो मे 128 प्रति हजार है। साक्षर व्यक्तियो का कुल औसत 237 प्रति हजार है। राज्यो मे सबसे अधिक साक्षरता केरल मे (46 2 प्रतिशत) और गुजरात मे (30 3 प्रतिशत) है। राज्यो मे सबसे कम साक्षरता जम्मू-कश्मीर मे (10 7 प्रतिशत) और राजस्थान मे (14·7 प्रतिशत) है। केन्द्र-प्रशासित प्रदेशो मे सबसे अधिक साक्षरता दिल्ली मे (51 प्रतिशत) और सबसे कम हिमाचल प्रदेश मे (14 6) प्रतिशत) है।

संक्षेप

दुनिया मे सबसे अधिक जनसख्या वाले देशो मे भारतवर्ष का दूसरा स्थान है। भारतवर्ष की कुल जनसख्या 43 करोड और 12 लाख के लगभग है। भारतवर्ष मे सबसे अधिक जनसख्या उत्तरप्रदेश मे है।

भारत मे जनसख्या की औसत सघनता लगभग 148 व्यक्ति प्रति वर्ग-किलोमीटर है। जनसख्या की सघनता पर (1) जलवायु, (2) भूमि का उपजाऊपन, (3) भूमि की बनावट, (4) परिवहन का विकास, (5) व्यापार तथा उद्योग, (6) सुरक्षा, और (7) आवास-प्रवास इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा और मनोरंजन के साधनो तथा धार्मिक कारणो का भी जनसख्या की सघनता पर प्रभाव पडता है।

भारतवर्ष मे 65 प्रतिशत लोग कृषि मे, 14 प्रतिशत वन, खानों और उद्योगो मे, 8 प्रतिशत व्यापार, परिवहन तथा सचार मे और शेष अन्य धन्धो मे लगे हुए हैं। भारतवर्ष की लगभग 82 प्रतिशत जनसख्या गाँवो मे रहती है। भारतवर्ष मे जनसख्या की अनेक समस्याएँ हैं, जिन्हे देश की आर्थिक उन्नति की दृष्टि से शीघ्र दूर करना आवश्यक है।

प्रश्न

1. "मानसून प्रदेशो में सबसे अधिक घने बसे हुए और सबसे अधिक वर्षा वाले क्षेत्र प्राय: एक ही हैं।" चित्र की सहायता से दिखाइए कि भारतवर्ष के सम्बन्ध मे यह बात कहाँ तक सच है और क्यों ?
2. एक चित्र की सहायता से भारतवर्ष के सबसे अधिक और सबसे कम सघन जनसंख्या वाले प्रदेशो को दिखाइए। जनसंख्या के असमान वितरण का कारण भी संक्षेप में बतलाइए।
3. भारतवर्ष की जनसंख्या के वितरण पर भौगोलिक अंगो का क्या प्रभाव पड़ता है ? विवेचन कीजिए। विशेष रूप से समझाइए कि पश्चिमी बंगाल मे जनसंख्या की सघनता क्यों अधिक है ?
4. विवेचन करो—

   "सिन्धु नदी की घाटी मे डेल्टा की ओर से ऊपर जाने मे जनसंख्या बढ़ती जाती है, परन्तु गंगा नदी की घाटी मे डेल्टा से ऊपर की ओर जाने में आबादी घटती हुई मिलेगी।"

अध्याय 19

भारतवर्ष का व्यापार—आन्तरिक और विदेशी व्यापार

(Trade—Internal and Foreign)

अध्ययन की सुविधा के लिए भारतवर्ष के व्यापार को चार भागों में बांटा जा सकता है (1) आन्तरिक व्यापार, (2) तटीय व्यापार, (3) पुनः निर्यात व्यापार (Entrepot trade), और (4) विदेशों के साथ व्यापार। देश के अन्तर्वर्तीय क्षेत्रों में जो व्यापार होता है, उसे देशी व्यापार कहते हैं। जो व्यापार देश के ही तट के एक स्थान से दूसरे स्थान को समुद्र के द्वारा होता है उसे तटीय व्यापार कहते हैं। पुनर्निर्यात व्यापार वह व्यापार होता है जो किसी दूसरे देश को निर्यात करने के लिए आयात किया जाय—जैसे नेपाल, तिब्बत और अफगानिस्तान अपना कोई समुद्र-तट न होने के कारण कोई माल भारतवर्ष की मार्फत विदेशों से मँगावें या विदेशों को भेजें। दूसरे देश के साथ देश के व्यापार को विदेशी व्यापार कहते हैं। जो माल दूसरे देशों से खरीदा जाता है उसे आयात व्यापार कहते हैं और जो माल दूसरे देशों को बेचा जाता है उसे निर्यात व्यापार कहते हैं। एक सीमा वाले देश से स्थल के द्वारा होने वाले व्यापार को भी विदेशी व्यापार कहते हैं—जैसे भारतवर्ष का पाकिस्तान या बर्मा के साथ होने वाला व्यापार। अब हम भारतवर्ष के व्यापार का क्रमशः अध्ययन करेंगे।

आन्तरिक व्यापार

भारतवर्ष एक विशाल देश है। हमारे देश में विभिन्न क्षेत्रों में लगभग सभी फसलें उगाई जाती हैं और अनेक उद्योगों का प्राचीन काल से ही विकास हुआ है, इसीलिए एक क्षेत्र में उत्पादन होने वाले माल को दूसरे क्षेत्रों तक पहुंचाने का अधिक महत्त्व है। हमारे देश के लिए अन्य देशों की तरह विदेशी व्यापार का उतना महत्त्व नहीं है जितना आन्तरिक व्यापार का। उदाहरण के लिए इङ्गलैण्ड अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी नहीं कर सकता और

इसलिए उसके लिए विदेशी व्यापार का अधिक महत्त्व है। दुर्भाग्यवश देश के हितो की ओर उचित ध्यान नही दिया गया। ब्रिटिश सरकार की यह नीति रही कि देश के कच्चे माल का निर्यात हो और इङ्गलैण्ड के बने हुए माल का भारत मे आयात हो।

भारतवर्ष के देशीय व्यापार का सही अनुमान लगाने के लिऐ पर्याप्त संख्या और साधनो की कमी है क्योंकि देशीय व्यापार पर प्राय प्रतिबन्ध नही रहा और देशीय व्यापार अनेक साधनो के द्वारा होता है—जैसे रेलो द्वारा, नदियो द्वारा, मोटरो द्वारा, बैलगाडियो द्वारा, ऊटो द्वारा, खच्चरो और टट्टुओ द्वारा इत्यादि। नदियो और रेलो द्वारा होने वाले व्यापार के भी उचित अक नही मिलते, परन्तु फिर भी यह अनुमान बहुत कुछ ठीक है कि भारतवर्ष का देशीय व्यापार 7,000 करोड रुपये से कम नही होता। विभाजन के पश्चात् देशी रियासतों के भारत मे मिल जाने से देशी व्यापार का क्षेत्र बहुत बढ गया है। देश की पचवर्षीय योजना तथा अन्य कार्यों – जैसे परिवहन का विकास, पूँजी की व्यवस्था इत्यादि – से देशीय व्यापार में दिनों दिन वृद्धि होगी। ज्यो-ज्यों देश अधिक स्वावलम्बी होता जायगा देशीय व्यापार भी बढता जायगा।

तटीय व्यापार

तटीय व्यापार देशीय व्यापार का ही एक अङ्ग है। भारतवर्ष मे तटीय व्यापार का महत्त्व इसलिए है कि देश विशाल है और उसका समुद्र-तट 5,700 किलोमीटर से भी अधिक है और स्थल परिवहन की अपेक्षा जल परिवहन मे कम व्यय होता है। परन्तु भारतवर्ष के तटीय व्यापार का समुचित विकास नही हो पाया। मुख्य कारण तीन हैं— अ) भारतवर्ष का अपना जहाजी बेडा नही था। भारतवर्ष मे कुछ ही वर्षो पहले जहाज बनने आरम्भ हुए हैं। पहले हम विदेशी जहाजी कम्पनियो के ऊपर आश्रित थे। विदेशी सरकार की नीति भी ऐसी ही थी। तटीय व्यापार की अपेक्षा विदेशी व्यापार को ही प्रोत्साहन दिया जाता था। विदेशी जहाजी कम्पनियाँ भाड़ा कम कर दिया करती थी इसलिए देशी जहाज उनका मुकाबला कर सकने में असमर्थ थे। (आ) दूसरा कारण, जिससे देश के तटीय व्यापार का अधिक विकास न हो सका, यह था कि देश मे प्राकृतिक बन्दरगाहो की कमी है। समुद्र-तट काफी बडा होने पर भी कटा-फटा कम ही है। अधिकतर बन्दरगाह ऐसे हैं

जो या तो कृत्रिम हैं या मानसूनी हवाओं के समय अरक्षित रहते हैं। (इ) उपर्युक्त दोनों कारणों में छिपा हुआ तीसरा कारण सरकारी नीति थी। विदेशी सरकार को हमारे देश के हितों की अपेक्षा इङ्गलैण्ड के व्यापार का ध्यान अधिक था।

देश की अपनी सरकार ने देश की समस्याओं को समझा है और दोनों दिशाओं में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है। हमारी सरकार बन्दरगाहों के विकास के लिए उचित प्रयत्न कर रही है। कांदला का विकास किया गया है और अन्य बन्दरगाहों के विकास के लिए भी काफी धन-राशि स्वीकृत की है। जहाजों के सम्बन्ध में अनुकूल नियम बनाए हैं और जहाज-निर्माण की दशा में सन्तोषजनक प्रगति हो रही है।

पुनर्निर्यात व्यापार

भारतवर्ष पश्चिमी और पूर्वी देशों के मध्य में स्थित है। भारतवर्ष की यह स्थिति पुनर्निर्यात व्यापार के लिए महत्त्वपूर्ण है। यूरोपीय देशों को पूर्वीय देशों से भेजे जाने वाला माल भारतवर्ष के बन्दरगाहों पर रुकना है और यूरोपीय देशों के माल के वितरण के लिए भी भारतवर्ष के बन्दरगाह महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे देश भी हैं जिनका कोई समुद्र-तट नहीं है और उन्हें भारतवर्ष के द्वारा माल खरीदने और बेचने में सुविधा पड़ती है। ऐसे देशों में नेपाल, तिब्बत और अफगानिस्तान मुख्य हैं। ये देश कपड़ा, चीनी, चाय, मसाले इत्यादि का भारतवर्ष के द्वारा आयात करते हैं और ऊन, इत्यादि भारतवर्ष के द्वारा दूसरे देशों को भेजते हैं। परन्तु अब प्रत्येक देश विदेशों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है, इसलिए पुनर्निर्यात व्यापार का अधिक क्षेत्र नहीं मालूम देता। अफगानिस्तान और भारतवर्ष के बीच में पाकिस्तान बन जाने के कारण उस देश के साथ भारतवर्ष का हाथ कम रह गया है।

भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएँ

भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की विशेषताएँ एक-सी नहीं रही हैं। उनमें परिवर्तन होता रहा। इसलिए विशेषताएँ जानने के लिए देश के विदेशी व्यापार को तीन भागों में बाँट लेना उचित होगा।

(1) युद्ध पूर्व काल में—इस काल मे भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की विशेषताएँ ये थी—

(अ) आयात होने वाले पदार्थों मे वना हुआ—जैसे कपडा, मशीनरी, घडियाँ, सिगरेट, शराव, साइकिले, मोटर, लोहे का सामान इत्यादि मुख्य थे।

(आ) निर्यात होने वाले पदार्थों मे कच्चा माल और खाद्यान्न प्रमुख थे। कच्चे माल में कपास, जूट, तिलहन, खालें और खनिज पदार्थ मुख्य थे।

(इ) निर्यात होने वाले पदार्थों को प्रायः खाद्य पदार्थों और कच्चे माल के अन्तर्गत रखा जा सकता था जबकि आयात होने वाले पदार्थों की सख्या कई दर्जनो तक पहुंचती थी जिनमे वना हुआ माल ही अधिक होता था।

(ई) देश के निर्यात का मूल्य आयात के मूल्य से प्रायः अधिक होता था।

(उ) देश का विदेशी व्यापार अधिकतर समुद्र से होता था। समुद्र से होने वाले व्यापार का भी 90 प्रतिशत पाँच वडे वन्दरगाहो से होता था।

(ऊ) देश का अधिकतर व्यापार इगलैण्ड के साथ होता था। यद्यपि व्यापार इगलैण्ड के साथ युद्धोत्तर काल मे घटता हुआ दिखायी देता है।

(2) युद्ध-काल में—युद्ध-काल मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस काल की विशेषताएँ ये थी—

(अ) निर्यात होने वाले पदार्थों में कच्चे माल की अपेक्षा बने हुए माल का स्थान महत्वपूर्ण हो गया। इस काल मे जूट का वना हुआ माल, चाय, सूती कपडा इत्यादि प्रमुख हो गये।

(आ) कई प्रकार का माल, जो पहले आयात किया जाता था अव देश मे ही वनने लगा—जैसे तेल, कई प्रकार का सामान, सूती और ऊनी कपडा, चमडे का माल इत्यादि।

(इ) इस समय मे आयात अपेक्षाकृत वहुत कम हुए और निर्यात काफी वढ़े इसलिए व्यापार सतुलन (Balance of Trade) भारतवर्ष के वहुत अधिक अनुकूल हो गया।

(ई) इस समय का अधिकतर व्यापार साम्राज्यगत देशो (Empire Countries) अर्थात् कनाडा, मिस्र, आस्ट्रेलिया, ईराक और कुछ मध्यपूर्वी देशो के साथ हुआ। ईरान से तेल का आयात बढ़ा।

(3) युद्धोत्तर-काल मे—इस काल की मुख्य विशेषताएँ ये है:—

(क) विभाजन हो जाने के पश्चात् पाकिस्तान क्षेत्र के साथ होने वाला व्यापार विदेशी व्यापार हो गया, इसलिए विदेशी व्यापार का परिमाण और मूल्य बढ़ गया। पाकिस्तान और भारत कई कारणो से एक दूसरे के आश्रित देश है और दोनो मे व्यापार होना स्वाभाविक है।

(ख) आयात होने वाले पदार्थो मे कच्चे माल का परिमाण बढ़ा। पाकिस्तान से जूट और रुई के अतिरिक्त अन्य देशो—जैसे मिस्र, पूर्वी अफ्रीका इत्यादि से भी अब हम कपास का आयात करते है।

(ग) विभाजन, औद्योगीकरण और बढ़ती हुई जनसख्या के परिणामस्वरूप भारतवर्ष मे खाद्यान्नो का आयात बहुत बढ़ा है। जिन देशो से अन्न मँगाया उनमे सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, बर्मा, रूस और थाईलैण्ड इत्यादि मुख्य थे।

(घ) भारतवर्ष मे चल रही योजनाओ और औद्योगीकरण के लिये देश मे उत्पादक माल (Capital goods) का आयात अधिक हुआ है। ऐसे माल मे कृषि के यन्त्र, बिजली के प्लान्ट मशीने इत्यादि सम्मिलित है।

(ङ) सयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य डालर प्रदेशो और कुछ अन्य देशो के साथ भारतवर्ष का व्यापार सतुलन प्रतिकूल (Unfavourable) हो गया है।

(च) भारतवर्ष से निर्यात होने वाले माल मे पक्के या बने हुए माल का निर्यात बढ़ा है और कच्चे माल का निर्यात कम हो गया है। निर्यात होने वाले पदार्थो की सख्या और विविधता भी बढ़ी है।

(छ) व्यापार की दिशा मे भी परिवर्तन हुआ है। इगलैड से होने वाला व्यापार अब पहले जितना महत्वपूर्ण नही है। अन्य देशो के साथ हमारा व्यापार बढ़ रहा है। अब सयुक्त राज्य अमरीका का नाम प्रमुख है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान, बर्मा, कनाडा, आस्ट्रेलिया, मिश्र, मध्यपूर्वीय देशो से हमारे सम्बन्ध अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे है।

योजनाओं का भारतीय विदेशी व्यापार पर प्रभाव तथा बदलती हुई प्रवृत्तियाँ

योजनाओ के अन्तर्गत अनेको विकास परियोजनाओ को क्रियान्वित करने के लिये भारतवर्ष मे मशीनरी तथा सयन्त्रो (Plants), धातुओ, कच्चे माल इत्यादि के आयातो मे वृद्धि करना आवश्यक हो गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि भारतीय सरकार ने कठोर आयात-नीति अपनाई है और निर्यातों में वृद्धि के भरसक प्रयत्न किए हैं तथापि आयातों में अत्यधिक वृद्धि हुई है जिसकी तुलना में निर्यातों की वृद्धि बहुत कम हुई है। सन् 1950-51 में भारतवर्ष के अयातो का मूल्य[1] लगभग 623 करोड़ रुपये था, सन् 1955-56 मे 705 करोड रु० और सन् 1962-63 मे लगभग 1,010 करोड रु० था।

1950-51 में निर्यातो का मूल्य[2] 601 करोड रु० था, 1955-56 में 609 करोड़ रु० और सन् 1962-63 मे 700 करोड रुपया था। परिणाम-स्वरूप हमारा व्यापार संतुलन अधिक प्रतिकूल हुआ है। सन् 1950-51 मे हमारा व्यापार संतुलन 22 करोड़ रुपए से प्रतिकूल था जबकि सन् 1962-63 में 310 करोड रुपये मे प्रतिकूल था।

विदेशी व्यापार के स्वभाव (Uature) तथा निर्माण (Composition) की दृष्टि से यह अन्तर हुआ है कि हाल के वर्षों में पूंजीगत वस्तुओं तथा औद्योगिक कच्चे माल के आयातों में वृद्धि हुई है जबकि उपभोग की वस्तुओं के आयात कम से कम किये गये हैं। सन् 1952 मे भारत में मशीनरी के आयात 111 करोड रुपये के थे, सन् 1957 में 233 करोड रु० के हो गये, यद्यपि सन् 1959 मे केवल 146 करोड रु० के लगभग हुए। धातुएँ और धातु वस्तुओ के आयात भी बढ़े। मशीनरी, धातु वस्तुओ के आयात कुल आयातो के, सन् 1952 मे, 20 प्रतिशत थे; सन् 1959 मे 40 प्रतिशत से ऊपर थे। रगाई और चमड़ा कमाने के पदार्थों, कृत्रिम रेशम, खालें, खनिज तेल, रासायनिक पदार्थों इत्यादि के आयातो मे भी वृद्धि हुई है। इसके विपरीत कच्चे जूट, कपास के आयातो मे घटोतरी हुई है क्योंकि इनका देशीय

---

[1] Imports by sea, air and land (less Transit Trade)
Exports, inclusive of re exports, by sea, air and land (less Transit Trade).

उत्पादन बढा है। उपभोग की वस्तुओ, जैसे कपडा, साबुन, स्टेशनरी, सिगरेटें, खिलौनो इत्यादि के आयात बहुत कम हो गये है या बिल्कुल बन्द हो गए हैं।

निर्यात व्यापार में बहुत परिवर्तन हुआ। कच्चे माल, जैसे, खालों, कच्चे जूट, कपास, तिलहन इत्यादि के निर्यात बहुत घट गए हैं अथवा बढना बन्द हो गए हैं। सन् 1948 मे कपास का निर्यात 166 हजार मैट्रिक टन था, सन 1959 मे केवल 59 हजार मैट्रिक टन हुआ। परम्परागत निर्मित वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य निर्मित वस्तुओ जैसे इजीनियरिंग और बिजली का सामान जैसे, जूट मिल यन्त्र, तेल मिल यंत्र, बुनाई के यत्र, चीनी मिल यत्र, आटे की चक्कियाँ, डीजल इंजिन, सिलाई मशीनें, बिजली के पंखे, बिजली के लैम्प, बिजली के मोटर, इस्पात का फर्नीचर, हाथ के औजार, सर्जरी इन्स्ट्रूमेण्ट, इत्यादि के निर्यात काफी मूल्य के हुए हैं। साथ ही परम्परागत वस्तुओ, जैसे, सूती माल, जूट की वस्तुएँ, चाय, तम्बाकू, मसाले, खली, वनस्पति तेल, काजू इत्यादि के निर्यात अब भी महत्वपूर्ण हैं। खनिज पदार्थों के निर्यातो मे वृद्धि हुई है।

व्यापार की दिशा में भी कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। यू० के० (यूनाइटेड किंगडम) के बाद सबसे अधिक व्यापार सयुक्त राज्य अमेरिका के साथ होता है। मशीनरी का आयात हम प० जर्मनी मे भी बहुत करते हैं। सोवियत सघ के साथ भी हमारा व्यापार अधिक बढा है। हमारे निर्यातो का लगभग 28 पतिशत यूनाइटेड किंगडम को तथा 16 प्रतिशत सयुक्त राज्य अमेरिका को सन् 1960 मे गया। कच्चे लोहे के निर्यात के कारण जापान के साथ हमारा निर्यात व्यापार बढा। सन् 1960 में हमारे लगभग 24 प्रतिशत आयात संयुक्त राज्य अमेरिका से तथा 20 प्रतिशत यूनाइटेड किंगडम से हुए थे।

वर्तमान विदेशी व्यापार के विविध अंग

वर्तमान विदेशी व्यापार के अध्ययन को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है—(क) व्यापारगत वस्तुएँ, जिनमे आयात और निर्यात होने वाले पदार्थों को सम्मिलित किया जायगा; (ख) व्यापार की दिशा, वे देश जिनसे हमारा व्यापार होता है; और (ग) व्यापार सतुलन किन देशो के साथ अनुकूल और किन देशो के साथ प्रतिकूल है।

व्यापारगत वस्तुओं को दो भागों में बाँटा जाना चाहिए—(अ) आयात, और (आ) निर्यात। नीचे इन दोनों का क्रमशः संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

भारतवर्ष मे आयात होने वाली प्रमुख वस्तुएँ
(1962-63 मे करोड़ रुपये मे)

मशीनें (बिजली की मशीनो को छोड़कर)	247 14
गेहूँ	91 86
लोहा तथा इस्पात	86 65
परिवहन का सामान	63 09
पेट्रोल के उत्पादन	57 51
बिजली की मशीनें तथा उपकरण	62 16
रासायनिक तत्व का मिश्रण	37 78
कपास	56 91
धातु की बनी वस्तुएँ	17·77
ताँबा	25·24
सूत	13 06
तिलहन, गिरियाँ आदि	10·01
ताजे फल आदि	13·82
पेट्रोल (कच्चा तथा अंशतः परिशुद्ध)	30·15
कागज तथा गत्ता	13·06
कच्चा ऊन तथा बाल	12 15
औषधियाँ	9·24
रासायनिक पदार्थ	10·50
कच्चा जूट	3·35
कुल अन्य वस्तुओ को मिलाकर)	1077 09

आयात व्यापार

मशीनरी—मशीनरी मे रेल के ऐंजिन, तेल के ऐंजिन, बिजली की मशीनरी, कृषि-यन्त्र, खनिज-यन्त्र, कागज और वस्त्र उद्योगो की मशीनें, रेफ्रीजरेटर

इत्यादि मुख्य थे। जिन देशों से मशीनरी का आयात हुआ उनमें इङ्गलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका प्रमुख थे। सन् 1959 में 196 करोड़ रुपये से भी अधिक की मशीनें आयात की गईं और सन् 1961 में 294 करोड़ रु० से भी अधिक की।

खाद्यान्न—खाद्य-पदार्थों के आयात में आधे से अधिक गेहूँ, एक-चौथाई चावल और शेष आटा, दालें और अन्य अनाज इत्यादि थे। जिन देशों से गेहूँ इत्यादि आयात हुए उनमें आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस मुख्य थे। सन् 1955-56 में 17·16 करोड़ रुपये मूल्य के खाद्यान्नों और आटे का आयात हुआ। सन् 1859 में गेहूँ के आयातों का मूल्य ही 110 करोड़ रु० के लगभग था। सन् 1961 में गेहूँ के आयात घटे।

कपास—सन् 1955-56 में लगभग 57 करोड़ रुपये की कपास का आयात हुआ। जिन देशों से कपास का आयात हुआ उनमें मिस्र, पाकिस्तान, केनिया, सूडान, टैंगेनिका, संयुक्त राज्य अमरीका और पीरू मुख्य थे। सन् 1961 में लगभग 69 करोड़ रु० की कपास का आयात हुआ।

तेल—जिन देशों से तेल आयात हुए उनमें ईरान सर्व प्रमुख था। अन्य देश संयुक्त राज्य अमेरिका, बेहरीन द्वीप, स्ट्रेट्स सैटिलमैण्ट्स और लंका इत्यादि थे। सन् 1955-56 में आयात हुए तेलों का मूल्य 63 करोड़ रु० था और सन् 1961 में 80 करोड़ रु० के लगभग था।

धातुएँ और खनिज—सन् 1961 में लगभग 140 करोड़ रुपये के मूल्य के धातु और खनिज आये। उनमें अल्युमिनियम, पीतल, ताँबा, लोहा और इस्पात, सीसा, जस्ता इत्यादि मुख्य थे। जिन देशों से ये आयात हुए उनमें संयुक्त राज्य अमरीका, स्ट्रेट्स सैटिलमैण्ट्स आदि मुख्य थे।

मोटरें और साइकिलें—सन् 1955-56 में लगभग 58 करोड़ रुपये की मोटरें और साइकिलें आयात हुईं। जिन देशों से ये आयात हुईं उनमें इगलैंड सर्व प्रमुख था। अन्य देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा आदि थे। सन् 1959 में मोटर सवारियों के आयातों का मूल्य 60 करोड़ रु० था।

औजार वगैरह—इनमें बिजली, तार, संगीत, फोटोग्राफी, फिल्में, साइन्स, सर्जरी इत्यादि का सामान शामिल था। जहाँ से यह सामान आया उनमें इङ्गलैंड प्रमुख था।

सूती माल—सूती माल मे सूत, कपडा, छीटें, धागा, होजरी का सामान इत्यादि था। इंगलैंड, जापान और इटली मुख्य भेजने वाले थे।

रसायन और रसायनिक पदार्थ—सन् 1961 में 147 करोड से कुछ अधिक के ऐसे पदार्थ आयात हुए जबकि 1948-49 मे लगभग 21 करोड रुपये के मूल्य के ये पदार्थ आये थे। ये सामान भेजने वाले देशो में इङ्गलैंड, जर्मनी, जापान और संयुक्त राज्य अमरीका मुख्य हैं।

कागज और गत्ता—सन् 1961 मे 13 करोड रुपये से अधिक मूल्य के कागज और पेस्ट बोर्ड आये। इनमे छपाई का कागज अधिक था। कागज इत्यादि भेजने वाले देशो मे नार्वे, कनाडा स्वीडन और इङ्गलैंड मुख्य थे।

भारतवर्ष से निर्यात की गई प्रमुख वस्तुएँ
(1962-63 मे मूल्य करोड़ रु०)

चाय	129·19
जूट की वस्तुएँ, इत्यादि	56·56
सूती कपडा	46·54
अन्य वस्त्र (सूती कपड़ों के अतिरिक्त)	110·57
चमडा	22·58
अच्छी अलौह धातुएँ	9·90
कपास	12·20
ताजे फल आदि	21·40
वन-पति तेल	13·17
खनिज लोहा आदि	19·82
कच्चा तम्बाकू	17·99
कच्चा ऊन	6·64
लोहा-इस्पात	2·27
सूत और धागा	15·22
खालें (कच्चा)	11·01
सजावटी तथा फर्श बिछाने का सामान	8·57
कहवा	7·61
पैट्रोल के उत्पादन	4 13
चीनी	18·03
कुल (अन्य वस्तुओं को मिलाकर)	686·35

निर्यात व्यापार

जूट और जूट का सामान— इन पदार्थों के व्यापार पर विभाजन का बुरा प्रभाव पड़ा। सन् 1961 में लगभग 70 करोड़ रुपये की जूट की वस्तुएँ निर्यात हुई। कच्चे जूट का निर्यात इङ्गलैंड, रूस, जर्मनी, बेल्जियम, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका इत्यादि को हुआ। बोरियाँ आयात करने वाले देशों में आस्ट्रेलिया, क्यूबा, मिस्र, बर्मा, हांगकांग, पश्चिमी पाकिस्तान, दक्षिण पूर्वी अफ्रीका मुख्य थे। जूट का सामान मँगाने वाले अन्य देशों में पीरू, चिली, अर्जेन्टाइना, कनाडा आदि भी महत्त्वपूर्ण थे। सन् 1955-56 में लगभग 118 करोड़ रुपये का जूट का सामान निर्यात हुआ। सन् 1956 में जूट की वस्तुओं के निर्यात का मूल्य 111 करोड़ रु० के लगभग था।

कपास और कपास का माल—वह सामान जो 1961 में निर्यात हुआ लगभग 143 करोड़ रुपये का था। निर्यात होने वाली कपास अधिकतर छोटे रेशे की थी। जापान, बेल्जियम और संयुक्त राज्य अमेरिका मुख्य ग्राहक थे। कपास का अन्य माल इङ्गलैंड, अमेरिका, सूडान, अरब, श्रीलंका, स्ट्रेटस सैटिलमेण्ट्स, दक्षिणी-पूर्वी अफ्रीका बर्मा, पाकिस्तान, मलाया इत्यादि को निर्यात हुआ था। हाल में कपास के निर्यात घटे हैं। कपास और सूती माल के कुल निर्यात 1959 में 72 करोड़ रुपये से अधिक मूल्य के थे।

चाय— सन् 1955-56 में लगभग 109 करोड़ रुपये की चाय का निर्यात हुआ जिसमें हरी चाय कम और काली चाय अधिक थी। चाय मँगाने वाले देशों में इङ्गलैंड प्रमुख था। इङ्गलैंड के साथ चाय के लिए समझौता भी हुआ था। अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण ग्राहकों में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस, ईरान, आस्ट्रेलिया और मिस्र मुख्य थे। सन् 1961 में 124 करोड़ रुपये से अधिक की चाय निर्यात हुई थी।

खालें और चमड़ा इत्यादि—सन् 1955-56 में लगभग 59 करोड़ रुपये के मूल्य के चमड़े, खालों इत्यादि का निर्यात हुआ। खालों में भैंस, बछड़ों और भेड़ों की खालें मुख्य थीं। विभाजन के पश्चात् खालों और चमड़ों के व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ा। पहले की अपेक्षा अब खालें कम भेजी जाती हैं और देश में चमड़ा उद्योग उन्नति कर रहा है। खालों और चमड़े का निर्यात मुख्यतः इङ्गलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका को होता है। फ्रांस और जर्मनी अच्छे

ग्राहक हैं । सन् 1961 मे 26 करोड़ रु० के लगभग मूल्य का चमडा और 8 करोड रु० से अधिक की खालें निर्यात हुई ।

मसाले—सयुक्त राज्य अमेरिका, इ गलैंड, कनाडा और इटली मुख्य ग्राहक हैं । सन् 1955-56 मे लगभग $10\frac{1}{2}$ करोड रु० के मसाले निर्यात हुए । सन् 1959 मे 10 करोड़ रु० से अधिक मूल्य के मसाले निर्यात हुए ।

तिलहन—तिलहन मंगाने वाले देशो मे मुख्य इ गलैंड, हालैण्ड, वेल्जियम आदि हैं । तिलहन का निर्यात कम हो रहा है क्योकि देश मे तेल उद्योग का विकास हुआ है और खली, खाद इत्यादि का उपभोग भी बढा है ।

तम्बाकू—तम्बाकू का निर्यात वढा है । सन् 1961 मे लगभग 15 करोड रुपये की तम्बाकू निर्यात की गई । तम्बाकू के निर्यात मे वृद्धि होने का कारण यह है कि ब्रिटेन के पास डालरो की कमी होने के कारण उसने अधिकतर खरीद भारत से ही की थी । देश मे गवेषणा-कार्य भी हो रहा है । सैन्ट्रल तम्बाकू कमेटी ने भी इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किए हैं । इङ्गलैण्ड के अतिरिक्त भारतीय तम्बाकू के अन्य ग्राहको मे पश्चिमी पाकिस्तान, वेल्जियम, अरब आदि मुख्य है ।

व्यापार की दिशा
(Direction of Trade)

देश का आधे के लगभग विदेशी व्यापार कॉमनवैल्थ राष्ट्रो (Conmonwealth Nations) से होता है जिनमे ब्रिटेन, पाकिस्तान, केनिया, वेहरीन द्वीप, श्रीलका, स्ट्रेट्स सैटिलमेट्स, टैंगेनिका, सूडान और आस्ट्रेलिया सम्मिलित हैं । अन्य देशों में, जिनसे भारतवर्ष का व्यापार होता है, संयुक्त-राज्य अमेरिका, मिस्र, ईरान, जापान, रूस, स्वीडेन, नार्वे, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड, इटली, वर्मा, थाईलैण्ड, अर्जेण्टाइना, नीदरलैण्ड्स, वेल्जियम, फ्रास, जेकोस्लोवाकिया और ईराक सम्मिलित हैं ।

कुल मिलाकर उपर्युक्त देशों मे भारत के विदेशी व्यापार की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण देश ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया; कनाडा, मध्य-पूर्वी देश और पाकिस्तान मुख्य है । इन देशो के साथ होने वाले व्यापार का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है ।

भारतवर्ष और इगलैण्ड—भारतवर्ष का इगलैण्ड से सदैव अच्छा व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। प्रथम महायुद्ध के पूर्व भारतवर्ष के 63% आयात इङ्गलैण्ड से हुए थे और निर्यात भी लगभग 25% उसी देश को हुए थे। परन्तु धीरे-धीरे इङ्गलैण्ड का स्थान अन्य देश लेते जा रहे हैं यद्यपि अब भी इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष का व्यापारिक सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण बना हुआ है। युद्ध काल के पूर्व अर्थात् 1938-39 मे भारत का लगभग 31% आयात और 34% निर्यात व्यापार उसी देश के साथ हुआ था। युद्ध काल मे प्रतिशत और कुछ घटे और सन् 1950-51 मे भारतवर्ष के आयात और निर्यात व्यापार का कुल 20% ही इङ्गलैण्ड से हुआ यद्यपि मूल्य की दृष्टि से अधिक नही
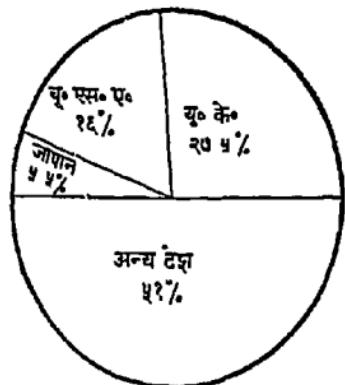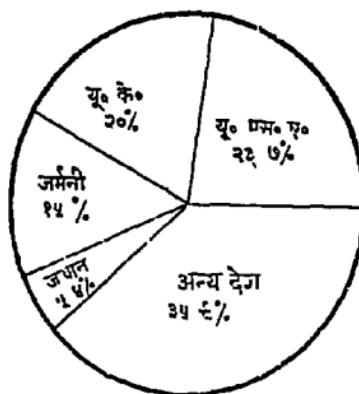
चित्र 61—भारत का आयात तथा निर्यात

घटा। भारतवर्ष इङ्गलैण्ड को जूट का सामान, चाय, खाल इत्यादि, तिलहन, और वन पदार्थ निर्यात करता है और मशीनरी, औजार, मोटरें, साइकिलें, रासायनिक पदार्थ रग और दवाइयाँ आयात करता है।

सन् 1960 मे भारतवर्ष के निर्यात व्यापार का 27 5 प्रतिशत और आयात व्यापार का 20 प्रतिशत यूनाइटेड किंगडम के साथ हुआ।

भारतवर्ष और सयुक्त राज्य अमेरिका—सन् 1938-39 के विश्व-युद्ध के पूर्व हमारे देश का सयुक्त राज्य अमेरिका के साथ अधिक महत्त्वपूर्ण व्यापार

नही था, परन्तु युद्ध-काल में और युद्ध-काल के पश्चात् धीरे-धीरे अधिक बढता जा रहा है। सन् 1950-51 मे भारतवर्ष के 20·5 प्रतिशत आयात सयुक्त राज्य अमेरिका से हुए और हमारे निर्यात का 17% के लगभग उस देश ने खरीदा। संयुक्त राज्य अमेरिका से आयात होने वाले पदार्थों मे कपास, मशीनरी. मोटरें व साइकिलें, धातु और खनिज, रासायनिक पदार्थ, तेल, खाद, तम्बाकू इत्यादि मुख्य थे। निर्यात होने वाले पदार्थों मे जूट का माल, चाय, मशाले, खालें इत्यादि, मेवे, मैंगनीज अभ्रक और लाख इत्यादि मुख्य थे। सन् 1960 मे भारतवर्ष के आयात व्यापार का 23·7 प्रतिशत और निर्यात व्यापार का 16 प्रतिशत संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ हुआ।

भारतवर्ष और आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड—चमड़ा और खालो, चर्म-शोधक पदार्थों, तिलहन, अभ्रक, जूट का माल, कपास का माल, और मसालो इत्यादि के विक्रय-क्षेत्र की दृष्टि से आस्ट्रेलिया महत्त्वपूर्ण हैं। बदले मे भारत-वर्ष आस्ट्रेलिया मे कई प्रकार की मशीनरी, ऊन, गेहूँ इत्यादि लेता है। सन् 1949-50 मे देश का लगभग 60 करोड रुपया का व्यापार हुआ जिसमे लगभग 34 करोड रुपये के आयात और लगभग 26 करोड रुपये के निर्यात हुए थे। सन् 1955-56 मे भारत ने आस्ट्रेलिया से 1,347 लाख रुपये के आयात और 2,481 लाख रुपये मूल्य के निर्यात किए।

न्यूजीलैण्ड से दुग्ध पदार्थ और गोश्त इत्यादि खरीदकर जूट का माल दरियाँ इत्यादि औद्योगिक माल वेचा जा सकता है।

भारतवर्ष और कनाडा—कनाडा से हमारे सम्बन्ध अधिक पुराने तो नही परन्तु महत्त्वपूर्ण हैं। कनाडा से होने वाले मुख्य आयात गेहूँ, लकडी और धातु पर काम करने के यन्त्र, कृषि यन्त्र, विजली का सामान, दुग्ध उद्योग का सामान मुख्य हैं। हमारे यहाँ से कनाडा जूट का माल, चाय, खालें, मेवे, मसाले, दालें. पीतल का सामान, वनस्पति घी, दरियाँ इत्यादि मँगाता है। सन् 1949-50 मे हमारे देश का कनाडा से लगभग 23 करोड रुपये का व्यापार हुआ था जिसमे लगभग 11 करोड रुपये के निर्माण और लगभग 12 करोड़ रुपये के मूल्य के आयात थे। सन् 1955-56 में कनाडा से 684 लाख रुपये के आयात किये और वहाँ को 1,401 लाख रुपया का माल निर्यात किया।

मध्य-पूर्वी देशों से भी भारतवर्ष के व्यापारिक सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण हैं। मध्य-पूर्व देशो मे मिस्र, टर्की, सूडान, केनिया, ईरान और अरब इत्यादि मुख्य हैं। भारतवर्ष इन देशो से कपास, तेल इत्यादि खरीदता है और कपास एव जूट का माल, चाय, लोहे का सामान, इस्पात, मसाले इत्यादि भेजता है। पूर्वी देशो मे वर्मा, चीन, जापान, मलाया इत्यादि मुख्य हैं।

भारतवर्ष और पाकिस्तान—भारतवर्ष और पाकिस्तान वास्तव मे एक ही प्राकृतिक देश के टुकडे हैं जिनके बीच मे पश्चिम की ओर रेगिस्तान के भाग को छोडकर आवागमन मे कोई प्राकृतिक असुविधा भी नही है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि व्यापार के लिए दोनो देश परस्पर आश्रित और सम्बद्ध है। विभाजन के पूर्व के देश के मुख्य कपास क्षेत्र और जूट क्षेत्र तो पाकिस्तान में गये जबकि जूट मिलो और सूती मिलो के क्षेत्र भारतवर्ष मे। इसी प्रकार गेहूं, चावल और मछली के भी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र पाकिस्तान मे गये जबकि तिलहन, तम्बाकू और कोयला और कुछ खनिज पदार्थों के मुख्य क्षेत्र भारतवर्ष मे हैं। परन्तु विभाजन के तुरन्त पश्चात कई विघ्नो के कारण व्यापार न हो सका। व्यापारिक समझौते के द्वारा समय-समय पर व्यापार के सुधारने के लिए प्रयत्न किये गये परन्तु राजनैतिक कारणो से अनिश्चितता बनी रही है। भारतवर्ष मे पाकिस्तान से मुख्य आयात जूट, कपास, खालें, नमक, फल इत्यादि है और भारतवर्ष के निर्यात सूती कपडा तथा अन्य सूती माल जूट का सामान, तेल (तिलहनों का), तम्बाकू, कोयला, नकली रेशम, इस्पात और दवाइयाँ इत्यादि मुख्य थे। सन् 1949-50 मे पाकिस्तान के साथ लगभग 26½ करोड रुपये का व्यापार हुआ, जिसमें 15 करोड रुपये के निर्यात और 12½ करोड रुपये के आयात थे। सन् 1962-63 मे हमारा पाकिस्तान के साथ व्यापार लगभग 27 करोड रु० का था जिसमे निर्यात लगभग 1,768 लाख रु० के और आयात 940 लाख रु० के थे।

व्यापार-सतुलन (Balance of Trade)

प्रथम युद्ध पूर्व काल में भारतवर्ष का व्यापार-सन्तुलन प्राय. सदैव अनुकूल रहा था। भारतवर्ष को होम चार्जेज (Home charges) भी देने पडते थे जिससे अधिक निर्यात करने की आवश्यकता होती थी। सन् 1930 के पश्चात मन्दी के समय मे भारतवर्ष का व्यापार-सन्तुलन कम अनुकूल होने लगा परन्तु

द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ होते ही फिर अनुकूल होने लगा। युद्ध-काल मे हमारा व्यापार-सतुलन और अधिक अनुकूल होता गया यहाँ तक कि 1943-44 मे यह सबसे अधिक हो गया परन्तु तदुपरान्त उद्योगो की विभिन्न समस्याओं, देश की अन्तरिक अशान्ति, विभाजन इत्यादि का बुरा प्रभाव पडा और व्यापार सतुलन प्रतिकूल होने लगा।

भारतवर्ष का व्यापार सन्तुलन

वर्ष	1950-51	1955-56	1960-61
व्यापार सन्तुलन (करोड में)	—49·75	—165·44	—354 87

सन् 1950-51 मे भारत का व्यापार सन्तुलन लगभग 50 करोड रु० से प्रतिकूल था, सन् 1957-58 मे यह 401 करोड रुपए से भी अधिक प्रतिकूल हो गया। 1960-61 में लगभग 355 करोड रुपए से प्रतिकूल था।

राज्य-व्यापार निगम
(State Trading Corporation)

मई, 1956 मे पूर्णत: सरकार के नियत्रण मे एक व्यापार निगम की स्थापना हुई। इस निगम का मुख्य कार्य भारत के विदेशी व्यापार की वृद्धि करना है। स्थापित होने के बाद से ही यह निगम नियत्रित अर्थ-व्यवस्था वाले देशो के साथ भारत के निर्यात-व्यापार का विस्तार करने का प्रयास कर रहा है जिससे भारत के पौण्ड-पावने पर प्रभाव डाले बिना इन देशो से इस्पात, सीमेंट तथा औद्योगिक उपकरण आदि प्राप्त किये जा सकें। यह निगम भारतीय व्यापार को बहुमुखी बनाने तथा भारत की परम्परागत तथा अपरम्परागत निर्यात वस्तुओ के लिए नए बाजार ढूँढने का यत्न कर रहा है। इसने भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओ के बदले में आवश्यक पूँजीगत सामान तथा औद्योगिक कच्चे माल मँगाने के सम्बन्ध मे कुछ देशो के साथ व्यवस्था की है। जिन वस्तुओ के निर्यात की व्यवस्था की है उनमे खनिज कच्चे पदार्थ, जूते, हस्तशिल्प की वस्तुएँ, नमक, चाय, कहवा, ऊनी सामान, चीनी, तम्बाकू इत्यादि हैं। निगम द्वारा किए गए आयातो मे मुख्य

उर्वरक, रुई, अखबारी कागज, मशीनरी, इस्पात उद्योगो के लिए कच्चे माल इत्यादि सम्मिलित हैं।

खनिज तथा धातु व्यापार निगम

अप्रैल, 1963 से भारत सरकार ने राज्य व्यापार निगम को विभाजित करके कच्चे खनिज पदार्थो के निर्यात एव धातुओ के आयात करने तथा खनिज पदार्थों के लिए नए बाजारो का विकास करने और निर्यात बढाने के उद्देश्य से खनिज तथा धातु व्यापार निगम (Minerals and Metals Trading Corporation) की स्थापना की है।

सक्षेप

भारतवर्ष का देशी व्यापार देश के विदेशी व्यापार से बहुत अधिक है, परन्तु देशी व्यापार का पूर्ण व्यौरा नही मिलता। पुनर्नियति व्यापार का महत्व अब कम हो गया है। आधुनिक ढंग के विदेशी व्यापार का प्रारम्भ इङ्गलैंड मे औद्योगिक क्रांति (1760) के पश्चात् हुआ।

भारतवर्ष का वर्तमान विदेशी व्यापार देश के छः बड़े बन्दरगाहो से होता है। हमारा व्यापार-संतुलन इस समय प्रतिकूल है। इसका कारण यह है कि देश की पंचवर्षीय योजनाओ के लिए हमने मशीनरी इत्यादि का आयात किया है साथ ही खाद्यान्नो का आयात करना पड़ा है।

हमारा विदेशी व्यापार मुख्यत. ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान, मध्यपूर्वीय देशो, दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, सुदूर-पूर्वीय देशो, अर्जेण्टाइना, कनाडा और यूरोपीय देशो से होता है।

हमारे मुख्य आयात मशीनरी, खाद्यान्न, कपास, तेल, धातुएँ और खनिज, मोटर और साइकिलें, औजार वगैरह, सूती माल, नकली रेशम, ऊन और ऊनी माल, चमड़ा कमाने और रंगाई के पदार्थ, रासायनिक पदार्थ और कागज इत्यादि हैं।

निर्यात होने वाले पदार्थो में मुख्य चाय, जूट का माल, कपास और सूती माल, चमड़ा और चमड़े का माल, मसाले, तिलहन, तम्बाकू,

नारियल के रेशे का सामान, अभ्रक और कुछ खनिज पदार्थ इत्यादि है।

प्रश्न

1. भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएँ बताइये। हाल के कुछ वर्षों मे विदेशी व्यापार मे क्या प्रवृत्ति रही है ?
2. द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण भारतवर्ष मे विदेशी व्यापार की दिशा और व्यापारगत वस्तुओ से क्या परिवर्तन हुआ ? विवेचना कीजिए।
3. भारतवर्ष का व्यापार मुख्यत: किन-किन देशो से होता है ? पाकिस्तान के साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्धो पर प्रकाश डालिए।
4. पुनर्निर्यात व्यापार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
5. योजना काल मे विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियो पर क्या प्रभाव पड़ा है ?